इकाई 14 मनोभाषाविज्ञान

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 मनोभाषाविज्ञान
14.3 बालक में संज्ञानात्मक विकास
14.4 भाषा अर्जन
14.5 भाषा अधिगम
14.6 वाक् विकार
14.7 सारांश
14.8 अभ्यास/प्रश्न

14.0 उद्देश्य

इस इकाई में भाषा से संबंधित मनोवैज्ञानिक पहलुओं की चर्चा की गई है। जैसे, हम भाषा कैसे सीखते हैं, बच्चों में भाषा का विकार कैसे होता है, मातृभाषा और अन्य भाषा सीखने में क्या अंतर आता है, लोगों में सामान्य रूप से दिखाई देने वाली वाक् विकृतियाँ या वाग्दोष क्या हैं आदि।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- मनोभाषाविज्ञान की परिभाषा दे सकेंगे;
- बालकों के संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया समझा सकेंगे;
- बच्चों में भाषा विकास की प्रक्रिया और चरण का वर्णन कर सकेंगे;
- वयस्कों में अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया समझा सकेंगे;
- भाषा अर्जन और भाषा अधिगम में अंतर कर सकेंगे, और
- वाक् विकृतियों के प्रकार की व्याख्या कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

भाषा मानव की अमूल्य निधि है। संसार में और कोई प्राणी उस रूप में भाषा का व्यवहार नहीं करता जैसे मनुष्य करता है। इस संदर्भ में चाम्स्की कहते हैं कि भाषा के व्यवहार की क्षमता मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है, मानव मस्तिष्क की अंतर्निहित क्षमता है। इस तरह भाषा के अध्ययन में मन या मनोवैज्ञानिक दृष्टि का महत्व है।

हम भाषा का अध्ययन विविध संदर्भों में करते हैं। भाषा ध्वनियों से निर्मित शाब्दिक प्रतीकों की व्यवस्था है। इस दृष्टि से हम भाषा को एक संरचना या व्यवस्था के रूप में देखते हैं और व्याकरण के तौर पर भाषा की संरचना का अध्ययन करते हैं। भाषा सामाजिक वस्तु है, सामाजिक संप्रेषण का माध्यम है।

समाज में भाषा की स्थिति विभिन्न सामाजिक संदर्भों में भाषा का प्रयोग और सामाजिक संगठन और क्रियाकलापों में भाषा की प्रक्रिया इन सबके बारे में हम समाज भाषाविज्ञान में चर्चा करते हैं। इस तरह समाज भाषाविज्ञान भाषा के संदेश (संप्रेषण) के पक्ष पर बल देते हैं।

इसी प्रकार भाषाविज्ञान की एक और शाखा है जिसमें कि भाषा से संबंधित मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर चर्चा करते हैं। जैसे आधुनिक भाषाविज्ञान में मनोभाषाविज्ञान की संज्ञा दी जाती है। मनोभाषाविज्ञान में इस बात का अध्ययन किया जाता है कि हम भाषा सीखते कैसे हैं। मनोविज्ञान आमतौर पर अर्जन की विविध विधियों की चर्चा करता है और उस संदर्भ में अभिरुचि, स्मरण आदि कारक तत्वों की चर्चा करते हैं। हम मनोभाषाविज्ञान में यही कार्य भाषा के संदर्भ में करते हैं। मनोभाषाविज्ञान का एक दूसरा प्रमुख क्षेत्र वाक् विकार है। ये विकार वास्तव में मन के विकास से ही जुड़ता है और व्यक्ति किन्हीं मानसिक स्थितियों के वशीभूत होकर सामान्य भाषिक संप्रेषण में सक्षम हो जाता है। इस इकाई में हम मनोभाषाविज्ञान के इन दोनों प्रमुख पहलुओं की चर्चा करेंगे। ये विषय अपने में काफी बृहत है। फिर भी हमने संक्षेप में विषय को समेटने का यत्न किया है जिससे आपको इस विषय क्षेत्र का सामान्य और समग्र परिचय मिल जाएगा।

14.2 मनोभाषाविज्ञान

मनोभाषाविज्ञान एक अंतरविज्ञानीय (Inter disciplinary) क्षेत्र है। और यह दो क्षेत्रों के मिलने और समान क्षेत्र के भागीदार बनने से अधिक है। वास्तव में 1940 के अंत तक भाषाविद् भाषार्जन की जिज्ञासाओं के लिए उत्पादन और बोधन के रहस्य समझने के लिए मनोविज्ञान की ओर झुके। 1950 में थॉमस सीबक और चार्ल्स आसगुड (एक भाषा वैज्ञानिक और एक मनोविज्ञानी) ने मिलकर भाषाविज्ञान ओर मनोविज्ञान के बीच अंतःक्रियाओं के लिए एक समिति की स्थापना की। इस अंतःक्रिया का परिणाम था दो क्षेत्रों के मिलने से एक नये क्षेत्र का अस्तितव में आना, जिसे मनोभाषाविज्ञान कहा गया।

भाषाविज्ञान यदि भाषा की भाषाई व्यवस्था का वैज्ञानिक सिद्धांत है, तो मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं के भाषाई ज्ञान का सिद्धांत है। मनोभाषाविज्ञान इन दोनों का समन्वित उपागम है। वस्तुतः मनोभाषाविज्ञान का उद्देश्य इस तथ्य को स्पष्ट करना है कि भाषाई ज्ञान संज्ञनात्मक व्यवस्थाओं में किस प्रकार द्योतित होता है। इसके साथ ही साथ वह इन मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं की ओर भी संकेत करता है जो इसका उपयोग करती है। भाषा सिद्धांत तथा अधिगम सिद्धांत परस्पर संबंध होकर भाषा अधिगम के सिद्धांतों का गठन करते हैं। इस प्रकार मनोभाषाविज्ञान, मनोविज्ञान तथा भाषाविज्ञान की समन्वित निष्पत्ति है। एक ओर वह भाषा अधिगम से संबद्ध है, तो दूसरी ओर भाषा निष्पादन से। मनोभाषाविज्ञान का मुख्य कार्य उन समस्त मानसिक प्रक्रियाओं का विवेचन करना है, जो भाषा ज्ञान, भाषा संप्राप्ति और भाषा व्यवहार से संबंध हैं। भाषा अर्जन में बालक क्या अर्जित करता है, किस प्रकार अर्जित करता है तथा संदेशों के बोधन एवं अभिव्यक्ति में इनका किस प्रकार उपयोग करता है आदि इसमें प्रमुख हैं। अतः इसके क्षेत्र को भाषा के अर्जन, बोधन तथा अभिव्यक्ति से संबंधित मनोवैज्ञानिक एवं भाषाई प्रक्रियाओं के अध्ययन के संदर्भ में लिया जा सकता है।

ए.आर. डीबोल्ड जूनियर के अनुसार मनोभाषाविज्ञान मुख्य रूप से संदेशों और मानव व्यक्तित्वों की विशेषताओं के मध्य संबंधो से संबद्ध है, जो इस संदेश का चयन और व्याख्या करते हैं "Psycholinguistics is concerned in the broadest sense with relations between messages and the characteristics of human individuals who select and interpret them." पॉल-फ्रीज के अनुसार 'मनोभाषाविज्ञान हमारी अभिव्यक्ति की आवश्यकताओं और संप्रेषण के बीच संबंधों का अध्ययन है और हमारे बाल्यकाल या बाद में सीखी गयी भाषा द्वारा प्रदत्त माध्यम से संबद्ध है।'

जार्ज मिलर (1964) ने इस संबंध में लिखा है कि इस नये विज्ञान का केंद्रीय कार्य है उन मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का वर्णन करना जो व्यक्ति के वाक्य प्रयोग के समय घटित होती है।' अब प्रश्न यह है कि ये मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ क्या हैं? अगर श्रोता (Receptor) के

दृष्टिकोण से देखा जाए तो इन प्रक्रियाओं में है–विभिन्न स्तरों पर किसी एक वाक्य का सुनना, उसका दोहराया जाना, श्रोता के व्याकरणिक ज्ञान के संदर्भ में उस वाक्य को समर्थन मिलना, अर्थव्यवस्था के अंतर्गत उसकी अर्थपूर्ण व्याख्या, संदर्भगत ज्ञान के संदर्भ में उसका समझा जाना और अंतिम है उसके अपने आचरण के संदर्भ में वैध होना।

सलमा कजाकू (1973) मनोभाषाविज्ञान के उद्देश्यों के बारे में लिखती है "मनोभाषाविज्ञान का उद्देश्य है संप्रेषण की स्थूल क्रिया (Act) के दौरान संदेश में सुधार या परिवर्तन का अध्ययन, श्रोता या वक्ता के संबंध और उनके कथन को अर्थ देना, जैसे–मानसिक क्षमता, पारस्परिक प्रभाव, सामान्य संदर्भ के प्रभाव आदि।"

मनोभाषाविज्ञान की संप्रेषण की क्रिया को ध्यान में रखना होता है। वक्ता और श्रोता अपने को संदेश की जिस स्थिति में रखता है उसका प्रतिबिंब भी वह दर्शाता है वह मानसिक स्थिति (Psychic state) के संदर्भ में स्थिति बताता है, और स्मृति में भंडारण की क्षमता, स्वभाव, सामान्य संकल्पना, चिंतन और प्रेरणा में बाधा को भी स्पष्ट करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि मनोभाषाविज्ञान दो दिशाओं में कार्य करता है (1) मनोविज्ञान वक्ता और श्रोता की प्रक्रिया की व्यवस्था, संकेतन और विसंकेतन, साथ ही मानसिक घटना (Phenomenon) के बारे में अध्ययन करता है जो कि भाषा के उत्पादन में सहयोग करता है, साथ ही साथ यह सामाजिक या व्यक्तिगत समूहों के बीच संबंधों के मानसिक प्रभाव का भी अध्ययन करता है; (2) भाषाविज्ञान भाषा के इन पक्षों का अध्ययन करता है–कूट (Code) की सामान्य व्यवस्था संदेश के घटक और उनके कूट में रूपावली की व्यवस्था, संयोजक अनुक्रम की प्रकारता (Modalities) और अंतिम है वाक्य विन्यासात्मक (Syntagmatic) व्यवस्था की गतिकी (Dynamics) एवं भाषा का उद्भव।

मनोभाषाविज्ञान शब्द का प्रयोग संकुचित तथा व्यापक दोनों ही अर्थों में किया जा रहा है। संकुचित अर्थ में भाषाविज्ञान को कोडीकरण तथा विकोडीकरण की क्रियाओं से संबद्ध किया गया है। इस अर्थ में मनोभाषाविज्ञान उन प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है जिनके द्वारा वक्ता का अभिप्रेत सांस्कृतिक दृष्टि से ग्रहीत कोड संकेतों में परिणत होता है और ये संकेत श्रोता द्वारा संदेशों के रूप में व्याख्यायित होते हैं। व्यापक अर्थ में मनोभाषाविज्ञान संदेशों तथा उनके चयनकर्ता और व्याख्याता मानव के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन माना गया है।

मनोभाषाविज्ञान का कार्य केवल भाषाई प्रदत्तों का विश्लेषण करना नहीं है, वरन् भाषा अर्जन और उसके अनुरक्षण से संबंधित वास्तविक भाषाई व्यवहार का भी अध्ययन करना है। वस्तुतः भाषा के प्रयोक्ता मानव का भाषाई व्यवहार सूक्ष्म एवं जटिल मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं पर आधारित है। मनोभाषाविज्ञान को मानवीय क्रिया के रूप में भाषा के अध्ययन, उपार्जन एवं व्यवहार से संबद्ध मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का समुच्चय कहा जा सकता है।

विस्तृत परिप्रेक्ष्य में मनोभाषाविज्ञान के अध्ययन के प्रमुख विषय ये हो सकते हैं :

1) **सामान्य अधिगम सिद्धांत (General learning theory)** : इसमें केवल कुछ आधारभूत मान्य अधिगम सिद्धांतें की चर्चा होती है जो कि भाषार्जन की प्रक्रिया को समझने में सहायक होते हैं।

2) **वाचिक व्यवहार और अनुबंधन (Verbal behaviour and conditioning)** : इसमें भाषिक तत्वों तथा मनोवैज्ञानिक क्रियाओं का संपृक्त अध्ययन किया जाता है।

3) **भाषा अधिगम के प्रमुख मानक सिद्धांत** : इनमें दो या तीन ही ऐतिहासिक महत्व के हैं, उन्हीं का उल्लेख किया जाता है। आजकल बहुभाषी वातावरण में अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया जानने का कुतूहल महत्वपूर्ण होता जा रहा है।

4) **भाषा और संज्ञान में संबंध :** व्होर्फ का 1930 और 1940 के प्रारंभ में भाषा और विचार के संबंध में किया गया कार्य इस विषय के केंद्र में है, जो भाषा और संज्ञान के बीच का संबंध है। संज्ञानात्मक व्यवहारों में भाषा के योगदान पर आजकल व्यापक अनुसंधान हो रहे हैं। मनोभाषाविज्ञान का यह महत्वपूर्ण विषय है।

5) **सार्वभौमिक तत्वों (Languistic universals) की प्रकृति :** संरचनात्मक भाषाविज्ञान के संदर्भ में इस पर कुछ काम हुआ है। इधर ग्रीनबर्ग (1963, 1966), बाश और हार्मस (1968) का कार्य उल्लेखनीय है। इसके कार्यों से सार्वभौमिक तत्वों के नये-नये आयाम खुल रहे हैं। मानव भाषाओं में मानव चिंतन की समरूपता के अनुरूप एक रूपता के लक्षण पाए जाने की संभावनाएँ बढ़ रही हैं।

द्वितीय भाषा अधिगम और द्विभाषिकता ये दोनों एक समस्या के दो पक्ष हैं, जैसे भाषार्जन और दो तीन भाषाओं का एक समय में पाया जाना। द्वितीय भाषा शिक्षण के क्षेत्र में भी इस काम का उपयोग किया जा सकता है।

भाषाई प्रक्रियाओं के संदर्भ में मनोभाषाविज्ञान में न केवल भाषिक रूपों को सीखने की प्रक्रिया और संप्रेषण के प्रकार्य के विकास पर चर्चा होती है, अपितु संदेशों की विचित्रता (विचार की विशिष्टताओं के संदर्भ में), बालक द्वारा संवेदना आदि भी इसके वर्ण्य विषय है। ये विषय मात्र भाषा शिक्षण के लिए महत्वपूर्ण नहीं हैं, अपितु भाषा वैज्ञानिकों के लिए भी उपयोगी हैं जो व्युतपादन नियमों के मार्ग ढूँढ़ते हैं, और बाल भाषा के आधार पर भाषा को समझने की कोशिश करते हैं। इसके अतिरिक्त मनोभाषाविज्ञान व्याधिकीय स्थितियों के कुछ परिवर्तनों में सहायता मिलती है, ताकि वाक् चिकित्सा में प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो सके। एक भाषा का ज्ञान दूसरी भाषा की अभिव्यक्ति या ग्रहण में प्रभाव के कारण वक्ता के अचेतन में भाषाओं के संपर्क का कार्य करता है। इसके अंतर्गत अन्य भाषा शिक्षण की समस्या, अनुवाद की समस्या, और द्विभाषिकता का भी अध्ययन होता है।

मनोभाषाविज्ञान के सामने कुछ प्रमुख ज्वलंत समस्याएँ हैं, जिनके संतोषजनक तथा विश्वसनीय समाधान में वह लगा हुआ है :

1) बालक अपनी मातृभाषा कैसे सीखता है?

2) बाल भाषा और वयस्क भाषा में क्या अंतर है? पहली दूसरी में कैसे बदलती है?

3) भाषा अधिगम सार्वभौमिक है। तब भी यह पता लगाना है कि इसका अधिगम कैसे होता है?

4) भाषिक रूप से सर्जित की गई और संवेदनात्मक रूप से उत्पन्न भाषा की इकाई में क्या संबंध है?

5) वाक्यों का उत्पादन कैसे होता है और वे कैसे समझे जाते हैं?

इन समस्याओं का सबंध मात्र भाषा की प्रवृत्ति और संरचना के समझने में सहायक नहीं है, वरन् भाषा योजना बनाने, भाषा पाठ्यक्रम तैयार करने तथा शिक्षण तकनीक के निर्माण में भी ये समस्याएँ सकारात्मक या नकारात्मक भूमिका निभा सकती हैं।

14.3 बालक में संज्ञानात्मक विकास

व्यक्ति में गर्भागमन (Conception) के क्षण से मृत्यु तक हमेशा परिवर्तन होता रहता है। वह कभी एक-सा नहीं रहता। शैशवावस्था और बाल्यावस्था भर उसकी शारीरिक और बौद्धिक उन्नति होती रहती है, जो कि युवावस्था की ओर बढ़ने की निशानी है। तब भी परिवर्तन रुकते नहीं, वे धीमी गति से निरंतर होते रहते हैं, तब तक जब तक कि ह्रास की

स्थिति नहीं आ जाती! अतः विकास एक सातत्य प्रक्रिया है, जो जन्म के पूर्व से ही प्रारंभ हो जाती है। परिवर्तनों की लंबी निरंतर प्रक्रिया में जन्म केवल एक आकस्मिक घटना ही है, प्रारंभ नहीं।

कोई भी व्यक्ति सभी शारीरिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों से अवगत नहीं हो सकता। प्रारंभिक वर्षों में, जबकि परिवर्तनों की गति काफी तीव्र रहती है, परिवर्तन स्पष्ट ध्यान में रहते हैं, क्योंकि व्यक्ति को उनके अनुसार अपना व्यवस्थापन करना पड़ता है। और यह भी कि व्यक्ति इन परिवर्तनों का स्वागत करता है, क्योंकि इनसे बुद्धिशील या विकासमान स्थिति का आभास होता है। इसके विपरीत यौवनावस्था के बाद बूढ़े होने के चिह्न स्पष्ट होने लगते हैं।

(क) **विकास का का अर्थ** : विकास का अर्थ विशाल या वृद्धिशील होने तक ही सीमित नहीं है, अपितु यह एक क्रमिक व्यवस्थित विकास की संबंधित अवस्थाओं का नाम है, जिसका उद्देश्य परिपक्वता है। आगे के उद्धरण में Progressive शब्द से ही स्पष्ट है कि इसकी दिशा अग्रगामी है, पश्चगामी नहीं।

"Development is not limited to growing larger. Instead, it consists of a progressive series of changes of an orderly coherent type towards the goal of maturity."

Orderly और coherent शब्द से स्पष्ट है कि विकास अव्यवस्थित नहीं, अपितु व्यवस्थित है। इसमें विराम नहीं है। विकास की प्रत्येक स्थिति में आपसी निश्चित संबंध है। प्रत्येक स्थिति अपने से पूर्व स्थिति से और भावेष्य की स्थिति से संबद्ध है।

जैसेल के अनुसार "Development is more than a concept, it can be observed, appraised, and to some extent even measured in three major manifestations : (A) Anatomic, (B) Physiologic and (C) Behavioural."

विकास केवल एक संकल्पना नहीं, वह उससे अधिक भी कुछ है। उसकी भौतिक सत्ता है: उसे देखा, परखा और मापा जा सकता है। विकास की तीन प्रमुख दिशाएँ मानी गई हैं–(1) आंतरिक संरचनागत, (2) शारीरिक और (3) व्यवहारिक।

(ख) **विकास का अध्ययन** : व्यक्ति का विकास नई क्षमताओं और नये गुणों के रूप में होता है। यह निम्न स्तर से उच्च स्तर की क्रियाओं के मध्य संक्रमण की तरह होता है। परिपक्वता के प्रारंभिक वर्षों से अधिक शीघ्रता से विकास होता है, बाद में कम। मानव विकास के काल को समझने के लिए दो पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं। प्रथम में विभिन्न आयु के समूहों में बालकों का मूल्यांकन करके आयु के विकास का प्रतिमान निकाला जाता है। दूसरे प्रकार में एक ही व्यक्ति का बाल्यकाल से किशोरावस्था तक सदा निरीक्षण करके उसका विकास देखा जाता है। दूसरा प्रकार बहुत ही उचित परिणाम देता है, लेकिन यह व्यावहारिक दृष्टि से कठिन है। इन दोनों प्रकारों से आज हम कई परिणाम देख सकने में सफल रहे हैं।

बालक के साधारण विकास को जानने के कई महत्वपूर्ण लाभ हैं। इससे यह पता लग सकता है कि एक बालक प्रत्येक आयु में क्या-क्या क्रियाएँ करता है और किस आयु में विभिन्न क्रियाएँ मिलकर एक परिपक्व अवस्था को प्राप्त होती हैं। शारीरिक अंगों में प्रमुख हैं प्रथम और द्वितीय बार आने वाले दाँत एवं प्राथमिक और द्वितीय लैंगिक चिह्न। बौद्धिक प्राप्तियों में उत्सुकता (विशेषकर लैंगिक ज्ञान), काम वासनानुभूति का ज्ञान, नैतिक स्तर,

धार्मिक विश्वास, विभिन्न भाषाएँ और सभी तरह की मनस्तापीय प्रवृत्तियों के विकास की स्थितियों का बोध होता है।

मानव विकास की कुछ विशेषताएँ हैं जो इसके रूप निर्माण पर प्रभाव डालती हैं। उनका उल्लेख आगे किया जा रहा है।

(क) **विकास एक व्यवस्था पर चलता है** : प्रत्येक मनुष्य या प्राणी विकास के एक साँचे पर चलता है। विकास की गति और सीमाएँ सभी के लिए एक-सी हैं। मनुष्य में विकास अव्यवस्थित और बेढ़ंगा नहीं होता, बल्कि एक व्यवस्थित साँचे में ढला हुआ होता है। प्रत्येक स्थिति विगत स्थिति का फल है, और आने वाली स्थिति की पूर्व स्थिति है। एक बच्चा चलने से पहले खड़ा होता है और दाढ़ से पहले दाँत आते हैं।

व्यावहारिक साँचा अनुभव से प्रेरित रहता है। यद्यपि सब बच्चे एक से नहीं होते पर उनके विकास का ढंग एक-सा होता है। प्रसवपूर्व और प्रसव पश्चात् स्थिति शिरः पादाभिमुख अनुक्रम (Cephalocaudal sequence) में विकास होता है। ऊपरी भाग की चमड़ी पहले संवेदनशील होती है और नीचे वाली बाद में। यही स्थिति गतिवाही प्रकार्य (Motor function) में भी देखी जा सकती है। विकास सिर्फ सिर से पैर की ओर ही नहीं होता अपितु केंद्र से परिधि की ओर भी होता है। विकास का सामान्य साँचा इस प्रकार होता है:

1. 4–6 सप्ताह में 12 Occulomotor muscles पर नियंत्रण।
2. 16–18 सप्ताह में गर्दन और हाथों की मांस पेशियों पर नियंत्रण।
3. 28–40 सप्ताह में पेट और हाथों पर नियंत्रण जिसके कारण वह बैठ और खिसक सकता है।
4. 40–52 सप्ताह में पैर, उंगलियों और अँगूठों पर नियंत्रण।
5. दूसरे साल में चल सकता है, दौड़ सकता है, शब्द और पदांश बोलता है, व्यक्तियों को पहचानता है।
6. तीसरे साल में वाक्य बोलता है, शब्दों को प्रस्तुत करता है।
7. चौथे साल प्रश्न पूछता है, दैनिक कार्यों पर आत्मनिर्भर हो जाता है।
8. पाँचवें साल बालक गतिवाही नियंत्रण में पूर्णतया समर्थ हो जता है। वह कूद सकता है, उछल सकता है। बाल-भाषा (Infantile talk) बोलता है और कहानी सुना सकता है।

(ख) **विकास सामान्य से विशिष्ट प्रतिक्रिया की ओर बढ़ता है** : गतिवाही हो या बौद्धिक विकास-सामान्य से विशिष्ट की ओर होता है। बच्चा पहले पूरा शरीर घुमाता है, बाद में एक-एक भाग को। पहले वह खिसकना, चलना सीखाता है, बाद में ठोकर मारता है।

पहले वह बड़ी चीज़ें देखता है, बाद में छोटी चीज़ें। बच्चे साधारण कार्य पहले करते हैं, जटिल बाद में। बोलने में भी वह पहले बबलाता है बाद में शब्द कहता है।

(ग) **विकास निरंतर होता है** : विकास हमेशा होता है। यह धीरे-धीरे होता है। शारीरिक और बौद्धिक विकास किशोरावस्था खत्म होने तक होता रहता है। कोई भी चिह्न एकाएक विकसित नहीं होता। दाँत एकाएक नहीं आते, उनका विकास गर्भावस्था में ही होता रहता है, पर उनका अस्तित्व बाद में दिखाई देता है। बोलना भी रोने से ही धीरे-धीरे विकसित होता है। विकास में निरंतरता है, अतः एक स्थिति दूसरे को प्रभावित करती है।

(घ) **विकास की गति में वैयक्तिक भिन्नताएँ एक (स्थिर) ही रहती है :** विकास की गति स्थिर रहती है। जो बालक पहले एकदम बहुत तेज़ी से वृद्धि करते हैं, उनकी गति तेज ही रहती है। जिनकी गति कम रहती है, वे विकास में भी पीछे रहते हैं।

(ङ.) **विभिन्न अंगों का विकास विभिन्न गति से होता है :** सभी अंग एक-सी गति से विकसित नहीं होते। शारीरिक और बौद्धिक अंगों का विकास भिन्न गति से होकर अपने-अपने समय पर पूर्णता प्राप्त करता है। कुछ अंगों का विकास तीव्र रहता है, जबकि दूसरों में कम या रुक-रुक कर।

(च) **अधिकांश गुण या लक्षण विकास से संबद्ध रहते हैं :** क्षतिपूर्ति का सिद्धांत यहाँ नहीं लागू होता। यह नहीं हो सकता कि एक बालक जो एक क्षेत्र में बहुत होशियार है, दूसरे क्षेत्र में बुद्धू निकले। जैसेल ने कहा है – "The products of growth are envisaged as a fabric in which threads and designs are visible."

सशक्त बालक ही बुद्धिमान होता है मंद बुद्धि बालक शारीरिक रूप से भी कमज़ोर ही रहेंगे। **विकास को प्रभावित करने वाले तत्व** विकास की गति और रीति को शरीर के बाहर या भीतर की परिस्थितियों के परिवर्तन से परिवर्तित किया जा सकता है। शारीरिक वृद्धि, भोजन एवं परिस्थितियों जैसे ताजी हवा, मौसम आदि से प्रभावित होती है। विकास किसी भी कारण से नहीं,बल्कि कई संबद्ध कारणों से होता है। इन कुछ महत्वपूर्ण कारणों की चर्चा आगे की जाएगी।

(क) **बुद्धि :** यह सबसे प्रमुख कारण होता है। उच्चस्तरीय बुद्धि विकास बढ़ाती है जबकि निम्नस्तरीय कम करती है। प्रतिभावान लड़के 13 महीने में, औसत लड़के 14 महीने में, मंद 22 महीने में और जड़ 30 महीने में सामान्य विकास की स्थिति को प्राप्त करते हैं।

(ख) **यौन (Sex) :** शारीरिक और बौद्धिक विकास में यौन महत्वपूर्ण है। जन्म के समय लड़के लड़कियों से बड़े रहते हैं, पर लड़कियाँ अधिक तेज़ी से बुद्धि प्राप्त करती हैं। वे लड़कों से एक वर्ष पहले से युवा हो जाती है। लड़कों से पहले ही उन्हें बौद्धिक पूर्णता प्राप्त होती है।

(ग) **आंतरिक रस स्राव की ग्रंथियाँ (Glands of internal secretion) :** ग्रंथियाँ रस स्राव के कारण शारीरिक और बौद्धिक विकास को प्रभावित करती हैं। बहुत अधिक सक्रिय बाल्य ग्रंथि (Thymus glands) बालक को अधिक देर तक बौद्धिक रूप से बालक बना देती हैं। यौन ग्रंथियों में स्राव की कमी से परिपक्वता देर से होती है।

(घ) **भोजन :** प्रारंभिक वर्षों में भोजन का विकास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। केवल खाने की मात्रा का महत्व नहीं है, वरन् उसमें पाए जाने वाले विटामिन का भी महत्व है। विटामिनों की कमी से खराब दाँत और चमड़ी की बीमारी आदि देखी जा सकती है।

(ङ.) **ताजी हवा और प्रकाश :** प्रारंभिक वर्षों में ताजी हवा और प्रकाश का भी महत्व है। इससे बौद्धिक विकास भी प्रभावित होता है।

(च) **बीमारी और चोट :** सिर में चोट, अन्य घाव, वह चाहे बीमारी से हो या दवा से, टाईफाइड ज्वर आदि विकास में रुकावट डालते हैं।

(छ) **जाति** : उत्तरी योरोप में बालकों की अपेक्षा भूमध्यसागरीय बालक शीघ्र बड़े हो जाते हैं। नीग्रो और भारतीय जातियाँ दूसरी गोरी-पीली जातियों की अपेक्षा धीरे-धीरे विकसित होती हैं।

(ज) **संस्कृति** : विकास को संस्कृति भी प्रभावित करती है, पर अधिक नहीं।

(झ) **परिवार में स्थान** : प्रथम बालक की अपेक्षा दूसरे बालक अधिक शीघ्र विकसित होते हैं, क्योंकि उनको अनुकरण की सुविधा प्राप्त होती है।

पियाजे के विचार

संज्ञानात्मक शब्द या संज्ञानात्मक विकास एक उच्च प्रजातिगत (Genetic) शब्द है, जो व्यवहार का हर पक्ष समेट लेता है। ब्रून्सविक (1957) के अनुसार संज्ञानात्मक ज्ञानार्जन की प्रक्रिया है। पियाजे के चिकित्सकीय पद्धति के अनुसार एक व्यक्ति की संज्ञानात्मक विकास की अनुक्रमिक अवस्थाएँ ये हैं : (1) संवेदी गति (Sensory motor) (2) पूर्व संकार्यात्मक (Preoperational) (3) मूर्त संकार्यात्मक (Concrete operational) और (4) रूपात्मक संकार्यात्मक चरण (Formal operational Stages) इनमें स्पष्ट रूप से गुणात्मक परिवर्त्तन या भेद है।

पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास के तीन महत्वपूर्ण संप्रत्यय हैं–संज्ञानात्मक संरचना, संज्ञानात्मक प्रकार्य और संज्ञानात्मक विषयवस्तु। संज्ञानात्मक संरचना जो कि एक समैकित पूर्णता है, अनेक एकल संरचनाओं से बनी होती है जो कि गुणात्मक और संख्यात्मक रूप से विकास के दौरान परिवर्तनों से गुजरती है। वास्तव में संज्ञानात्मक विकास संज्ञानात्मक संरचना के परिवर्तनों का पर्याय है।

संज्ञात्मक प्रकार्य में महत्वपूर्ण है–व्यवस्था और अनुकूलन। पहला समैकिकता के लिए होता है और दूसरा समीकरण और समायोजन के लिए। संज्ञानात्मक विषयवस्तु वातावरण के आंतरिक प्रतिनिधित्व से संबद्ध है और व्यक्ति के व्यवहार से भी। पियाजे संज्ञानात्मक विकास की तीन प्रक्रियाएँ मानते हैं :

1. जीव का अपने वातावरण के हिसाब से अपने विकास के दौरान अनुकूलन।
2. अपनी संरचना के निर्माण के दौरान बुद्धि का विकास।
3. संज्ञानात्मक संबंधों का संगठन।

ज्ञान को भी पियाजे ने दो प्रकार का माना है–(अ) संक्रियात्मक (ब) आलंकारिक। संक्रियात्मक ज्ञान में सत्य को रूपांतरित किया जाता है। आलंकारिक ज्ञान में सत्य जैसा है उसे वैसा ही दिखाया जाता है। पियाजे (1952) का काम बहुत पुराना होने पर भी आज भी संज्ञानात्मक विकास में उसकी विचारधारा महत्वपूर्ण है। आधुनिक मनोभाषाविज्ञान में पियाजे का यह मत महत्वपूर्ण है कि मनुष्य की तार्किक क्षमता अंतर्निहित है, न कि सीखी हुई। मनोभाषाविज्ञान में उसने बच्चों की भाषा की संरचना के संदर्भ में यह माना है कि संवेदनात्मक गतिविकास महत्वपूर्ण है। इस पृष्ठभूमि के आधार पर उसने बुद्धि को मानसिक संरचनाओं के संदर्भ में वर्णित किया, जो कि बच्चे में उस समय आती है जब अपने को वातावरण से समायोजित करने में यह विभिन्न चरणों से गुजरता है। कुछ विद्वानों ने पियाजे के चरणों को वास्तविक भाषा विकास का अनुक्रम समझने में सहायक माना। पियाजे की रुचि इस बात में भी है कि विभिन्न चरणों में बच्चे क्या जानते हैं? कैसे जानते हैं? उसका ध्यान इस बात की ओर भी था कि बच्चे अपूर्ण ज्ञान के किन चरणों से होकर वयस्कों के ज्ञान और संकल्पनात्मकता तक पहुँच पाते हैं।

प्रथमतः पियाजे का ध्यान विचार के विकास पर था, न कि भाषा पर। वे बच्चे के विकास में दो चरण मानते हैं–अहंकेंद्रित भाषा और समाज सापेक्षित भाषा। अहंकेंद्रित भाषा तब देखी जाती है, जब बच्चा अकेला होता है या दूसरों के सामने होता है। बच्चा संप्रेषण में रुचि न लेकर स्वयं ही बोलता जाता है। समाज सापेक्षित भाषा के समय वह दूसरों की बात सुनता है, संप्रेषण में रुचि लेता है। पियाजे के संदर्भ में संज्ञानात्मक विकास का अपना विकासात्मक अनुक्रम है। यद्यपि भाषा कुछ मामलों में संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र को भी छूती चलती है, तथापि दोनों अलग क्षेत्र है। बालक वस्तुओं के प्रत्यक्ष संपर्क में आकर बहुत कुछ सीखता है, अपने वातावरण को समझने के लिए विचारों को बनाता है और तब संज्ञानात्मक विकास तेजी से होता है।

संज्ञानात्मक विकास मुख्यतः मानसिक विकास है। मानसिक विकास में पियाजे ने भाषा विकास पर भी विशद अनुसंधान किया है। पियाजे के अनुसार बालक की 2 से 7 वर्ष की आयु पूर्वोक्त पूर्व संकार्यात्मक या अंतःप्रज्ञात्मक चरण भाषा विकास की दृष्टि से स्वर्णिम अवधि मानी गई है। इस आयु में शब्दावली (संकल्पनाएँ) तथा व्याकरणिक वाक्यों का विकास नाटकीय ढंग से होता है। शब्दों के बोध और प्रयोग की क्षमता भी तीव्र गति से बढ़ती है। औसत दो वर्ष का बालक 200 से 300 शब्दों तक समझने लगता है। औसत 5 वर्ष का बालक 2000 शब्दों (1000% वृद्धि) को समझने में सक्षम हो जाता है। दो वर्ष का बालक एक या दो शब्दों के वाक्य, और एक वर्ष बाद ही आठ से दस शब्दों के वाक्य बोलता है। इस आयु में सामूहिक एकालाप (Collective Monologue) की प्रतिभा भी विकसित होती है। इस भाषिक क्षमता का कारण बालक के मस्तिष्क में बिंबों या प्रतिमाओं के संचयन की क्षमता है। इस काल में अंतः प्रज्ञात्मक कार्य अधिक होते हैं, भले ही कार्य कभी-कभी अतार्किक लगें। यह आयु उच्चस्तरीय कल्पनाशील की है। जादुई विचारों और अतिकल्पनाओं के साथ बच्चे स्वप्न द्रष्टा होते हैं।

बालक अपनी आयु के 7 से 11 वर्ष में (संक्रियात्मक चिंतन) तार्किक, प्रत्यक्षवादी युवा बन जाता है। इस अवस्था में बालक की मानसिक संरचना और अधिक संगठित हो जाती है। समस्याओं के अंतर्संबंध को समझ कर उनके परीक्षण में वह समर्थ बन जाता है। माप, तौल और गणना की क्षमता युक्त दुनिया को तार्किक विधि से जानने का प्रयास करता है। चिंतन के सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों को भी समझने लगता है। नियमबद्ध कामों में रुचि लेता है और कौशल तथा स्थूल कार्यकलाप उसे पसंद आते हैं।

11 से 16 वर्ष की आयु में बालक रूपात्मक संक्रियाएँ करता है। उसका रूपात्मक चिंतन और अधिक संगठित हो जाता है। प्रतीकात्मक अर्थ, लक्षण, व्यंजना को वह समझने लगता है। तार्किक, तर्काधार (रैशनल) और भावात्मक रचना कौशलों (स्ट्रैटेजीज़) के अर्जन में वह अब समर्थ है, क्योंकि वह अब वयस्क बन गया है।

14.4 भाषा अर्जन

भाषिक विकास मानव प्राणी की एक विशिष्टता माना जाता है। भाषा को मानव व्यवहार की विशिष्टता कहने में भाषा की अपनी ही आंतरिक तथा बाह्य जटिल संरचना का हाथ है। प्रसिद्ध भाषा शास्त्री ब्लॉक एंड ट्रेंगर ने भाषा को यों परिभाषित किया है– 'भाषा यादृच्छिक वाक् प्रतीकों की व्यवस्था है, जिसके द्वारा उस भाषाई समुदाय के लोग परस्पर विचारों का आदान-प्रदान एवं सहयोग करते हैं।' इस परिभाषा के आधार पर भाषा की वस्तु और रूप के संबद्ध में ये पाँच विशेषताएँ स्पष्ट करती हैं :

(1) भाषा एक व्यवस्था है, (2) यह व्यवस्था प्रतीकों से बनी है, (3) ये प्रतीक वाचिक हैं, (4) वाचिक प्रतीकों तथा अर्थ के बीच संबंध यादृच्छिक है, अनिवार्य नहीं, और (5) भाषा का यह रूप या वस्तु एक साधन के रूप में समाज के उपयोग के लिए है, निश्चय ही यह

साधन मानव विकास और संस्कृति की एक विशिष्ट उपलब्धि है। इसलिए मानव शिशु भाषा सीखता है, मानवेतर प्राणियों के शिशु शुरू से आखिर तक इस साधन से वंचित ही रहते हैं। शिशु की भाषा संप्राप्ति की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के लिए दो शब्द आजकल प्रचलित हैं : (1) अर्जन (Acquisition) और (2) अधिगम (Learning) भाषा अर्जन तथा भाषा अधिगम तत्वतः दो नितांत अलग प्रक्रियाएँ नहीं हैं।

अर्जन अपने ही प्रयत्नों और अनुभवों से कुछ प्राप्त करने की प्रक्रिया है, जबकि अधिगम किसी विषय या कौशल के संबंध में ज्ञान या सूचना प्राप्त करने की प्रक्रिया है। अर्जन के लिए स्वाभाविक वातावरण तथा तद्गत अनुभव प्रमुख तत्व हैं और अधिगम के लिए अध्ययन-अध्यापन प्रमुख तत्व हैं।

बालक अपनी मातृभाषा सहज वातावरण में अपनी ही अंतर्दृष्टि या प्रयासों में सीखता है, इसीलिए इसे भाषा अर्जन कहा जाता है, और अनुभव तथा अध्ययन या प्रशिक्षण से सीखी गई भाषा की प्रक्रिया को भाषा अधिगम कहा गया है।

अब प्रश्न उठता है कि बालक भाषा का अर्जन या अधिगम केसे करता है? इस संबंध में मनोविज्ञान के दो संप्रदायों के विचार महत्वपूर्ण हैं। व्यवहारवादी मनोविज्ञानी यह मानते हैं कि बालक के भाषा अधिगम में कोई विशिष्टता नहीं होती। चलना, फिरना, खाना, पीना आदि कौशल जिस प्रकार सीखे जाते हैं, उसी प्रकार भाषा भी केवल अनुभव द्वारा या अभ्यास द्वारा सीखी जाती है। बालक में भाषा अर्जन की कोई जन्मजात क्षमता नहीं होती बालक कोरा कागज होता है। प्रशिक्षण के द्वारा उसके मन पर कुछ भी अंकित किया जा सकता है। इन विचारों को मानने वालों को अनुभववादी (Empiricist) कहा जाता है।

वास्तविकता यह है कि मातृभाषा अर्जन के संबंध में व्यवहारवादी या साहचर्यवादी मनोवैज्ञानिकों का कोई विशेष योगदान नहीं है, क्योंकि उनकी दृष्टि में सभी अधिगम रूप (Learning form) समान हैं। भाषा अधिगम बालक के मानसिक विकास या संप्रत्ययात्मक विकास का ही एक अंग है। इससे अधिक कुछ नहीं। भाषा अर्जन और भाषा अधिगम में भी व्यवहारवादी कोई भेद नहीं देखते। अर्जन और अधिगम का अलग-अलग संप्रत्यय पाँचवीं-छठीं दशाब्दी की देन है, जब संज्ञानवाद या बुद्धिवाद के चिंतन पर बल दिया जाने लगा। बाद में मनोभाषाविज्ञानियों ने भी भाषा अर्जन की धारणाओं को आगे बढ़ाया। अतः भाषा अर्जन के आधुनिक चिंतन को समझने के लिए संज्ञानवाद और मनोभाषाविज्ञान के इस संबंध में मूलभूत संप्रत्ययों को समझना आवश्यक है।

संज्ञानवादियों या बुद्धिजीवियों के अनुसार भाषा मानव की अपनी संपत्ति है। मानव शिशु भाषा अर्जन की सहजात (Innate) प्रक्रिया के साथ जन्म लेता है। बालक के मस्तिष्क में पहले से ही एक प्रदत्त संसाधक यांत्रिक व्यवस्था (Data Processing Mechanism) होती है। बालक भाषा के दत्त सामग्री को सुनता है (Input) और उसके बारे में प्राक्कल्पनाएँ करता है और मस्तिष्क के डाटा प्रोसेसिंग की सहायता से क्रमशः नियमों की खोज करता है और उन नियमों का आत्मीकरण या इंटर्नलाइजेशन (Internalisation) करता है। प्रदत्त संसाधन (डाटा प्रोसेसिंग) के बाद उन नियमों की खोज में कभी-कभी बालक गलतियाँ करता है, लेकिन ये ग़लतियाँ भाषा सीखने की प्रक्रिया में बालक की प्राक्कल्पनाओं और पूर्वपरीक्षण (Try out) का प्रतिनिधित्व करती हैं। भाषा अर्जन में उद्भासन (exposure) का महत्व नहीं है, महत्व है उसकी प्राक्कल्पना से निर्माण और समस्या समाधान की प्रक्रिया का। बालक अपने अंदर निहित एक निश्चित कार्यविधि (मैकेनिज्म) द्वारा भाषा सीखता है। भाषा अर्जन बालक की एक सर्जनात्मक प्रक्रिया है और यह एक अनिवार्य प्रक्रिया है। मंद से मंद बुद्धि वाला बालक एक भाषा अवश्य सीख लेता है।

इसके लिए सामान्य प्रतिभा की भी आवयकता नहीं होती। बालकों के मस्तिष्क में एक जैविक घड़ी होती है, जो उसके भाषा अर्जन की समय-सारणी को निर्धारित करती है। इसीलिए भाषा अर्जन एक निश्चित चरणों में संपन्न होता है। और सर्वप्रथम जो भी भाषा अर्जित की जा रही है, बालक की एक संभाव्य अनुमेय आयु में भाषा अर्जन के लगभग समान गुण और गति दिखाई पड़ती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि संज्ञानवादी या मनोवादी (Mentalist) विद्वान भाषा को मानव जाति की एक विशिष्ट संपत्ति (एंडोमेंट) मानते हैं और भाषा अर्जन को मानव शिशु की सहजात और अनिवार्य प्रवृत्ति मानते हैं।

संज्ञानवादी इन धारणाओं से मिलती-जुलती बाते ही मनोभाषाविज्ञानि कहते हैं। इनकी भी यही मान्यता है कि शिशु में सहज भाषा अर्जन की व्यवस्था (इनेट लैंग्वेज़ एक्विजिशन सिस्टम) होती है। इस मान्यता का आधार बालक का जैविक (जैनेटिक) विकास है। भाषा अर्जन एक विशिष्टता है अर्थात् पशु-पक्षी की तुलना में मनुष्य जाति को यह कौशल, एक वरदान के रूप में प्राप्त है, क्योंकि ध्वनियाँ उत्पन्न करने और कुछ हद तक तोते की तरह दोहराने की क्षमता पशु-पक्षियों में भी है, पर वाग्-यंत्रों पर नियंत्रण करके बोलने योग्य ध्वनियों की श्रृंखला उत्पन्न करना मनुष्य जाति की विशेषता है। शिशु भाषा कैसे अर्जित करता है, इसके लिए संज्ञानवादी बालक के प्रदत्तसंसाधन (डाटा-प्रासेसिंग) क्षमता का उल्लेख करते हैं, और मनोभाषाविज्ञानियों के अनुसार इस प्रक्रम (प्रोसेग) से वह भाषा के नियमों की खोज नहीं करता, अपितु उसके मस्तिष्क में पहले से ही ये नियम विद्यमान रहते हैं। शिशु के मस्तिष्क की तुलना कम्प्यूटर तकनीक से की जाती है। कम्प्यूटर में पहले से ही सामग्री भरी जाती है। बाद में संसाधन (प्रासेसिंग) के माध्यम से वांछित परिणाम निकाले जाते हैं। उसी प्रकार शिशु का मस्तिष्क जैविक रूप से अभिक्रमित (प्रोग्राम्ड) होता है। अर्थात् शिशु में जन्म से ही एक जैविक उपकरण (जेंनेटिक अपरेटस) होता है, जो भाषा अर्जन में सहायक होता है। इस अपरेटस में पहले से ही भाषा नियम या अर्जन संबंधी निर्देश भरे होते हैं। जब वह भाषा का प्रयोग करता है, तो स्वतः खोजे गए नियमों के आधार पर नए वाक्य नहीं बनाता, अपितु उसके मस्तिष्क के पूर्व से ही विद्यमान नियमों को भाषा प्रयोग द्वारा निश्चित (कन्फर्म) करते हैं। ये नियम उसके मस्तिष्क में किस रूप में रहते हैं इसके लिए भाषा अर्जन युक्ति (Language acquisition device) की बात की जाती है।

भाषा अर्जन में चार प्रमुख क्रियाओं पर अधिकार करना होता है। ये क्रियाएँ एक दूसरे से संबंधित हैं। एक में सफलता का अर्थ है दूसरे में सफलता। ये चार क्रियाएँ हैं :

1. दूसरों की भाषा को समझना
2. शब्द समूह का निर्माण
3. शब्दों को संयुक्त करके वाक्य निर्माण
4. उच्चारण

इन क्रियाओं पर आगे के प्रसंगों में विस्तार से प्रकाश डाला जाएगा।

जीवन के प्रारंभिक छह महीनों में चीखने और बबलाने से शिशु की भाषा की प्रगति शुरू होती है। पहले शिशु एकाक्षरीय ध्वनियाँ बोलता है, जैसे, मा, ऊ, दू, आ इत्यादि। उसके बाद वही पुनरावृत्ति द्वारा द्विअक्षरीय ध्वनियाँ बन जाती हैं। जैसे बा-बा, मा-मा, चा-चा। इसके बाद की स्थिति निष्क्रिय भाषा की प्राप्ति की है, जिसमें बालक समझता है, पर प्रयोग नहीं कर पाता। ऐसा वर्ष के अंतिम भाग में होता है। दूसरे वर्ष के प्रारंभिक भाग में बालक क्रिया से बताता है कि वह पानी, कुत्ता, दूध और नहाने का अर्थ जानता है, पर शब्द बोल नहीं पाता।

यह समझने की शक्ति अनुबंधन (Conditioning) का परिणाम है, क्योंकि शब्दों का सुनना वस्तु की उपस्थिति के ही साथ होता है।

इस निष्क्रिय भाषा की स्थिति के बाद ही सक्रिय शब्दावली की प्रगति शुरू हो जाती है। शिशुओं के बबलाने में da, ma, wa, poo जैसे शब्द सुनाई पड़ते हैं, जिसे प्रौढ़ लोग Ready, mama, water, spoon के अर्थ में लेते हैं।

शिशु में वाक् विकास अधोलिखित क्रम से होता है :

1.	क्रंदना	12 सप्ताह	स्वरों की तरह मुस्कराना
2.	किलकना	16 सप्ताह	कुछ ध्वनियाँ स्वरों जैसी
		20 सप्ताह	व्यंजनों को साथ
3.	बबलाना	6 महीने	किलकने से बबलाने की ओर
		8 महीने	बार-बार अभ्यास, अनुतान पैटर्न
		10 महीने	गरगलाहट के साथ आवाज का मिश्रण
4.	प्रारंभिक वाक्यविन्यास		शब्दों के बीच अंतर समझना
	4.1 प्रथम शब्द	12 महीने	एक शब्द, आदेश का बोधक, मामा, दादा आदि
		1½ वर्ष	3-50 तक शब्द, अनुतान साँचा जटिल
	4.2 द्विशब्दीय वाक्य	2 वर्ष	दो शब्दों के वाक्य, आसपास की जटिल वस्तुओं के नाम
	4.3 पाइवट व्याकरण	2½ वर्ष	शब्दावली में तेजी से विकास बाल व्याकरण के लक्षण
5.	उत्तर वाक्य विन्यास	3 वर्ष	शब्दावली में आश्चर्याजनक विकास
	(टेलीग्राफ़िक भाषा)	4 वर्ष	वयस्कों जैसा व्याकरण भाषा का पूर्ण विकास

आगे की तालिका से शिशु का उच्चारण विकास और अधिक स्पष्ट हो जाएगा :

उच्चारण/ध्वनि विकास का क्रम

आयु	**स्वर**	**व्यंजन ओर शब्द**
18 मास से	अ, आ, इ, ई, उ, ऊ ए	प, म, त, ब, द, व, न, र,
22 मास तक	आई, ओई	पापा, बाबा, मम, मामा,
23 मास से	एय, उई, अय	जज, ज, नन, दद,
24 मास तक		दादा, दाई
25 मास से	आओ	बब, ल बद, आप
30 मास तक		
31 मास से लेकर		क, ग,

(सुगन भाटिया, 1983, पृ. 27 साभार उद्धृत)

शब्द-समूह का विकास

शब्द-समूह के विकास में दो विभिन्न रूप देखे जा सकते हैं :

(i) साधारण शब्द-समूह, जिसमें साधारण अर्थ वाले शब्द आते हैं, जो विभिन्न स्थितियों में प्रयुक्त हो सकते हैं। पानी, दूध, रोना, सोना, छोटा और क्रिया खाना, पीना, आना, जाना आदि इस श्रेणी में आते हैं।

(ii) विशिष्ट शब्द-समूह जिसका विशिष्ट अर्थ हो और जो कुछ ही परिस्थितियों में प्रयुक्त हो।

साधारण शब्द-समूह के शब्द अधिक उपयोगी होते हैं। अतः उन्हें पहले सीखा जाता है। प्रत्येक स्थिति में साधारण शब्द समूह विशिष्ट शब्द समूह से बड़ा होता है।

एक वर्ष और डेढ़ वर्ष की आयु के मध्य शिशु अपने जीवन का प्रथम शब्द बोलता है। एक शब्दीय वाक्य को अभिव्यक्ति के स्तर पर पूरे वाक्य का रूप देता है। वाक्य रचना के विश्लेषण में इसे वाक्य का प्रारंभिक रूप माना जाना चाहिए। व्याकरण का प्रारंभ भी इसी अवस्था से माना जाना चाहिए।

'दो' कहकर गुड़िया की ओर संकेत करने का अर्थ है "मुझे गुड़िया दो" और 'गेंद' कहकर संकेत करने का अर्थ भी "गेंद दो" है। इस प्रकार के एक शब्दीय वाक्य 12 से 18 महीने की उम्र तक देखे जाते हैं, जिसके बाद बालक दो या तीन शब्द मिलाकर बोलता है।

तीन वर्ष में बालक व्याकरण पर अधिकार ज़माना शुरू करता है और हर साल इसमें प्रगति करता है। स्कूल और कालेज तक भी यह प्रगति चलती रहती है। लिखने में भी समान त्रुटियाँ होती हैं। कुछ तो भाषा की रचना ही ऐसी होती है कि बालक अनुमान करते हैं और भूल भी करते हैं।

त्रिशब्दीय वाक्य से पहले भी पूर्ण अर्थ देने वाले सरल वाक्य मिलते हैं, जैसे "मन्ना जान" अर्थात् मन्ना जाएगा, "बाबा दाना" गाना लगाओ (रेडियो लगाओ) आदि त्रिशब्दीय वाक्य तक आते-आते तार-नुमा (टेलीग्रैफ़िक भाषा सामने आने लगती है। इस तरह की भाषा अनुकरण और अल्पीकरण की प्रक्रिया की वजह से हो जाती है। बालक इस तरह की भाषा में तार की भाषा की तरह ही संज्ञाएँ, क्रियाएँ तथा विशेषण सम्मिलित करता है, पर कुछ शब्द छोड़ देता है, जो प्रकार्यात्मक होते हैं। शब्द क्रम अधिकतर सही होता है। जहाँ तक अन्विति का सवाल है, वह कुछ लचीली होती है। खास कर वचन और लिंग के संदर्भ में संयुक्त वाक्य पहले तो दो वाक्य एक के बाद दूसरे वाक्य रख कर ही बनते हैं, बिना किसी संयोजक के प्रयोग के। जैसे :

"मन्ना अहा, छोटे अहा" मनु अच्छा है, छोटू अच्छा है।

निषेधात्मक वाक्य : बालक में नकारात्मक या निषेधात्मक वाक्यों का विकास बहुत शीघ्र होता है, पर प्रारंभ में केवल सिर हिलाकर, मुँह मोड़कर अस्वीकृति जताई जाती है। यहाँ तक कि बहुत छोटा शिशु भी दूध न पीने की अस्वीकृति हाव-भाव से जता सकता है। प्रथम नकारात्मक शब्द 'नहीं' ही है। द्विशब्दीय वाक्य में ही नहीं एक शब्दीय वाक्य में भी 'नई' (नहीं) के रूप में यह मिल जाता है। 'मत' और 'न' का प्रयोग बहुत बाद में देखा जाता है अर्थात् तीन वर्ष के बाद।

आज्ञार्थक वाक्य : विविध विधि या आज्ञार्थक वाक्य का विकास बहुत प्रारंभिक अवस्था में ही देखा जाता है। 'आ' शब्द आओ के लिए एक शब्दीय वाक्य में मिल सकता है। अनुरोध, आग्रह वाले विविध वाक्य जैसे दो, लो, आओ, बहुत देखे जाते हैं। आदरार्थक आइए, खाइए, बैठिए, आदि बहुत बाद में आते हैं।

14.5 भाषा अधिगम

अर्जन बालक के सहज विकास के साथ चलने वाली प्रक्रिया है। विकास के अनुक्रम में बालक अनेक कौशलों, जैसे–चलना, बैठना, दौड़ना, खाना-पीना आदि का अर्जन करता है। भाषा का विकास भी इसी क्रम में यथासमय प्रारंभ हो जाता है। भाषा का अर्जन भी मानव शिशु के व्यक्तित्व निर्माण का ही प्रयास है। इसलिए अर्जन क्रिया को भी सहज क्रिया माना जा सकता है, लेकिन अधिगम स्वाभाविक क्रिया नहीं है। मनोविज्ञानी गेट्स के अनुसार प्रशिक्षण एवं अनुभव के द्वारा व्यवहार में होने वाले परिवर्तन या परिवर्धन अथवा संशोधन को अधिगम कहते हैं। वुडवर्थ का कहना है "नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया ही अधिगम की प्रक्रिया है।" स्किनर की मान्यता है– "अधिगम व्यवहार में

उत्तरोत्तर सामंजस्य की प्रक्रिया है।" इन परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है–अधिगम प्रशिक्षण तथा अनुभव द्वारा व्यवहार में ऐसा परिवर्तन है जो कि अपेक्षाकृत स्थायी होता है। वस्तुतः अधिगम एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसमें अनेक प्रकार की क्रियाएँ तथा प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं।

अधिगम की क्रिया कैसे सम्पन्न होती है? मुख्य रूप से व्यवहारवादी (Behaviourists), बुद्धिवादी या संज्ञानवादी (Mentalists or cognitivists) मनोवैज्ञानिकों के विचार इस संबंध में भिन्न-भिन्न हैं। व्यवहारवादी अधिगम के संदर्भ में वातावरणगत तत्वों को अधिक महत्व देते हैं। उनका मत है कि बालक अपने आपमें निष्क्रिय रहता है, उसका व्यवहार आंतरिक तथा बाह्य तत्वों से नियंत्रित रहता है। वह एक साधन मात्र है, जिसे विशेषकर बाह्य वातावरणगत तत्व कुछ नया सीखने के लिए बाध्य करते हैं। किसी विशिष्ट वातावरण में उद्दीपन 'एस' और अनुक्रिया 'आर' का बंधन (Bond) ही अधिगम है। यह बंधन किसी नाड़ी तंत्र में स्थापित होता है। 'एस' और 'आर' के साहचर्य स्वरूप जो बंधन बनते हैं वे प्रकृति में सार्वभौम (Universal) होते हैं। इसलिए व्यवहारवादी अधिगम 'आर-एस' सिद्धांत माना जाता है।

आदत को यंत्रवत स्वचालित बनाने के लिए व्यवहारवादियों ने अनेक सिद्धांत सुझाए हैं। थार्नडाइक ने प्रयास और त्रुटि के सिद्धांत और उसके लिए प्रभाव, अभ्यास और तत्परता के नियमों का प्रतिपादन किया है। स्किनर ने पुरस्कार या पुनर्बलन के सिद्धांतों पर बल दिया है। पावलाव के अनुबंधन ने सहज प्रतिक्रिया के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है।

अधिगम की इन मूलभूत धारणाओं की पृष्ठभूमि में व्यवहारवादी के विचार भाषा अधिगम के संबंध में इस प्रकार हैं–भाषा के अधिगम रूप में और अन्य विषयों या कौशलों के अधिगम रूपों में कोई सैद्धांतिक भेद नहीं है। भाषा वैसे ही सीखी जाती है जैसे गणित या विज्ञान सीखे जाते हैं। भाषा अधिगम का अर्थ है भाषाई आदत डालना। भाषा का यंत्रवत और स्वचालित ढंग से प्रयोग करना ही भाषा अधिगम का लक्ष्य है। भाषा सीखने के लिए भाषा को सूक्ष्म तत्वों में विभाजित करके उनको रटना, आवृत्ति करना या अभ्यास करना और उद्देश्यों से अभिप्रेरित होना भी आवश्यक है। भाषा प्रयोगों का अर्थ 'समझना' उतना आवश्यक नहीं है जितना कि उचित संदर्भ में उसका अनुकरण तथा आवृत्ति या कंठस्थ करना है। व्यवहारवादियों के अनुसार भाषाई वातावरण महत्वपूर्ण है। अर्थात् भाषा अधिगम उसके निविष्ट (Input) की प्रकृति पर निर्भर है। बालक जो कुछ सुनता है उसका अनुकरण और अभ्यास करता है। यदि यह निविष्ट आदर्श है तो उसकी अभिव्यक्ति या निर्गत (output) भी आदर्श होगा। अतः भाषा अधिगम में बालक की भाषा के प्रति अपना उद्भासन या संपर्क (Exposure) अधिक महत्वपूर्ण है। सभी प्रकार की भाषाओं के अधिगम में और उनकी आदतों को दृढ़ करने में आवृत्ति और यंत्रवत अभ्यास को बहुत उपयोगी माना गया है। भाषा प्रयोग की त्रुटियाँ भाषा अधिगम में बाधक हैं। अतः भाषा पर त्रुटि रहित अधिकार होने तक अभ्यास जारी रहना चाहिए।

इन व्यवहारवादी अधिगम सिद्धांतें ने अन्य/विदेशी भाषा के सीखने-सीखाने की प्रविधि को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। स्किनर के पुनर्बलन सिद्धांत पर अभिक्रमित शिक्षण विधि चल पड़ी। व्यवहारवादी धारणाओं के आधार पर ही संरचनावादी भाषाविज्ञानियों ने संरचना विधि का प्रतिपादन किया। संरचनावादी विलियम माउलटन के अधिगम के संदर्भ में भाषा की ये पाँच विशेषताएँ बतायीं हैं :

(1)भाषा मौखिक है, लिखित नहीं, (2) भाषा आदतों का समूह है, (3) भाषा सिखाने का उद्देश्य भाषा (भाषा कौशल) सिखाना है न कि भाषा के संबंध में जानकारी देना है, (4) भाषा का यथार्थ रूप वह माना जाना चाहिए जिसे मातृभाषा-भाषी वक्ता (आदर्श) बोलता है।

फ्रीज (1955) और कार्नोलियस (1953) के अनुसार मातृभाषा भी याद की जाती है। इसी प्रकार अन्य भाषा भी अनुकरण करके याद करनी चाहिए। भाषा के विविध असंख्य रूप रटकर या कंठस्थ करके ही सीखे जा सकते हैं। अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त भाषा शिक्षण शास्त्री राइवर्स (1964) का मत है–अन्य भाषा अधिगम मूलतः आदत निर्माण या यांत्रिक प्रक्रिया है। पुनर्बलन से भाषा दृढ़ होती है। भाषा एक व्यवहार है। व्यवहार करके ही भाषा का अधिगम हो सकता है। श्रवण और भाषण भाषा के मूल कौशल हैं इसलिए पठन और लेखन से पहले श्रवण तथा भाषण कौशल सिखाना चाहिए। भाषा सीखने के लिए विश्लेषण की अपेक्षा साद्देश्यता बेहतर आधार है। एक समय एक ही शिक्षण बिंदु लेना चाहिए। प्रथम बिंदु पर अधिकार करने के बाद ही दूसरा बिंदु लेना चाहिए।

मनोविज्ञान के क्षेत्रीय सिद्धांत का मत अधिगम की प्रक्रिया और स्वरूप के संबंध में व्यवहारवादियों से बिल्कुल अलग है। गेस्टाल्टवाद या अवयवीवाद अथवा समग्राकृतिवाद इस संप्रदाय का अग्रणी है। इसके प्रवर्तक मैक्स वरदीमीयर (Max Worthemier), कोफ्का (Kafka) और कोहलर (Kohler) हैं। गेस्टाल्टवादी की मान्यता है कि सीखने वाला अपने प्रत्यक्षीकरण और विचारों को संगठित और पुनःसंगठित करता रहता है। अधिगम की इस प्रक्रिया को 'सूझ' अंतर्दृष्टि द्वारा सम्पन्न मानते हैं। इसलिए इनका सिद्धांत "सूझ या अंतर्दृष्टि द्वारा सीखना माना गया है। इनके अनुसार अधिगम में सूझ का अर्थ है व्यक्ति स्थिति को सम्पूर्ण रूप में समझने में समर्थ है। सूझ वहीं काम करती हैं जहाँ समस्या का प्रत्यक्षीकरण होता है तथा कठिनाई के तत्वों को और उद्देश्यों को समझने की क्षमता होती है। सूझ बहुत कुछ प्रत्यक्षीकरण की क्षमता पर निर्भर है। अधिगम उसी सीमा तक प्रभावशाली होता है, जहाँ तक कि व्यक्ति आवश्यक साधन और साध्य के संबंधों की प्रत्यक्षीकरण कर सकता है। सूझ या अंतर्दृष्टि वह मानसिक संगठन है जिसके द्वारा एक समस्या सहसा अपने सब संबंधों के साथ स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगती है। सूझ से सीखने वाले की विशेषता यह है कि वह समस्या को निष्पक्ष रूप से देखता है। जब वह निष्पक्ष भाव से किसी समस्या का विश्लेषण करता है तो उसकी यह सूझ ही सहायता करती है। वस्तुतः सूझ अवधान के केंद्रीयकरण के आगे की स्थिति है, जिसके ऊपर संपूर्ण सफलता निर्भर करती है। सूझ में हम मस्तिष्क का वस्तु से एकीकरण करते हैं। वे क्रियाएँ सूझ से सीखने की क्रियाएँ मानी जा सकती हैं, जो व्यक्ति को स्थिति का अवलोकन कराके समस्या को पूर्ण रूप से समझने के योग्य बनाती है। गेस्टाल्टवादी किसी उद्दीपन की यंत्रवत अनुक्रिया को नहीं मानते। उनका मानना है कि समस्या को देखकर या वातावरण से प्रभावित होकर व्यक्ति मानसिक पूर्वानुमान या प्राक्कल्पना करता है और तब अनुक्रिया करता है। इस प्रक्रिया में दो मानसिक क्रियाएँ प्रधान रूप से काम करती हैं– (1) सामान्यीरकण और (2) विभेदीकरण। इस सूझ द्वारा सीखने में इन चार तत्वों की उपस्थिति अनिवार्य है – (1) पूर्ण समस्या का प्रस्तुतीकरण (3) अधिगम की गतिशीलता (4) ज्ञानात्मक तथा संवेगात्मक तत्परता और (5) सफलता प्राप्ति के लिए मार्ग दर्शन।

गेस्टाल्टवाद वस्तुतः संज्ञानात्मक या बुद्धिवादी चिंतन धारा के अति निकट है। संज्ञानवादी भी व्यवहारवादी अधिगम की धारणा के आलोचक हैं। उनका मत है कि 'एस-आर' द्वारा यांत्रिक अभ्यास अनुत्पादक है और नासमझ (Mindless) अभ्यास है। अधिगम वस्तुतः समस्या समाधान है, खोज है। सही नियमों की खोज करते हुए ही बालक सीखता है, केवल अंधानुकरण या यंत्रवत अभ्यास से नहीं। अधिगम आदत निर्माण नहीं है। अधिगम सहज है (innate), तार्किक गुणों से समझ का विकास करना है। विविध संरचनाओं के परस्पर संबंधों की खोज ही समझ है। वातावरण की अपेक्षा वातावरण की समझ महत्वपूर्ण है। बाह्य वातावरण की अपेक्षा आंतरिक वातावरण की संरचना अधिक महत्वपूर्ण है। व्यवहारवादी अधिगम प्रक्रिया को संज्ञानवादी पशुओं की अधिगम प्रक्रिया मानते हैं, मानव की नहीं। बालक या वयस्क के अधिगम में चिंतन, तर्क, प्रत्यक्षण, अंतर्दृष्टि प्राक्कल्पना,

समस्या समाधान की मानसिक क्रियाओं का अधिक योगदान है। संज्ञानवाद की मूल प्रकृति अंतःप्रज्ञात्मक (Intuitive) है।

इस सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में रूपांतरण-वयुत्पादनवादी (Transformation generative) भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा अधिगम/शिक्षण जगत को कुछ सूत्र दिए हैं–(1) भाषा यंत्रवत् व्यवहार नहीं है, (2) भाषा सीखने का मतलब शारीरिक या आंतरिक आदत डालने से नहीं है, वरन् भाषा की सर्जनात्मकता से है, (3) भाषा उत्तेजना-अनुक्रिया का परिणाम नहीं है। मनुष्य भाषा सीखने के वैशिष्ट्य के साथ पैदा होता है। मनुष्य और पशु में यही अंतर है कि पशुओं में यह वैशिष्ट्य नहीं पाया जाता, (4) भाषा का निष्पादन (Performance) वक्ता के भाषाई क्षमता या सामर्थ्य (Competence) सापेक्ष है, (5) जीवंत भाषा को ही भाषा का मानक रूप मानना चाहिए। जीवंत भाषा की विशेषताएँ व्याकरण के नियमों की व्युत्पादकता से अनुशासित होती हैं, (6) व्याकरण के नियम मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यथार्थ हैं, (7) निगमनात्मक उपागम आगनात्मक उपागम से अधिक बुद्धि गम्य है, (8) सादृश्य और विश्लेषणात्मक युक्तियों में संश्लेषणात्मक युक्ति मानव अधिगम प्रक्रिया के अधिक निकट है।

अधिगम का अंतरण

थार्नडाइक ने "समान अंशों का सिद्धांत" प्रतिपादित किया। इसी समय के आस-पास विद्वान युड., ने अंतरण के "सामान्यीकरण का सिद्धांत" का और स्पीयरमैन ने "सामान्य और विशिष्ट अंश का सिद्धांत" का प्रतिपादन किया। इस संबंध में अवयवीवाद के मनोविज्ञान पर आधरित "क्षेत्रीय संपूर्णता का सिद्धांत" बीसवीं शती के प्रारंभ से काफी लोकप्रिय हुआ। लेकिन थार्नडाइक का समान तत्वों का सिद्धांत अधिक लोकप्रिय रहा। वस्तुतः अंतरण को समझने के लिए "समान तत्वों का सिद्धांत" और "क्षेत्रीय संपूर्णता का सिद्धांत" दोनो ही महत्वपूर्ण हैं। थार्नडाइक के अनुसार पूर्वार्जित ज्ञान या अनुभव से नया ज्ञान या अनुभव जितना अधिक समान होगा उतनी मात्रा में अंतरण होता है, और जितने अंश में यह विषम होगा उतनी मात्रा में नकारात्मक या शून्य अंतरण होगा। क्षेत्रीय सिद्धांत के अनुसार वस्तुओं का निरीक्षण, परीक्षण और प्रत्यय ज्ञान प्राप्त करना ही अधिगम है। उसका अनुभव एक इकाई है।

मनोवैज्ञानिक सोरेन्सन ने अंतरण को इस प्रकार समझाया है– "अंतरण एक परिस्थिति में प्राप्त किए हुए ज्ञान, प्रशिक्षण और आदतों की दूसरी परिस्थिति में स्थानांतरण किए जाने की चर्चा करता है।" अर्थात् सीखे हुए किसी ज्ञान को अन्य समान परिस्थितियों में अथवा जीवन को अन्य क्षेत्रों में उपयोग में लाना ही अधिगम अंतरण है। द्वितीय भाषा के संदर्भ में यह अंतरण निर्विवाद है।

अंतरण वस्तुतः वर्तमान अधिगम पर अतीत अधिगम के प्रभाव से संबंधित है। यह प्रभाव जब नये अधिगम में सहायक होता है, तब सकारात्मक अंतरण कहलाता है। अर्थात् पूर्व अधिगम अनुक्रियाएँ जब नये परिवेश में पुनः उत्पन्न होती है तो सकारात्मक (पोजिटिव) अंतरण होता है। और जब उक्त प्रभाव नये अधिगम में बाधक बनता है, तब नकारात्मक (नेगेटिव) अंतरण कहलाता है। दूसरे शब्दों में उसी परिचित परिवेश में पूर्वार्जित अनुक्रियाएँ नई अनुक्रियाएँ उत्पन्न करती हैं, तो नकारात्मक अंतरण होता है और जब कोई अतीत अधिगम वर्तमान के अधिगम पर न सकारात्मक प्रभाव डालता है और न नकारात्मक, तब शून्य (जीरो) अंतरण होता है। सारांश यह है कि किसी भी अंतरण में सकारात्मक, नकारात्मक और शून्य ये तीनों अंतरण न्यूनाधिक देखे जा सकते हैं।

द्वितीय भाषा में होने वाली त्रुटियों की विशिष्टताएँ : अन्य भाषा के प्रयोग एवं व्यवहार में होने वाली त्रुटियों की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

(i) चूँकि अध्येता/प्रयोक्ता के पास पहले तक एक भाषा होती है, अतः अन्य भाषा को वह उसी के माध्यम से सीखने के लिए बाध्य होता है। (स्वीट, 1899)।

(ii) अन्य भाषा के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक संदर्भ प्रयोक्ता के लिए नए होते हैं। अतः उनके मूल्यों के अनुकूल भाषाई आदतों का निर्माण कर पाने में उसे काफी कठिनाई होती है।

(iii) अन्य भाषा के प्रयोग एवं व्यवहार में होने वाली त्रुटियाँ प्रारंभ में अत्यंत अधिक होती हैं, बाद में क्रमशः कम होती जाती हैं।

(iv) अन्य भाषा के प्रयोग एवं व्यवहार में प्रयोक्ता त्रुटियों से बचने के लिए चेष्टा करता है। उसकी सतर्कता जहाँ उसे अन्य भाषा के शुद्ध रूप की ओर ले जाती है, वहीं अन्य भाषा की आदत के निर्माण में विलंब करती है।

द्वितीय भाषा में होने वाली त्रुटियों के कारण :

(i) **मातृभाषा का व्याघात** : व्यक्ति जगत को भाषा के माध्यम से ही पहचानता, समझता है। इसमें भी उनके दैनिक जीवन के समस्त सामान्य संदर्भ मातृभाषा के माध्यम से ही अनुभूत एवं प्रकट होते हैं। अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया में जो भी विचार या वस्तु उसके समक्ष उपस्थित होते हैं, उन्हें वह मातृभाषा के माध्यम से ही ग्रहण करता है। तदनंतर अन्य भाषा में किया जाने वाला व्यहवार वस्तुतः उसकी मातृभाषा का भाषानुवाद ही होता है।

भाषानुवाद की अवस्था में अन्य भाषा के व्यवहार में अत्यधिक त्रुटियाँ होती हैं। इन त्रुटियों के मूल में मातृभाषा की संरचना के नियमों द्वारा अन्य भाषा की संरचना को नियंत्रित करने की मनोवैज्ञानिक चेष्टा और प्रक्रिया होती है। व्याघात की समस्याओं पर पिछले प्रसंग (5.7) में विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

(ii) **लक्ष्य भावा की संश्लिष्टता** : संश्लिष्टता में क्लिष्टता होती है। अन्य भाषा की ऐसी संरचनात्मक व्यवस्थाएँ जो संश्लिष्ट एवं क्लिष्ट होती हैं और जिनके प्रयोग एवं व्यवहार में उस भाषा के बोलने वाले ही गलतियाँ करते हैं, किसी अध्येता के लिए समस्यात्मक बिंदु होती हैं। ऐसे समस्यात्मक बिंदुओं को अध्येता बड़ी कठिनाई से समझ पाता है, और जब तक इन्हें पूरी तरह समझकर अपने व्यवहार में उतार नहीं पाता, गलतियाँ करता रहता है। उदाहरण के लिए अन्य भाषा के रूप में हिंदी का अध्ययन करने वाले 'ने' और 'लिंग' संबंधी बिंदुओं पर अत्यधिक त्रुटियाँ करते हैं। इसी प्रकार लिंग संबंधी अन्विति और संयुक्त क्रिया पदों की रचना में भी हिंदी को अन्य भाषा के रूप पढ़ने वाले गैर हिंदी भाषी लोग त्रुटियाँ करते हैं।

(iii) **मनो-सामाजिक सांस्कृतिक अंतराल** : अन्य भाषा के मनोसामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश एवं मूल्य लगभग भिन्न-भिन्न होते हैं। अध्येता उन्हें जल्दी आत्मसात नहीं कर पाता। फलतः अन्य भाषा में प्रयोग संबंधी त्रुटियाँ करता है।

(iv) **भाषा अधिगम प्रक्रिया में दोष** : अन्य भाषा के अधिगम की प्रक्रिया में यदि अध्येता अन्यान्य अधिगम युक्तियों के माध्यम से कुछ दोष पाल बैठता है तो उसके व्यवहार की अन्य भाषा दोषपूर्ण हो उठेगी। इस तरह अधिगमांतरण की प्रक्रिया में अध्येता द्वारा अपनाए गए दोष गलतियों के कारण बन जाते हैं।

14.6 वाक् विकार

भाषा में दो प्रकार की विकृतियाँ दिखाई देती हैं। भाषा दोष या भाषा त्रुटियाँ अर्जन की कमी के कारण अन्य भाषा या विदेशी भाषा के अध्येताओं में दिखाई देते हैं। ये अर्जन की

प्रक्रिया के सहज अंग हैं, इसीलिए इन्हें अध्येता दोष (learners' errors) कहा जाता है। नए अध्येताओं में दोषों की संख्या ज्यादा होती है, धीरे-धीरे कम होती जाती है। कुछ अध्येताओं के कुछ दोष कभी दूर नहीं होते। उन्हें हम जड़ीभूत दोष (fossilized errors) कहते हैं। जब बच्चे मातृभाषा सीखना शुरू करते हैं, तो उनकी भाषा में भी कई तरह के दोष दिखाई देते हैं। आमतौर पर मातृभाषा-भाषी वयस्क होने पर सामान्य गलतियाँ नहीं करता, फिर भी उनमें भी वर्तनी, शब्दार्थ संबंधी जड़ीभूत दोष आजीवन देखे जा सकते हैं। इस प्रकार की भाषा को हम बाधित (affected) भाषा कहेंगे।

भाषा में वाक् विकार (speech defects) मातृभाषा-भाषी की विशेषता हैं। वाक् विकार भौतिक या मानसिक कारणों से होता है। इस कारण ये व्यक्ति दूसरी भाषा सीखें तो उसमें भी वाक् विकार आ जाता है। ऐसी भाषा को हम विकृत (defective) भाषा कहेंगे।
वाक् विकार दो तरह के होते हैं।

14.6.1 आंगिक (शरीरजन्य) विकार

ये विकार शरीर रचना संबंधी असामान्यता के कारण होते हैं।

1. **श्रवण मंदता :** कान में विकार के कारण व्यक्ति पूर्ण या आंशिक रूप से बधिर हो सकता है। श्रवण बढ़ने के लिए शल्य चिकित्सा आवश्यक हो सकती है। हियरिंग एड कहीं सुधार ला सकता है। ये उपचार संभव न हों, तो विविध युक्तियों से लिखना, पढ़ना, बोलना सिखाया जा सकता है।

2. **मंद बुद्धिता :** यह मानसिक विकार है, जिसके कारण बच्चे सहज रूप से भाषा नहीं सीख पाते। मानसिक उपचार ही बालक के विकास में सहायक होता है।

3. **वाचाघात (Aphasia) :** मस्तिष्क की क्षति, पक्षाघात आदि के कारण संप्रेषण, अर्थ ग्रहण, चिंतन, सभी प्रभावित होते हैं।

4. खंड तालु, कटे होंठ आदि शारीरिक विकारों के कारण उच्चारण प्रभावित होता है। शल्य चिकित्सा से सुधार लाया जा सकता है।

14.6.2 मनोजन्य विकार

इन दोषो का प्रमुख कारण मानसिक है, यद्यपि इनमें भी शारीरिक कारण कहीं निहित रहते हैं। तीन प्रमुख विकार हैं :

1. **तुतलाना :** यह बालकों की सहज प्रवृत्ति है, जब वे मातृभाषा का अर्जन कर रहे हो। वे एकाध ध्वनियाँ नहीं बोल पाते हैं और उनकी जगह दूसरी ध्वनि का उपयोग करते हैं। जैसे 'करो' के स्थान पर 'कलो', 'डाँटना' के स्थान पर 'दाँतों'। बच्चे बड़े होते जाते हैं और अर्जन के साथ तुतलाहट दूर हो जाती है। लेकिन बड़े लोगों में तुतलाहट बनी रहे तो यह दोष माना जाएगा।

2. **हकलाना (stammering & stuttering) :** इस विकार में व्यक्ति शब्दारंभ की किन्हीं ध्वनियों के उच्चारण पर अटक जाता है और तीन-चार बार हकलाने के बाद शब्द का उच्चारण पूरा कर पाता है। जैसे, क्....क् कलम।

3. **विस्मृति (Amuesia) :** इस वर्ग में सहज रूप में भाषिक तत्वों का उपयोग न कर पाने का दोष दिखाई पड़ता है। कई प्रकार के विस्मृति दोष हैं, जैसे पठन अक्षमत (alexia - वर्ण न पहचान पाना), लेखन अक्षमता (agraphia - पद, शब्द आदि आवश्यक रूप न लिख पाना), व्याकरण के नियमों का अज्ञान (agrammaria), असंबोधिता (agnosia - प्रत्यक्षीकरण की अक्षमता याने देखकर भी न पहचानना) आदि।

14.6.3 वाक् विकार सुधार (speech therapy या speech pathology)

वाचाघात या मानसिक कारणों से उत्पन्न विकारों के उपचार हेतु हम जो युक्तियाँ अपनाते हैं उन्हें वाक् विकार सुधार की संज्ञा दी जाती है। अलग-अलग विकारों के लिए अलग-अलग उपचार हैं। विकार के मूल उत्स का अनुमान करने के बाद उसके निवारण के उपाय किए जाते हैं। उदाहरण के तौर पर हकलाने के मानसिक कारण हैं। हमें कोशिश करनी होगी कि व्यक्ति में आत्मविश्वास जगाएँ। फिर यह देखा जाए कि वक्ता किन ध्वनियों में अटकता है। उन ध्वनियों की शब्द सूची से अभ्यास कराना आत्मविश्वास बढ़ाता है। इसी तरह तुतलाने वाले के लिए भी भय, आशंका, तनाव से मुक्त कर बोलने का अभ्यास कराया जा सकता है। अभ्यास में शब्द सूचियों के उपयोग के साथ गायन, खेल, सस्वर पाठ आदि को भी शामिल किया जाना चाहिए, क्योंकि ये तनाव कम करते हैं।

विभिन्न प्रकार के स्मृतिजन्य दोषों के निवारण के लिए सबसे पहले व्यक्ति का मानासिक उपचार करना होगा, जिससे वे सहजता की स्थिति में आएँ। मानसिक स्वस्थता अपने आप ही भाषिक अक्षमता को दूर कर देती है। लेकिन दुनिवार्य स्थितियों में उपचार के लिए कुछ निर्देशः

1. **अभिप्रेरणा की आवश्यकता** : यदि प्रयास अधिक है और प्रगति कम तो निरुत्साहित रोगी प्रयास में कमी कर देगा। रोगी के परिवार वालों को और मित्रों को बहुत शीघ्र एवं तेज गति से सुधार की आशा नहीं रखनी चाहिए।

2. **अभिप्रेरणा की दिशा और मात्रा** : अत्यधिक सफलता का वचन देना कुंठा को जन्म देना है और कम सफलता का वचन भी रोगी के प्रयास को कम कर देगा। उद्देश्य का ठीक ज्ञान होना चाहिए एवं साथ ही रोगी के व्यावसायिक उद्देश्य को ध्यान में रखना चाहिए। रोगी के व्यावसायिक परीक्षण के लिए प्रश्नावली बना लेनी चाहिए। उसकी संवाहक और गतिवाहक शक्ति की सीमाओं को ध्यान में रखना चाहिए। उसकी विगत रुचि, शौक आदि का भी ध्यान रखना चाहिए।

3. **महत्वकांक्षा का स्तर** : सामान्य व्यक्ति अधिकतर अति सफलता या कम सफलता का अनुभव करते हैं। इस बात की संभावना हो सकती है कि वाचाघात का रोगी अपनी प्रगति के बारे में बहुत ऊँची कल्पना करे और प्रयास कम कर दे। अतः अभिप्रेरणा और सफलता की मात्रा के अनुमान में संबंध रखना चाहिए। कम सफलता की आशा रखने से भविष्य की असफलता और कुंठा को सहा जा सकता है।

4. **मूर्तता (Concretism)** : हर एक रोगी में विशिष्टता और मूर्तता या दृढ़ता की प्रवृत्ति उत्पन्न करना चाहिए। सांज्ञिक वाचाघात में चिकित्सक को कई प्रकार से प्रश्न करके नाम याद दिलाना चाहिए। इस कार्य में कौशल की आवश्यकता है। पद्धति में परिवर्तन होना चाहिए और पद्धति में विविधता भी होनी चाहिए, जिससे रोगी की शब्दों की साहचर्य की क्षमता सीमित न हो।

5. **परिरक्षण (Preservation)** : सामान्यतः व्यक्ति थके होने पर बचने की कोशिश करते हैं। चिकित्सक को जान लेना चाहिए कि यदि रोगी थका हुआ है, क्षुब्ध है और अरुचि प्रकट कर रहा है, तो सफलता कम मिलेगी।

6. **विध्वंसात्मक प्रतिक्रिया** : यह मानसिक और शारीरिक ह्रास की स्थिति है। इसमें कार्य हो नहीं पाता। अत्यधिक चरमावस्था की स्थिति में संज्ञाहीन स्थिति भी हो सकती है।

7. **मनोचिकित्सा** : रोगी को अपने चारों ओर के वातावरण मित्र संबंधी, परिवार आदि से सामान्य संबंध बनाने के लिए समय देना चाहिए। मनोचिकित्सा का लाभ तब तक नहीं है, जब तक कि रोगी का भाषा-ज्ञान पर्याप्त न हो।

8. **समूह चिकित्सा (Group Therapy)** : इससे रोगी को सामाजिकता का अनुभव होता है और एकांत को भूल जाता है। इस तरह के वातावरण में वह सामाजिक स्पर्धा एवं सामाजिक मान्यता का आनंद भी लेता है। लोकप्रिय गीतों का सामूहिक गान, सामाजिक व्यवहार का अभिनय आदि भाषा संबंधी अभ्यास में वृद्धि करते हैं।

भाषाहीन स्थिति में संगीतमय वातावरण का निर्माण किया जा सकता है। इसमे कुछ व्यक्तियों को गाने के लिए, कुछ को सीटी बजाने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

जब समूह में एक सौहार्द्रमय वातावरण बन जाए तो उन्हें हास्य एकांकी एवं पहेली का कार्यक्रम करने के लिए कहा जा सकता है। अन्य व्यक्तियों से अभिप्रेरणा का माध्यम सामूहिक प्रशिक्षण हो सकता हे। एक रोगी से आने वाली अभिप्रेरणा अधिक प्रभावपूर्ण है, अपेक्षाकृत किसी स्वस्थ व्यक्ति या वाणी सुधारक के सामूहिक चिकित्सा में हर रोगी को वाचाघात के उपचार की प्रक्रिया देखने को मिलती है। जबकि अन्य रोगी समझने या बोलने की चेष्टा करते हैं। उसे भी सहानुभूतिपूर्ण श्रोता मिल जाते हैं, जो निश्चय ही उपहास नहीं करते।

विविध तकनीकों का प्रयोग देखकर रोगी को भाषा प्रयोग का ढंग समझ में आ जाता है। अंतिम लाभ यह है कि सामूहिक चिकित्सा में रोगी को भावों की अभिव्यक्ति का और पीड़ा को व्यक्त करने का अवसर मिलता है। उसमें क्रूरता और आक्रामकता की भावना कम हो सकती है, जो ऐसे अवसरों पर बाहर आ जाती है। इस तरह वह बाद में स्वस्थ व्यक्तियों से अधिक अलगाव एवं ईर्ष्या का अनुभव नहीं करेगा।

14.7 सारांश

मनोभाषाविज्ञान मन और भाषा के संबंध को प्रकट करता है। संरचनात्मक भाषाविज्ञान भाषा को आदतों का समुच्चय मानता था। इस कारण उसमें मन का केंद्रीय महत्व नहीं था। चॉम्स्की भाषा को जन्मजात प्रवृत्ति मानते हैं और भाषा को मन में स्थापित नियमों का समुच्चय मानते हैं। इस कारण उनके उपागम में मन की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है। भाषा विश्लेषण की दृष्टि से भी वे अर्थ की अभिव्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में भाषा की अंतर्निहित संरचनाओं के विश्लेषण पर बल देते हैं।

दोनों ही उपागमों में मनोभाषाविज्ञान मुख्य रूप से दो भाषा से संबंधित दो पहलुओं पर कार्य हुआ है।

पहला पहलू है भाषा का अर्जन (प्रथम भाषा के रूप में) और भाषा का अधिगम (द्वितीय/विदेशी भाषा के रूप में)। भाषा को आदत मानने के कारण संरचनात्मक भाषाविज्ञान अर्जन और अधिगम में अधिक अंतर नहीं करता। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि संरचनात्मक भाषाविज्ञान में अधिगम पर ही अधिक कार्य हुआ है, जिससे वे आदतों के अंतरण (transfer) की समस्याओं की चर्चा कर सकें। अधिगम के अंतरण की चर्चा करते हुए वे अंतरण में बाधा डालने वाले रचना तत्वों की व्याख्या करते हैं और तुलनात्मक अध्ययन द्वारा इन तत्वों का अध्ययन करते हैं।

चॉम्स्की का प्रजननात्मक व्याकरण अर्जन को सबसे अधिक महत्व देता है, क्योंकि अर्जन की प्रक्रिया सहज है, जन्मजात है और अर्जन के अध्ययन से भाषा के स्वरूप का भी पता चलता है। अर्जन की तुलना में अधिगम आरोपित व्यापार है। चॉम्स्की के सिद्धांत को मानने वाले भाषा शिक्षणविद् यह भी मानते हैं कि आरोपित भाषा अधिगम की प्रविधि से मातृभाषा-

भाषी जैसी सहज अर्जन की प्रक्रिया अपनायी जाए, तो अध्येता सहज रूप में भाषा सीख सकते हैं।

इस संदर्भ में इस इकाई में बालक के संज्ञानात्मक (cognitive) और भाषाई विकास की भी चर्चा की गई है। संरचनात्मक भाषाविज्ञान मूलतः व्यवहारवादी है, चॉम्स्की का भाषाविज्ञान संज्ञानात्मक उपागम को लेकर चलता है। इस उपागम के पूर्ववर्ती विद्वान हैं जेस्टाल्ट मनोविज्ञान के अनुयायी और फ्रेंच मनोवैज्ञानिक प्याज़े। प्याज़े ने बच्चों के संज्ञानात्मक विकास पर महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। भाषाविज्ञान के क्षेत्र में चॉम्स्की के अनुयायियों ने अर्जन प्रक्रिया के अध्ययन के संदर्भ में बच्चों के भाषाई विकास पर कई महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। इस तरह मनोभाषाविज्ञान आधुनिक अवधारणाओं के संदर्भ में भाषा, बुद्धि, चिंतन सभी के विकास का भी अध्ययन करता है।

चॉम्स्की का सिद्धांत यह भी मानकर चलता है कि मातृ/अन्य/विदेशी भाषा के सीखने में त्रुटियों का होना सहज है। वे कहते हैं कि नियमबद्ध रूप से भाषा सीखने में होने वाली त्रुटियों से अर्जन की प्रक्रिया का भी बोध होता है। इस कारण वे भाषा तुलना की अपेक्षा भाषा दोष विश्लेषण को महत्वपूर्ण मानते हैं।

इन दोनों उपागमों के कारण भाषा की दृष्टि में, भाषा शिक्षण की दार्शनिक पृष्ठभूमि को समझने में बहुत अंतर आया और भाषा शिक्षण की विविध विधियों में इसका प्रस्फुटन हुआ। आप पूर्ववर्ती इकाइयों में इसके बारे में अध्ययन कर चुके हैं।

मनोभाषाविज्ञान का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है भाषा संबंधी विकारों का अध्ययन और उपचार के उपाय ढूँढ़ना। भाषा बोलने वालों की त्रुटियाँ अर्जन की कमी के कारण होती है। ये दोष अर्जन की प्रक्रिया के साथ कम होते जाते हैं। भाषा विकार शारीरिक या मानसिक कारणों से पैदा होते हैं। बधिरता, कटे होंठ आदि शारीरिक कारण भाषा को प्रभावित करते हैं। चिकित्सा से इनका निवारण किया जा सकता है। वाचाघात के कई रूप हैं, जो शारीरिक कारणों से उत्पन्न विकार हैं।

तनाव, आशंका आदि मानसिक कारणों से तुतलाना, हकलाना जैसे विकार भी होते हैं। इनका उपचार भौतिक या शारीरिक रूप से नहीं हो सकता।। भाषा विकृति सुधार (speech therapy) नामक विषय क्षेत्र में यह सिखाया जाता है कि किस तरह सुधारक तनाव कम करके, उचित अभ्यासों के द्वारा इन विकारों को दूर कर सकते हैं। वाचाघात जैसी स्थितियों में भी शारीरिक उपचार के साथ वाक् सुधार का अभ्यास कराया जाए, तो व्यक्ति सहज स्थिति में आ सकता है।

14.8 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

(1) मनोभाषाविज्ञान का परिचय देते हुए बताइए कि उससे क्या लाभ हैं?

(2) भाषा अर्जन और भाषा अधिगम की प्रक्रिया समझाइए।

2. टिप्पणियाँ

(1) वाक् विकार

(2) बालकों में भाषा का विकास

इकाई 15 भाषा-शिक्षण-I

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 भाषा-शिक्षण और भाषा
  15.2.1 मातृभाषा
  15.2.2 प्रथम भाषा
  15.2.3 अन्य भाषा (द्वितीय भाषा)
  15.2.4 विदेशी भाषा
15.3 भाषा-शिक्षण की प्रमुख विधियाँ
  15.3.1 व्याकरण विधि
  15.3.2 व्याकरण-अनुवाद विधि
  15.3.3 प्रत्यक्ष विधि
  15.3.4 संप्रेषणपरक भाषा-शिक्षण
15.4 भाषा-शिक्षण और सामग्री निर्माण
  15.4.1 भाषा व्यवहार से संबंधित सामग्री
  15.4.2 माध्यम एवं उपकरण
  15.4.3 बहुसंचार सामग्री
15.5 भाषा-शिक्षण की अधुनातन भूमिका
  15.5.1 संचार व्यवस्था में
  15.5.2 अनुवाद में
  15.5.3 अंतर्राष्ट्रीय संबंध निर्वाह में
15.6 सारांश
15.7 अभ्यास

15.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में भाषा-शिक्षण से संबंधित विविध संकल्पनाओं, शिक्षण विधियों, सामग्रियों तथा भाषा-शिक्षण की अद्यतन भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई द्वारा आप भाषाविज्ञान और अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के बीच के भेद तथा इन दोनों के अंतःसंबंध को समझ सकेंगे। इस इकाई में आपको अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के व्यापक क्षेत्र का भी परिचय मिलेगा और इसमें भाषा-शिक्षण का स्थान आप निर्धारित करेंगे।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- प्रथम भाषा/मातृभाषा, अन्य/द्वितीय भाषा, विदेशी भाषा, की संकल्पना स्पष्ट कर सकेंगे;
- व्याकरण के अनुवाद, प्रत्यक्ष विधि तथा सम्प्रेषणपरक भाषा-शिक्षण की विधियों की व्याख्या कर सकेंगे;
- भाषा-शिक्षण के लिए आवश्यक सामग्री के निर्माण की व्याख्या कर सकेंगे; और
- भाषा-शिक्षण की वर्तमान युग में भूमिका स्पष्ट कर सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

इस प्रस्तावना में हम अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान के संदर्भ में भाषा-शिक्षण की भूमिका उसकी पृष्ठभूमि तथा उसकी उपादेयिता पर विचार करेंगे। अन्य इकाइयों से आप को यह ज्ञात हो गया होगा कि आज मानव विज्ञानों में भाषाविज्ञान सबसे अधिक व्यापक एवं विकसित शास्त्र के रूप में अपना स्थान बना चुका है। आपने यह भी देखा होगा कि एक ओर भाषाविज्ञान की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि है जो किसी भी भाषा के संरचनात्मक विश्लेषण की

वैज्ञानिक दृष्टि हमे प्रदान करती है, दूसरी ओर भाषाविज्ञान अपने कार्य और प्रयोजन में एक वैविध्यपूर्ण शास्त्र है और तीसरी ओर अन्य कई शास्त्रों से उसका अटूट संबंध है। यही कारण है कि आज भाषाविज्ञान ने अपने आपको मानविकी विषयों में सबसे वैज्ञानिक विषय के रूप में और वैज्ञानिक विषयों में सर्वाधिक मानव केंद्रित विषय के रूप में स्थापित कर लिया है।

भाषाविज्ञान की वैज्ञानिकता और उसकी व्यापकता ने यह भी विचारणीय तथ्य सामने रखा है कि कई ऐसे प्रश्न हो सकते हैं जो हमें भाषा अध्ययन की ओर प्रेरित करते हैं। भाषा विश्लेषण के माध्यम से हम 'और कुछ' जानने सीखने और करने का प्रयास कर सकते हैं। संभवतः इसीलिए प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक हैलीडे ने संभावनाओं की खोज की दृष्टि से भाषा और भाषाविज्ञान को अनेक संभावनाओं का पुंज माना है। ऐसे अनेक विचार इस बात को प्रमाणित करते हैं कि भाषाविज्ञान मात्र अपने अध्ययन की वैज्ञानिकता या अपनी वैज्ञानिक विश्लेषण प्रक्रिया के कारण ही विश्वव्यापी ज्ञान के क्षेत्र के रूप में मान्य एवं लोकप्रिय नहीं बना है। उसकी मान्यता और लोकप्रियता का मुख्य कारण उसका प्रभावशाली अनुप्रयोग (application) के उपयुक्त होना है। हम भाषावैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुप्रयोग को सामान्य रूप से इस रूप में सामने रख सकते हैं कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भाषा वैज्ञानिक सिद्धांतों का अनुप्रयोग ही उसके अनुप्रयुक्त पक्ष को तीन संदर्भों में सामने लाता है।

(क) अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के तीन संदर्भ

1) ज्ञान के क्षेत्र का संदर्भ
2) विधा विशेष का संदर्भ
3) भाषा-शिक्षण का संदर्भ

(1) **ज्ञान क्षेत्र का संदर्भ** : ज्ञान क्षेत्र का संदर्भ भाषाविज्ञान और उसके सिद्धांत का अनुप्रयोग ज्ञान के किसी अन्य क्षेत्र को स्पष्ट करने के लिए करता है। यहाँ उदाहरण स्वरूप समाजशास्त्र और मनोविज्ञान को ज्ञान के अन्य क्षेत्रों के रूप में देखा जा सकता है। भाषा और समाज के अंतःसंबंधों का अध्ययन जब भाषा की प्रकृति और उसके प्रयोजनों को ध्यान में रखकर किया जाता है तब अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की इस शाखा को समाज भाषाविज्ञान कहा जाता है। इसी प्रकार भाषाविज्ञान का सहारा लेते हुए संज्ञानात्मक बोध और मन की वृत्तियों से संबंधित अध्ययन को मनोभाषाविज्ञान कहा जाता है।

(2) **विधा विशेष का संदर्भ** : यह संदर्भ अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान को विशेष विधाओं से जोड़ता है। इसके अंतर्गत शैली विज्ञान, अनुवाद विज्ञान, कोश विज्ञान आदि आते हैं। भाषा वैज्ञानिक सिद्धांत एवं प्रणाली का अनुप्रयोग इन विधाओं को एक निश्चित सैद्धांतिक संदर्भ देता है। यह इनके अध्ययन विश्लेषण के लिए एक सुनिश्चित तकनीक का भी विकास करता है और ऐसी संक्रियात्मक प्रणाली भी निर्मित करता है जिनके सहारे इन क्षेत्रों में अधिक नियमबद्ध ढंग से कार्य कर पाना संभव हो पाता है।

(3) **भाषा-शिक्षण का संदर्भ** : यह संदर्भ अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का सर्वाधिक प्रचलित संदर्भ है। प्रस्तुत इकाई में हम इसी संदर्भ पर विचार और अध्ययन करने जा रहे हैं। इस संदर्भ या क्षेत्र में भाषाविज्ञान की देन ने अपना अलग इतिहास ही बना लिया है। मातृभाषा और अन्य भाषा-शिक्षण, शैक्षिक व्याकरण और शिक्षण सामग्री, शिक्षण प्रणाली और शिक्षण तकनीक आदि सभी में भाषा वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि ने अपनी अनिवार्यता सिद्ध कर ली है।

(ख) भाषिक और अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान

भाषाविज्ञान की प्रकृति उसके उद्देश्यों और उसके कार्यों को तथा अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की प्रकृति स्वरूप और प्रयोजन को यदि साफ-साफ देख लिया जाए तो हम अभी तक की

गई चर्चाओं को और भी स्पष्ट ढंग से समझ सकते हैं :

भाषाविज्ञान	अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान
1. भाषाविज्ञान भाषा की आंतरिक प्रकृति पर प्रकाश डालता है।	1. अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान उपभोक्ता सापेक्ष (consumer oriented) होता है।
2. उसका मूल उद्देश्य भाषा संबंधी सिद्धांत का विवेचन और प्रतिपादन है।	2. यह उपभोक्ता की आवश्यकताओं द्वारा नियंत्रित लक्ष्य का परिणाम होता है।
3. सिद्धांतों के औचित्य और उसकी सार्थकता की सिद्धि के लिए ही वह भाषा संबंधी तथ्यों का संकलन और विश्लेषण करता है।	3. इसका क्षेत्र भाषा के उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं द्वारा निर्धारित लक्ष्य संदर्भ में भाषा-संबंधी सिद्धांतों के अनुप्रयोग का क्षेत्र है।
4. भाषा वैज्ञानिक सिद्धांत यह बताता है कि 'भाषा क्या है'।	4. इसका क्षेत्र इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि 'भाषा से हम क्या काम ले सकते है।'
5. वह हमें भाषा संबंधी सैद्धांतिक और व्यावहारिक अंतर्दृष्टि देने में समर्थ है।	5. यह अपने सिद्धांत और प्रणाली के आधार पर भाषा से संबंधित ज्ञान के अन्य क्षेत्रों के अध्ययन-विश्लेषण के लिए संक्रियात्मक (operational) क्षमता का रास्ता खोलता है।
6. भाषाविज्ञान की विषयवस्तु 'भाषा' है और अध्ययन प्रणाली वैज्ञानिक।	

जैसा कि अभी तक कही गई बातों से आपके सामने यह स्पष्ट हो गया होगा कि अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का एक संदर्भ भाषा-शिक्षण भी है। इतना ही नहीं भाषाओं के शिक्षण का क्षेत्र भाषाविज्ञान के उन अनुप्रयुक्त क्षेत्रों में से एक है जिनके साथ सर्वाधिक लोग संबद्ध हैं। मातृभाषा और अन्य भाषा दोनों के शिक्षण में भाषा वैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रयोग भाषाओं का बेहतर विवरण प्रस्तुत करने के लिए किया जाता है। भाषा-शिक्षण के संदर्भ में भाषाविज्ञान की इस संबद्धता को समझने के लिए हमें निम्नलिखित विचारों पर ध्यान देना चाहिए :

(1) भाषा-शिक्षण में भाषा शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है लेकिन भाषाशिक्षक भाषाविज्ञान नही पढ़ाता। वह 'भाषा' पढ़ाता है जो भाषाविज्ञान की अध्ययन वस्तु है। भाषाविज्ञान भाषा-शिक्षण के लिए भाषा का अच्छे से अच्छा विवरण उपलब्ध कराता है। यह भी कहा जा सकता है कि भाषा शिक्षक अनुप्रयुक्त भाषावैज्ञानिक सिद्धांतों का उपभोक्ता होता है।

(2) भाषा वैज्ञानिक द्वारा प्रदत्त भाषा विवरणों का प्रयोग भाषा शिक्षक करता है। इनका प्रयोग वह भाषा-शिक्षण कार्यक्रम की योजना बनाने के लिए करता है अतः भाषा शिक्षक स्वयं सिद्धांतों का सर्जक या निर्माता नहीं होता, उपभोक्ता होता है।

(3) भाषाविज्ञान द्वारा प्रदत्त विवरण भाषा-शिक्षण की पाठ्य सामग्री बनाने में भी सहायक होते हैं। यह निश्चित है कि भाषा विज्ञान द्वारा प्रदत्त विवरण स्वयं भाषा-शिक्षण की सामग्री नहीं बन सकते। इन विवरणों के आधार पर पाठ सामग्री निर्माता को यह पता लगता है कि कौन-सा विवरण बेहतर है और उसे किस रूप में शिक्षण कार्यक्रम में स्थान देना है। अच्छे विवरणों को रेखांकित करके उनका चयन करके और उन्हे पढ़ाने के लिए शैक्षिक (pedagogical) विधियों का उपयोग करते हुए वह अभिक्रमित (graded) पाठ्य सामग्री निर्मित करता है। इस प्रकार पाठ्य पुस्तक एवं शिक्षण सामग्री लेखक के लिए भी भाषा वैज्ञानिक अनुप्रयोग अभीष्ट ही नहीं, अनिवार्य भी है।

(4) भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का लक्ष्य उन विषयों और पक्षों को दृढ़ करना है जो कक्षा की पृष्ठभूमि में कार्य करते हैं जैसे भाषा विवरणों का अभिक्रम तय करना, पाठ्य पुस्तकों का मूल्यांकन करना, भाषा पाठ्यक्रम को नियोजित करना, शिक्षार्थियों की अभिवृत्ति (attitude) का परीक्षण करना और भाषा-शिक्षण की सामग्री और शिक्षार्थी अधिगम (learning) का मूल्यांकन करना आदि।

(5) अन्य भाषा-शिक्षण में अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का योगदान एक अन्य धरातल पर भी है। यह धरातल अन्य भाषा की मातृभाषा से तुलना का है। विवरण और तुलना इन दोनों अनुप्रयोगों से जुड़ कर ही अन्य भाषा-शिक्षण वैज्ञानिक बनता है। इसे ही व्यतिरेकी भाषाविज्ञान (contrastive linguistics) कहा गया है।

प्रस्तुत इकाई में हम भाषा-शिक्षण से संबंधित इन सभी संकल्पनाओं पर विचार करेंगे।

15.2 भाषा-शिक्षण और भाषा

भाषा-शिक्षण का सीधा संबंध 'भाषा' से होता हे। यहाँ सीखने और सिखाने वाली 'वस्तु' भाषा ही होती है। अर्थात् भाषा-शिक्षण की अध्ययन वस्तु भाषा होती है। भाषा, जो भाषावैज्ञानिक अध्ययन की 'अध्ययन वस्तु' भी है। अतः भाषा-शिक्षण में भाषा ही साध्य भी है और साधन भी। आज भाषा को एक सामाजिक वस्तु के रूप में भी पहचान मिली है। उसे सामाजिक वस्तु मानने का मूल कारण भाषा से मनुष्य का अटूट अंतःसंबंध है। भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में भी भाषा सीखने सिखाने वाले दोनों ही मनुष्य होते हैं। भाषा-शिक्षण में इसीलिए आज अध्येय भाषा के साथ भाषा-अध्येता, उसके अभिप्रेषण (motivation) तथा उसकी मनोवृत्ति को केंद्रीय स्थान प्रदान किया गया है। इस दृष्टि से भाषा अधिगत (language acquistition) का महत्व भी रेखांकित हुआ है। भाषा-शिक्षण ,का लक्ष्य अनिवार्यतः उद्देश्य बाधित होता है। भाषा अध्येता भाषा किसी न किसी विशेष उद्देश्य या प्रयोजन के संदर्भ में ही सीखता है और इन्हीं संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में उसे भाषा सिखाई भी जाती है।

आज भाषा-शिक्षण को भाषा अध्येता और भाषा प्रयोक्ता की विभिन्न आवश्यकताओं के संदर्भ में गहराई से देखा जा रहा है। इसका कारण यही है कि भाषा-शिक्षण के उद्देश्य और प्रयोजन के निर्धारण को भाषा-शिक्षण की अपेक्षित सफलता के अनिवार्य घटक के रूप में देखना अब आवश्यक माना जा रहा है। यह भी माना जा रहा है कि भाषा-शिक्षण के उद्देश्य-प्रयोजन की सिद्धि प्रयोक्ता हैं (शिक्षार्थी या अध्येता) सापेक्ष होती है। अध्येता सापेक्ष भाषा-शिक्षण की संकल्पना ने अध्येय वस्तु भाषा के एकाधिक भेद किए। इन भाषा प्रकारों को हम भाषा-शिक्षण की उद्देश्य सिद्धि के साधक भेद भी कह सकते हैं। ये भेद दो हैं :

1. मातृभाषा (Mother tongue)
2. अन्य भाषा (other tongue)

भाषा-समूहों और भाषा-समाजों में भाषिक-स्थिति के भेद के कारण इन दोनों प्रकारों को कुछ उप प्रकारों में भी विभाजित किया गया है। इस विभाजन को रवींद्रनाथ श्रीवास्तव (1992) ने विवेचित किया है। उनके इस विवेचन को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है :

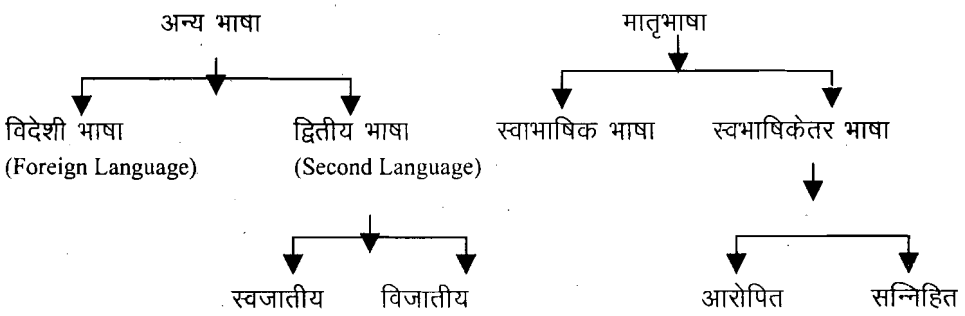

स्पष्ट है कि भाषा-शिक्षण के संदर्भ में मुख्य विभाजन मातृभाषा और अन्य भाषा के रूप में उभरता है। मातृभाषा के रूप में तथा अन्य भाषा के रूप में भाषा-शिक्षण अपनी प्रकृति, प्रणाली तथा अध्येता की अपनी आवश्यकता, प्रयोजन एव अभिप्रेरण के कारण भिन्न हो जाता है। अब हम मातृभाषा और अन्य भाषा को केंद्र में रखकर भाषा-शिक्षण की भिन्नता पर विचार करेंगे।

15.2.1 मातृभाषा (Mother tongue)

मातृभाषा एक संस्थागत (institiutional) यथार्थता है। इसका कारण यह है कि मातृभाषा ही व्यक्ति को बृहत्तर सामाजिक संदर्भों से जोड़ती है। मातृभाषा के द्वारा ही व्यक्ति अपनी सामाजिक अस्मिता निर्धारित करता है। यहाँ हम उदाहरण के लिए हिंदी भाषा को मातृभाषा के रूप में सीखने वालों की चर्चा कर सकते हैं। हिंदी भाषा समुदाय मूल रूप में बोली भाषी समूहों से निर्मित है। हिंदी की इन बोलियों को हम हिंदी की अधीनस्थ बोलियाँ (suboridnate language) कहते हैं, जैसे : ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली, मगही आदि। इन बोलियों के प्रयोक्ता अपने बोली-क्षेत्र के बाहर के एक बृहत्तर समाज से जुड़ने तथा अपनी सामाजिक अस्मिता स्थापित करने के लिए हिंदी को मातृभाषा के रूप में स्वीकारते और सीखते हैं। इस प्रकार व्यक्ति के समाजीकरण में मातृभाषा की अहम् भूमिका होती है। वास्तव में व्यक्ति मातृभाषा अधिगम (Mother tongue learning) द्वारा कई क्षमताएँ अर्जित करता है :

1. मातृभाषा के माध्यम से व्यक्ति ज्ञान (knowledge) को अनुभवसिद्ध करने की क्षमता अर्जित करता है।
2. मातृभाषा के माध्यम से व्यक्ति की बोधन क्षमता (comprehensive competence) विकसित होती है।
3. मातृभाषा के माध्यम से ही व्यक्ति अपनी अनुभूतियों और संवेदनाओं को बहुविध ढंग से व्यक्त कर पाने में सक्षम बनता है।
4. मातृभाषा के माध्यम से ही व्यक्ति अपने समाज और संस्कृति में अपना स्थान ढूँढ़ने और निर्धारित करने में समर्थ होता है।
5. मातृभाषा ई व्यक्ति को उसके अनेक बौद्धिक व्यवहारों को साधने, नियंत्रित करने और संपन्न करने में सक्षम बनाती है।

इस प्रकार किसी भी भाषा-समाज (Language community) के लिए उसकी मातृभाषा एक सामाजिक यथार्थ (social reality) है। यदि शिक्षा के संदर्भ में देखा जाए तो व्यक्ति की मातृभाषा ही सामान्यतः उसकी साक्षरता (literacy) का आधार बनती है। साक्षरता का आधार वही भाषा बनती है जिसे व्यक्ति सहज और स्वाभाविक रूप में बोलने-समझने में समर्थ होता है, अर्थात् उसकी अपनी मातृभाष। शिक्षा के ही संदर्भ में हम यह देखते हैं कि एक ओर मातृभाषा स्वयं साध्य बनती है क्योंकि व्यक्ति अपनी मातृभाषा का औपचारिक शिक्षण प्राप्त करता है और दूसरी ओर मातृभाषा अन्य विषयों के शिक्षण के लिए माध्यम

भाषा के रूप में कार्य करती है। जब हम कोई भी विषय पढ़ते हैं तो उसके साथ उसकी माध्यम भाषा जुड़ी होती है। अतः यदि हम किसी विषय को जानना-समझना चाहते हैं तो हमारे लिए उस माध्यम भाषा को समझना भी अनिवार्य है जिसमें वह विषय व्यक्त करता है। मातृभाषा-शिक्षण की दृष्टि से यह आवश्यक है कि हम यह विवेचित कर सकें और पहचान सकें कि हमारी भाषा भौतिक विज्ञान, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि विषयों को किस प्रकार व्यक्त करती है। यह ध्यान रखें कि भिन्न विषयों को व्यक्त करने वाली शैली भिन्न होती है। अपनी मातृभाषा में इन शैलियों को पहचानना और प्रयोग में ला पाने की सामर्थ्य उत्पन्न करना मातृभाषा-शिक्षण के महत्वपूर्ण उद्देश्यों में से एक है। अतः मातृभाषा-शिक्षण को यथार्थपरक और सार्थक बनाने के लिए उसे शिक्षा की माध्यम भाषा के रूप में उभारना और बहुआयामी बनाना अनिवार्य है।

जैसा कि पहले भी बताया गया कि मातृभाषा व्यक्ति के लिए समाजीकरण का साधन होती है। मातृभाषा-शिक्षण में भी इस तथ्य पर ध्यान देना चाहिए कि शिक्षार्थी अपने समाजीकरण को अधिकाधिक उपलब्ध कर सके। भारतीय संदर्भ में, विशेषकर हिंदी भाषा के संदर्भ में यह तथ्य और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

15.2.2 प्रथम भाषा (First Language)

बालक समाज में भाषा का अर्जन करता है। प्रथम भाषा वह भाषा है जिसे बालक भाषा के रूप में सबसे पहले स्वाभाविक व्यापार के रूप में सीखता है। हिंदी भाषा के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि सामान्यतः हिंदी की विभिन्न बोलियाँ उसके प्रयोक्ता के लिए प्रथम भाषा होती हैं। इन बोलियों का प्रयोग ही बालक के परिवार में तथा उसके आत्मीय परिवेश में होता है और सबसे पहले बालक इन्हें ही प्रथम भाषा के रूप में अर्जित करता है। यह भी कहा जा सकता है कि हिंदी भाषा समुदाय का बालक बोली को ही अपनी माँ की गोद में पलते हुए प्रथम भाषा के रूप में सीखता है। बोली के सहारे ही बालक अपने परिवार के सदस्यों तथा निकट परिवेश मे रहने वाली पड़ोसियों, रिश्तेदारों आदि से संबंध स्थापित करते हुए सामाजिकता की ओर बढ़ता है। प्रथम भाषा और मातृभाषा की संकल्पना में कई समानताएँ हैं और कुछ सूक्ष्म भेद भी हैं। कई विद्वानों ने प्रथम भाषा को 'मातृ बोली' (तिवारी : 80) कहना उपयुक्त समझा है क्योंकि हिंदी भाषियों की प्रथम भाषा ये बोलियाँ ही हैं जो बालक के परिवार तथा अन्य आत्मीय क्षेत्रों में प्रयुक्त होती हैं। भाषा$_1$ और भाषा$_2$ की संकल्पना पर विचार करते हुए कैटफर्ड (59 : 265) ने प्रथम भाषा की परिभाषा इन शब्दों में दी है : "प्रथम भाषा वक्ता के व्यक्तिगत दैनिक जीवन की भाषा होती है।"

बालक प्रथम भाषा से मातृभाषा का ओर बढ़ता है। शिक्षा के लिए और साक्षरता के लिए बोली भाषी हिंदी भाषा को मातृभाषा के रूप में अपनाता है। यह भी कहा जा सकता है कि हिंदी भाषा समुदाय के लिए उसकी बोलियाँ प्रथम भाषा हैं और हिंदी मातृभाषा के रूप में सिद्ध भाषा है। हिंदी भाषा के सहारे ही इस भाषा समाज के लोग अपनी सामाजिक अस्मिता स्थापित करते हैं। मातृभाषा और प्रथम भाषा के संदर्भ में हिंदी भाषा समुदाय का उदाहरण बहुत ही उपयुक्त है।

15.2.3 अन्य भाषा (द्वितीय भाषा और विदेशी भाषा)

मातृभाषा से इतर किसी दूसरी भाषा को अन्य भाषा के अंतर्गत रखा जाता है। भाषा-शिक्षण में भी मातृभाषा-शिक्षण और अन्य भाषा-शिक्षण को अलग-अलग रख कर देखा गया है। अन्य भाषा की आवश्यकता जिन वैयक्तिक और सामाजिक संदर्भों में पड़ती है वह मातृभाषा की आवश्यकता से भिन्न होती है, अन्य भाषा को दो वर्गों में विभाजित किया गया है :

1. द्वितीय भाषा (Second Lanaguage)
2. विदेशी भाषा (Foreign Language)

द्वितीय भाषा

द्वितीय भाषा मातृभाषा के साथ सहयोजित होती है। ये भाषाएँ एक ही राष्ट्र की होती हैं और इनका सामाजिक ऐतिहासिक विकास क्रम भी समान होता है; अर्थात् मातृभाषा और द्वितीय भाषा का परिवेश कई स्थितियों में समान होता है। उदाहरण के लिए यदि यह कहा जाए कि हिंदी किसी की मातृभाषा है तो अन्य भारतीय भाषाएँ जैसे तेलुगु, तमिल, मराठी आदि उसके लिए द्वितीय भाषा होंगी क्योंकि इनका परस्पर संबंध और संपर्क भी है और सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टि से इनमें बहुत दूरी नहीं है। इन्हें इसीलिए 'सजातीय द्वितीय भाषा' भी कहा गया है।

परस्पर संपर्क और लंबे समय तक भारतीय भाषाओं के बीच रहने के कारण भारतीय भाषाओं के संदर्भ में अंग्रेज़ी भाषा को भी द्वितीय भाषा माना गया है। अंग्रेज़ी भाषा सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीय भाषाओं से नितांत भिन्न है लेकिन द्वितीय भाषा के रूप में परस्पर संपर्क के कारण भारतीय अंग्रेज़ी का ऐसा स्वरूप उभरा है जिससे कि हिंदी या अन्य भारतीय भाषायी समाज के संदर्भ में अंग्रेज़ी भाषा द्वितीय भाषा के रूप में सिद्ध है। अंग्रेज़ी को द्वितीय भाषा के रूप में स्वीकारने के कई कारण हैं। अंग्रेज़ी ने भारतीय भाषा समाज में सामाजिक-सांस्कृतिक आचरण के लिए एक विकल्पवत भाषा के रूप में अपना स्थान बनाया है। अंग्रेज़ी के इस स्थान को देखते हुए ही भारतीय गणतंत्र की सहराजभाषा के रूप में भी अंग्रेज़ी को मान्यता दी गई है। अंग्रेज़ी तकनीकी ज्ञान, उच्च शिक्षा और अन्य औद्योगिक व्यावसायिक क्षेत्रों में प्रचलित भाषा है। इसीलिए भारत में अंग्रेज़ी सीखने के पीछे निरंतर एक सामाजिक दबाव काम करता है। भारतीय संदर्भ में अंग्रेज़ी विजातीय द्वितीय भाषा है क्योंकि उसमें विदेशी भाषा के सामाजिक संदर्भ और सांस्कृतिक मूल्य समाविष्ट है। जिस प्रकार अंग्रेज़ी भाषा द्वितीय भाषा के रूप में सिद्ध है उसी प्रकार भारत के अन्य भाषायी समाज के लिए हिंदी द्वितीय भाषा के रूप में स्थित है। हिंदी भी भारतीय भाषा-भाषियों के सामाजिक आचरण का एक विकल्प है। हिंदी को संघ की राजभाषा घोषित किया गया है। संघ की राजभाषा होने के कारण हिंदीतर प्रदेशों में द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी का प्रचलन बढ़ा है। हिंदी के माध्यम से अब कामकाज के अवसर भी सामने आए हैं इसलिए हिंदी सीखने के पीछे भी अब एक द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी ने संपर्क भाषा का अपना स्वरूप भी विस्तृत किया है। भारत की दो भिन्न भाषाओं को बोलने वाले परस्पर संपर्क के लिए हिंदी का प्रयोग करते हैं। रेलवे प्लेटफॉर्म, बस अड्डों आदि पर प्रमुख संपर्क भाषा का कार्य हिंदी ही करने लगी है। संक्षेप में द्वितीय भाषा के निम्नलिखित लक्षण निर्धारित किए जा सकते हैं :

1. द्वितीय भाषा प्रयोक्ता की अपनी संस्कृति की अभिव्यक्ति का विकल्पवत दूसरा माध्यम होती है।
2. द्वितीय भाषा मातृभाषा के निकट होती है। परस्पर संपर्क और परिवेशगत समानता के कारण द्वितीय भाषा मातृभाषा से प्रभावित होती है और उसे प्रभावित करती है।
3. मातृभाषा के समान द्वितीय भाषा अनिवार्य नहीं होती लेकिन सामाजिक दबाव के कारण उसे सीखना पड़ता है।
4. कई संदर्भों में प्रयोक्ता के मानसिक विकास में द्वितीय भाषा सहायक होती है। कई बार यदि द्वितीय भाषा का ज्ञान न हो तो प्रयोक्ता को कई व्यावहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है।
5. द्वितीय भाषा प्रयोक्ता की अपनी भाषा के समानांतर होती है। इसीलिए व्यक्ति मातृभाषा के समान ही द्वितीय भाषा में भी वैचारिक और सर्जनात्मक लेखन करने में सक्षम बन जाता है।
6. द्वितीय भाषा का ज्ञान अपने देश की सभ्यता और संस्कृति को समझने में बड़ी सहायता पहुँचाता है।

7. द्वितीय भाषा के प्रति प्रयोक्ता में आत्मीयता का भाव होता है। अभिप्रेरणा के स्तर पर वह उसे उतने ही मनोयोग से सीखने का प्रयत्न करता है जितने मनोयोग से वह अपनी मातृभाषा सीखता है।

8. द्वितीय भाषा के रूप में अपनाई जाने वाली भाषा अपने अलग मानक रूप का निर्माण करती है जैसा कि अंग्रेज़ी भाषा के साथ हुआ है।

9. द्वितीय भाषा मातृभाषा की स्थानापन्न बनने का प्रयत्न नहीं करती। उसे सह अस्तित्व की भावना से मातृभाषा के साथ सहयोजित भाषा के रूप में स्वीकार किया जाता है।

15.2.4 विदेशी भाषा

विदेशी भाषा न तो प्रयोक्ता के भाषायी समुदाय की भाषा होती है और न ही सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टि से वह मातृभाषा के निकट होती है। वास्तव में विदेशी भाषा किसी अध्येयता द्वारा सीखी गई वह भाषा है जो उससे पूर्व न तो उसके संपर्क में आती है और न ही उसका मातृभाषा की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियों अथवा ऐतिहासिक भौगोलिक परिवेश से कोई संबंध होता है। यदि इस दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय संदर्भ में अन्य भाषा के रूप में रूसी, फ्रेंच, जर्मन आदि विदेशी भाषाएँ हैं। विदेशी भाषा के निम्नलिखित लक्षण हैं :

1. विदेशी भाषा प्रयोक्ता के अपने भाषायी समाज अथवा राष्ट्र से भिन्न किसी अन्य समाज अथवा राष्ट्र की संस्कृति को समझने का माध्यम होती है।

2. विदेशी भाषा सीखने के पीछे कोई गहरा सामाजिक दबाव नहीं होता।

3. विदेशी भाषा का बहुत गहरा असर प्रयोक्ता के मानसिक विकास पर नहीं पड़ता।

4. विदेशी भाषा का प्रयोक्ता उसे ग्रहणशीलता के स्तर पर ही अपनाता है इसलिए विदेशी भाषा में वैचारिक और सर्जनात्मक लेखन बहुत कम ही संभव हो पाता है।

5. विदेशी भाषा का जो मानक रूप होता है उसे उसी रूप में सीखना पड़ता है।

6. विदेशी भाषा सीखने के लिए अध्येयता व्यक्तिगत स्तर पर पहल करता है विदेशी भाषा के प्रति उसमें भावात्मक लगाव प्रायः नहीं होता।

इन लक्षणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय संदर्भ में अंग्रेज़ी को छोड़कर फ्रेंच, जर्मन, रूसी, जापानी आदि भाषाएँ विदेशी भाषाएँ हैं। इन्हें विदेशी भाषा के रूप में वर्गीकृत करने का मूल कारण यह है कि ये न तो अपने देश की मूल भाषाएँ हैं और न ही हम इनका प्रयोग अपने देश की सामाजिक, सांस्कृतिक और सर्जनात्मक क्षमता को बढ़ाने के लिए करते हैं।

15.3 भाषा-शिक्षण की प्रमुख विधियाँ

इस प्रकार भाषा-शिक्षण की दृष्टि से भाषा को मातृभाषा और अन्य भाषा के रूप में वर्गीकृत किया गया है। भाषा-शिक्षण के संदर्भ में विशेष रूप से अन्य भाषा-शिक्षण की दृष्टि से किया गया है और भाषा-शिक्षण की अनेक विधियों की चर्चा की गई है। इन विधियों का उपयोग मातृभाषा-शिक्षण और अन्य भाषा-शिक्षण में किया जाता है। भाषा-शिक्षण का सबंध 'भाषा' से है अतः भाषा अध्ययन और अध्यापन से, संबंधित जो सिद्धांत और प्रणालियाँ विकसित हुई हैं उनमें भाषा अधिगम (Learning) का स्थान प्रमुख है। भाषा-शिक्षण की सफलता इन्हीं विधियों पर निर्भर करती है। समय-समय पर भाषा-शिक्षण प्रणाली में हमें अनेक विधियाँ प्रचलित दिखाई देती हैं। इस क्षेत्र के प्रमुख विद्वान मैके ने पंद्रह शिक्षण विधियों का उल्लेख किया है :

1) प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)
2) स्वाभाविक विधि (Natural Method)
3) मनोवैज्ञानिक विधि (Psychological Method)
4) ध्वनि वैज्ञानिक विधि (Phonetic Method)
5) वाचन विधि (Reading Method)
6) व्याकरण विधि (Grammer Method)
7) संकलन विधि (Electic Method)
8) इकाई विधि (Unit Method)
9) भाषा नियंत्रण विधि (Language Control Method)
10) अनुकरणात्मक विधि (Mimicry memorization Method)
11) अभ्यास सिद्धांत विधि (Practice theory Method)
12) सजातीय विधि (Cognate Method)
13) द्विभाषीय विधि (Duel Language Method)
14) अनुवाद विधि (Translation Method)
15) व्याकरण-अनुवाद विधि (Grammer-Translation Method)

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भाषा-शिक्षण विधि के विकास में चार प्रमुख पड़ाव आए हैं :

1. व्याकरण विधि
2. व्याकरण अनुवाद विधि
3. प्रत्यक्ष विधि और
4. संप्रेषणपरक भाषा-शिक्षण

यहाँ इन पर संक्षेप में विचार किया जाएगा।

15.3.1 व्याकरण विधि

व्याकरण विधि के अंतर्गत अन्य भाषा के नियमों को याद कराया जाता है। पहले शब्दों के माध्यम से और फिर शब्द संयोजन और व्याकरणिक नियमों के आधार पर अभ्यास कराए जाते हैं। इनमें व्याकरणिक नियमों की जानकारी को वास्तविक भाषा प्रयोग की अपेक्षा अधिक महत्व दिया गया इसलिए बाद में इस शिक्षण विधि की आलोचना हुई।

15.3.2 व्याकरण अनुवाद विधि

यह विधि पूरे विश्व में 19वीं शताब्दी तक मान्य रही। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, यह विधि दो तत्वों पर आधारित है - व्याकरण और अनुवाद। व्याकरण के स्तर पर यह विधि भाषा$_2$ के रूपात्मक विवरण पर आधारित थी। इसके साथ ही इस विधि में भाषा$_1$ और भाषा$_2$ के बीच अनुवाद प्रक्रिया को महत्व दिया जाता था। इसमें अध्यापक द्वारा निर्देशित शब्द भेद, धातु रूप, कारक और काल रचना आदि नियमों को छात्रों के लिए याद करना और फिर द्विभाषी शब्द कोशों की सहायता से उनका अनुवाद करना अपेक्षित था। इस प्रकार यह विधि सीखी जाने वाली भाषा को मातृभाषा के परिप्रेक्ष्य में रखकर सीखने पर बल देती थी, इसमें लक्ष्य भाषा का महत्व कम था, भाषा के जीवन्त पक्षों पर ध्यान नहीं दिया जाता था तथा छात्र की रुचि एवं अभिप्रेरणा को समाहित नहीं किया जाता था जिसके कारण यह विधि निरर्थक मानी जाने लगी।

15.3.3 प्रत्यक्ष विधि

व्याकरण अनुवाद विधि की सीमाओं को दूर करने तथा भाषा-शिक्षण को व्यावहारिक बनाने की दृष्टि से प्रत्यक्ष विधि सामने आई। इस विधि में शिक्षार्थी की मातृभाषा को मध्यस्थ नहीं

बनाया जाता। अन्य भाषा के सीधे संपर्क में लाकर शिक्षार्थी को मौखिक अभ्यास के सहारे भाषा सिखाई जाती है इसीलिए इस विधि को 'मौखिक वार्तालाप विधि' भी कहा गया है। देर तक वाक्यों को सुनना फिर उनका इस तरह अभ्यास करना कि वे वाक्य आदत के रूप में ढल जाएँ, इस विधि की मुख्य शिक्षण प्रक्रिया है। यह विधि भाषा अधिगत की स्वाभाविक प्रक्रिया पर आधारित है जिसकी प्रमुख मान्यता यह है कि : (1) भाषा का तात्पर्य बोलने से है, लिखने से नहीं, (2) भाषा आदतों का समूह है, (3) भाषा वह है जैसी मूल भाषा भाषी बोलते हैं, वह नहीं जो व्याकरण देता है, (4) भाषा सिखानी चाहिए, भाषा के विषय में नहीं। अपनी इस मान्यता के कारण प्रत्यक्ष विधि भाषा-शिक्षण की एक प्रमुख और लोकप्रिय विधि के रूप में विकसित हुई क्योंकि इसका लक्ष्य था भाषा-शिक्षण के माध्यम से शिक्षार्थी में भाषा-व्यवहार को पुष्ट करना।

15.3.4 संप्रेषणपरक भाषा-शिक्षण

प्रत्यक्ष विधि द्वारा भाषा सीखने से संबंधित व्यावहारिक पक्ष पर बल दिया गया। इसी पक्ष को और प्रबल बनाने के लिए संप्रेषण परक भाषा-शिक्षण विधि सामने आई जिसने भाषा-शिक्षण को निम्नलिखित लक्ष्यों से जोड़ा :

1. भाषा सीखने का तात्पर्य है, भाषा प्रयोग को सीखना। भाषा प्रयोग सीखने के अंतर्गत ही भाषा की संरचना को सीखना समाहित रहता है।
2. भाषा को केवल एक नियमबद्ध व्यवस्था के रूप में ही सीखना पर्याप्त नहीं है उसे एक सामाजिक संप्रेषण की वस्तु के रूप में सीखना सिखाना चाहिए।
3. भाषा सीखने का तात्पर्य है, सीखी जाने वाली भाषा के सामाजिक, सांस्कृतिक नियमों को भलीभाँति सीखना,
4. लक्ष्य भाषा की प्रोक्ति संरचना के नियमों को सीखना भी आवश्यक है।
5. किसी विशिष्ट स्थिति के संदर्भ में किन भाषिक इकाइयों का व्यवहार उपयुक्त ढंग से किया जाए यह जानना भी आवश्यक है।
6. कोई भी भाषा सीखने का तात्पर्य है उसकी संप्रेषणपरक युक्तियों को जानना।

इस प्रकार संप्रेषणपरक भाषा-शिक्षण विधि ने भाषा-शिक्षण को एक ऐसा आधार दिया जिसमें भाषा के मौखिक रूप और उसकी समाज सांस्कृतिक विशेषताओं को प्रमुखता प्रदान की गई। इस विधि के द्वारा भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में समाज भाषा विज्ञान और शैली विज्ञान की सहभागिता बढ़ी। प्रत्यक्ष विधि से जुड़ कर इस विधि ने भाषा-शिक्षण को उस रूप में सामने रखा जो यह मानता है कि भाषा सीखने का अर्थ भाषा प्रयोग के नियमों को सीखना न कि भाषा के व्याकरणिक नियमों को।

15.4 भाषा-शिक्षण और सामग्री निर्माण

भाषा-शिक्षण के लिए शिक्षण-सामग्री अनिवार्य होती है। शिक्षण सामग्री के अंतर्गत पाठ्य पुस्तकें, व्याकरण, शब्दकोश को मूल सामग्री के रूप में तथा अभ्यास-सामग्री, आधुनिक उपकरणों आदि को व्यावहारिक सामग्री के रूप में देखा जा सकता है। भाषा-शिक्षण की उपादेयता को देखते हुए आज शिक्षण-सामग्री को अधिकाधिक प्रयोजनमूलक, संप्रेषणपरक और वैज्ञानिक बनने का प्रयास किया जा रहा है जिस पर संक्षिप्त प्रकाश हम यहाँ डालेंगे।

भाषा शिक्षण की योजना के तीन चरण माने जाते हैं। ये हैं - चयन (selection), अनुस्तरण (gradation) और प्रस्तुतीकरण (presentation)। चयन के चरण में उन पाठ्य बिंदुओं का चयन किया जाता ; जिन्हें पाठ्यपुस्तक में शामिल किया जाना है। ये

पाठ्यबिंदु ध्वनि, लिपि, वर्तनी, शब्द, वाक्य आदि सभी भाषिक तत्व हैं जिनका ज्ञान देना शिक्षण का लक्ष्य है। पाठ्यक्रम निर्माता दो तरह से पाठ्यबिंदुओं का चयन कर सकते हैं। वे भाषा की रचना की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए उन महत्वपूर्ण बिंदुओं को छाँट सकते हैं, जो भाषा के व्यवहार के लिए आवश्यक हैं। दूसरी ओर वे सीखने वालों की भाषा को ध्यान में रखते हुए, तुलना के आधार पर उन बिंदुओं को चुन सकते हैं, जो कठिनाई पैदा कर सकते हैं। यह मान्यता है कि दो भाषाओं में भिन्न संरचना के स्थल कठिनाई पैदा कर सकते हैं। जब पाठ्यबिंदुओं का चयन कर दिया जाए, तो उन्हें पाठ्यपुस्तक में प्रस्तुतीकरण के क्रम से अनुस्तरित किया जाता है। अनुस्तरण का उद्देश्य यह है कि छात्र पहले सरल और आवश्यक तत्व सीखें, बाद में क्रम से अन्य तत्व सीखें। चयन और अनुस्तरण पाठ्य सामग्री निर्माण से संबंधित चरण है। इनके फलस्वरूप जब पाठ्य पुस्तक तैयार हो जाती है, तो प्रस्तुतीकरण (कक्षा अध्यापन) का चरण प्रारंभ होता है।

शिक्षण के तीन प्रमुख पहलू हैं। ये हैं : विद्यार्थी, सामग्री और अध्यापका द्वारा कक्षा में उसका प्रस्तुतीकरण। सबसे उत्तम विद्यार्थी और सामग्री के बावजूद अगर अध्यापक ढंग से उसका पालन और प्रयोग न कर सके तो लक्ष्य पूर्ति नहीं हो सकती। इस संदर्भ में कह सकते हैं कि अध्यापकों का उस विद्यार्थी और उस सामग्री के उपयोग के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है। अध्यापक उस सामग्री का प्रयोग कैसे करे। आवश्यकतानुसार कक्षा के लिए अतिरिक्त सामग्री कैसे बनाए। छात्रों में दिखाई देने वाले भाषा दोषों का निवारण कैसे करे। इन सबको हम प्रशिक्षण के माध्यम से समझा सकते हैं। इस तरह अध्यापकों की सामग्री के संदर्भ में तीन विशिष्ट भूमिकाएँ हैं। निर्माण से पूर्व वे अपने अनुभव के आधार पर दिशा-निर्देश दे सकते हैं, सामग्री को विधि सम्मत ढंग से प्रस्तुत कर सकते हैं और पढ़ाते हुए वे अतिरिक्त सामग्री का स्वयं निर्माण कर सकते हैं।

15.4.1 भाषा व्यवहार से संबंधित सामग्री

भाषा, स्वयं में है क्या? भाषा की अपनी प्रकृति क्या है? शिक्षा के व्यापक संदर्भ में भाषा का क्या स्थान होना चाहिए? शिक्षार्थी के समाज और राष्ट्र के प्रति क्या कर्तव्य हैं? भाषा व्यवहार से संबंधित सामग्री का निर्माण करते समय इन सभी का ध्यान रखा जाना चाहिए। भाषा अगर सामाजिक वस्तु के रूप में संप्रेषण व्यवस्था का माध्यम है तो वह मानसिक जीवन की संकल्पनात्मक शक्ति भी है। योग्य शिक्षक का दायित्व है कि वह विषयवस्तु को छात्रों के सम्मुख सही भाषा प्रयोग में बाँध कर शिक्षार्थी तक पहुँचाए।

भाषा प्रयोग या भाषा-व्यवहार के तीन निश्चित संदर्भ देखे जा सकते हैं :

1. भाषा का संरचनात्मक संदर्भ
2. भाषा का बोधात्मक संदर्भ
3. भाषा का सामाजिक संदर्भ

अन्य भाषा को अगर प्रभावी रूप में उपादेय बनाना है तो अध्येता को केंद्र में रखकर अधिगम प्रक्रिया में भाषा व्यवहार में पाई जाने वाली त्रुटियों का निराकरण करते हुए पाठों का निर्माण किया जाना चाहिए।

समाज में भाषा वैविध्य के प्रयोग की भी कुछ सीमाएँ होती हैं जिनका निर्धारण और नियंत्रण समाज स्वयं करता है। सामाजिक अर्थ का संबंध चयन और विकल्प के साथ रहता है। विकल्प के रूप में उपलब्ध दो में किसी एक का चयन करते समय जो त्रुटियाँ होती हैं इनका संबंध भाषायी समाज के आचरणगत उचित व्यवहार की जानकारी का अभाव हो सकता है। कभी-कभी भाषा सही चुनाव के लिए चिह्नक का उपयोग करती है यथा - आदर के लिए श्रीमान, श्रीमती जी, साहब आदि और कभी-कभी इनका उपयोग नहीं भी करती है। इसका पता समुदाय समाज के आचरणगत और सामाजिक व्यवहार के द्वारा ही

मिलता है। इसका सीधा संबंध सामाजिक बोध्र से होता है। यह सामाजिक बोध भाषा समुदाय के संदर्भ में विषयीकृत होता है।

15.4.2 माध्यम एवं उपकरण

भाषा-शिक्षण के संदर्भ में दृश्य-श्रव्य सामग्री का अपना महत्व है। शिक्षाविदों और मनोवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि जिस सीमा तक बालक की ज्ञानेंद्रियों को क्रियाशील रखा जाएगा उतना ही अधिक प्रभाव पड़ेगा। बिना दृश्य-श्रव्य सामग्री के अध्येता शिक्षार्थी निष्क्रिय श्रोता मात्र रह जाएगा। यही कारण है कि आज शिक्षण विधि को प्रभावी तथा सजीव बनाने के लिए दृश्य-श्रव्य उपकरणों की आवश्यकता का अनुभव तेजी से किया जाने लगा है।

'प्रत्यक्ष अनुभव' के लिए दृश्य उपकरणों की आवश्यकता है। दृश्य उपकरणों की सहायता से:

1. पाठ्य सामग्री को सरस तथा सरल बनाया जा सकता है।
2. विषय को स्पष्ट किया जा सकता है।
3. विषय को रोचक शैली में बोधगम्य बनाया जा सकता है।
4. ज्ञानेन्द्रियों को कभी-कभी कर्मेन्द्रियों को क्रियाशील रखा जा सकता है।
5. प्रत्यक्ष अनुभव होता है जिससे स्वयं सीखने की प्रेरणा मिलती है।
6. क्रमिक रूप से विचार श्रृंखला को स्थायित्व प्राप्त होता है।
7. प्रत्यय निर्माण और सही अर्थ ग्रहण में सहायता मिलती है जिससे शब्द भंडार में पर्याप्त वृद्धि होती है।
8. कक्षा में जो संभव नहीं है उसे वीडियो आदि के द्वारा दिखाया जा सकता है, कक्षा के बाहर भी अध्येता इन उपकरणों का प्रयोग कर सकता है।

15.4.3 बहुसंचार सामग्री

सहायक सामग्री में दृश्य-श्रव्य उपकरणों की आवश्यकता और उनके महत्व के बाद शिक्षक को इन सबका सम्यक ज्ञान होना चाहिए कि इस सामग्री में से वह किसका, कब, कैसे और कितना उपयोग करे।

भाषा-शिक्षण को स्वाश्रित बनाने की दिशा में जो प्रयत्न देखने में आते हैं उन्हें शिक्षक-शिक्षार्थी के संपर्क के संदर्भ में देखा जा सकता है। इसके निम्नलिखित चरण हैं :

1. पहले चरण में ब्लैक बोर्ड, चार्ट, फ्लैश कार्ड, ग्रामोफोन, स्लाइड आदि
2. दूसरे चरण में भाषा प्रयोगशाला,
3. तीसरे चरण में रेडियो, टेलीविज़न, तथा
4. चौथे चरण में कंप्यूटर।

स्वाश्रित शिक्षण विधि भाषा-शिक्षण का वह रूप है जिसमें पाठों को अनुस्तरित और नियोजित करके इस रूप में तैयार किया जाता है जिससे वह पूर्ण रूप से 'स्वयं शिक्षक' का काम कर सके।

एक बार भाषा-शिक्षण की पूरी सामग्री का निर्माण हो जाने के बाद उसे 'कम्प्यूटर' अपने 'प्रोग्राम' द्वारा शिक्षार्थी के लिए उपलब्ध कराता है।

15.5 भाषा-शिक्षण की अधुनातन भूमिका

भाषा व्यक्ति समाज और राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा व्यक्ति का समाजीकरण होता है और उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। समाज में व्यक्ति को सामाजिक वर्गों में बाँधने और समाज की विभिन्न इकाइयों को एक दूसरे से जोड़ने-बाँधने में भाषा ही सहायक होती है। राष्ट्रीय स्तर पर भाषा हमारी राष्ट्रीय भावना को और राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता को व्यक्त करती है। इस प्रकार भाषा का व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। भाषा का यह महत्व भाषा-शिक्षण द्वारा ही पूरा हो पाता है। भाषा-शिक्षण की सही नीति ही किसी राष्ट्र को आर्थिक विकास की ओर ले जाती है। इसके साथ ही विभिन्न राष्ट्रों से जुड़ने के लिए भी भाषा-शिक्षण की व्यापक भूमिका है। आज कोई भी राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से कट कर अपना विकास नहीं कर सकता। अतः दूसरे देशों की भाषा सीखने-सिखाने की ओर भी अब व्यापक प्रबंध पूरे विश्व में किए गए हैं। आज हम किसी भी देश की कोई भाषा अथवा अपने देश की किसी भाषा को पूरी सुविधा के साथ सीख सकते हैं।

अपने देश में विभिन्न भाषाओं के होने से भाषा-शिक्षण की स्थिति अन्य देशों की तुलना में विशिष्ट है। हम हिंदी, अंग्रेज़ी और भारतीय भाषाओं को प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाषा के रूप में सीखते-सिखाते हैं। हम इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि भारत में शिक्षा के व्यापक संदर्भ में हमारी भाषाओं का स्थान होना चाहिए। भाषा-ज्ञान, विषय के ज्ञान और दूसरी भाषा के ज्ञान पर भी हम संतुलित दृष्टि रखते हैं। इस प्रकार भाषा-शिक्षण की भूमिका समाज और राष्ट्र की आवश्यकता के अनुसार बदलती है और इसी के अनुरूप भाषा-शिक्षण की उपादेयता भी निर्धारित होती है।

15.5.1 संचार व्यवस्था में

आधुनिक विश्व में संचार व्यवस्था का क्रांतिकारी ढंग से विस्तार हुआ है। संचार व्यवस्था के इस विस्तार ने विभिन्न भाषाओं को एक दूसरे के निकट ला दिया है। आज दुनिया भर के समाचार हमें प्राप्त हो जाते हैं। दूरदर्शन आदि पर हम किसी भी भाषा का कार्यक्रम अपनी भाषा में 'डबिंग' द्वारा अथवा 'सबटाइटिल' द्वारा देख पाते हैं। एक भाषा से दूसरी भाषा में जो लोग यह रूपांतर कर रहे हैं उन्होंने भाषा-शिक्षण के माध्यम से अन्य भाषा सीखी है। संचार माध्यमों के विकास ने यह सिद्ध कर दिया है कि मातृभाषा का स्थान हमारे जीवन में पहला होता है लेकिन द्वितीय भाषा का स्थान भी गौण या निरर्थक नहीं है।

15.5.2 अनुवाद में

दो भाषाओं में दक्ष व्यक्ति दोनों भाषाओं के बीच परस्पर अनुवाद में समर्थ होता है। अनुवाद का क्षेत्र भी आज अति व्यापक हो गया है। एक ओर विभिन्न भाषाओं के सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद राष्ट्रीय भाषाओं के बीच भी होने लगा है और विदेशी भाषाएँ भी अनुवाद के लिए स्रोत या लक्ष्य भाषा के रूप में अपनायी जाने लगी हैं। दो भाषाओं में यह दक्षता भाषा-शिक्षण के द्वारा ही प्राप्त होती है। विशेष रूप से औपचारिक और लिखित भाषा का अधिगम हमें शिक्षण के द्वारा ही मिलता है। यह शिक्षण हमारे अनुभव कौशल को भी प्रवीणता प्रदान करता है तथा अपनी मातृभाषा और अन्य भाषा के साहित्य को समझने की दक्षता प्रदान करता है। भारतीय भाषाओं से हिंदी में और हिंदी से भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने वालों की एक लंबी परंपरा भारत में रही है जो आज बहुत ही सुदृढ़ बन चुकी है। आज हम भारत की किसी भी भाषा का साहित्य हिंदी में पढ़ सकते हैं। इसी प्रकार हिंदी के श्रेष्ठ साहित्य को हम किसी भी प्रमुख भारतीय भाषा के माध्यम से पढ़ सकते हैं। इसके साथ ही आधुनिक ज्ञान विज्ञान का विस्तार भी अनुवाद के माध्यम से ही होता है। भारतीय भाषाओं में यह ज्ञान विज्ञान अंग्रेज़ी से किए गए अनुवाद के माध्यम से आता है। अतः

भारतीय संदर्भ में अंग्रेज़ी भाषा का शिक्षण हमें आधुनिकता से संबद्ध करने के लिए आवश्यक है।

15.5.3 अंतर्राष्ट्रीय संबंध निर्वाह में

आधुनिकता और औद्योगिकीकरण ने पूरे विश्व को एक परिवार में बदल दिया है। आज विभिन्न भाषाओं का शिक्षण पूरे विश्व में हो रहा है। विश्व के सैकड़ों विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है और भारत के अनेक विश्वविद्यालयों में रूसी, जर्मन, फ्रेंच, जापानी, चीनी, इटेलियन जैसी भाषाओं के शिक्षण की समुचित व्यवस्था है। इस प्रकार का भाषा-शिक्षण अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के निर्वाह में सहायक होता है। राजनीतिक संबंधों के लिए विभिन्न दूतावासों में जो लोग काम करते हैं उनके लिए उस देश की भाषा का ज्ञान आवश्यक होता है। अनेक राजनीतिक और नेता जो विभिन्न देशों में जाते हैं उनके भाषणों आदि को वहाँ की भाषा में प्रस्तुत करने के लिए आज दुभाषियों की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। इनके प्रशिक्षण में अन्य भाषा-शिक्षण की अपनी भूमिका है। व्यापारिक स्तर पर भी अब बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ एक साथ अनेक देशों में अपना औद्योगिक विकास कर रही हैं, इस परिस्थिति में भी विभिन्न आधुनिक भाषाओं के प्रयोग की उन्हें आवश्यकता पड़ती है जिसमें भाषा-शिक्षण उनकी मदद कर सकता है।

भाषा-शिक्षण आज पूरे विश्व में एक ऐसे विद्या क्षेत्र के रूप में मान्य है जिसके माध्यम से केवल विषयवस्तु का ज्ञान ही प्राप्त नहीं कराया जाता बल्कि शिक्षार्थी के भीतर एक नवीन भाषा संस्कार उत्पन्न कराने में सहयोग दिया जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भाषा-शिक्षण शिक्षार्थी को अपनी भाषा या किसी दूसरी भाषा में अधिक सक्षम बनाता है। आज यह स्वीकार कर लिया गया है कि द्विभाषी या बहुभाषी व्यक्ति मानसिक और वैचारिक दृष्टि से एक भाषी व्यक्ति की तुलना में अधिक समर्थ और शक्तिशाली होता है। यही कारण है कि आज भाषा-शिक्षण पूरे संसार में बहुत ही गंभीरता से ली जाने वाली एक संकल्पना के रूप में स्वीकृत है।

15.6 सारांश

आधुनिक युग में भाषा-शिक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण विषय बन गया है क्योंकि हम एक बहुभाषी समाज में रह रहे हैं और विश्व स्तर पर भी लोगों में संपर्क बढ़ गया है। इस कारण अपनी भाषा से भिन्न एक या अधिक भाषाएँ सिखाने की अनिवार्यता-सी बन जाती है। इसी संदर्भ में हम भाषा-शिक्षण के तीन प्रमुख प्रकार देखते हैं। मातृभाषा-शिक्षण व्यक्तित्व के विकास का चरण है। व्यक्ति मातृभाषा से ज्ञान के संसार में प्रवेश करता है और मातृभाषा में अभिव्यक्ति के स्तर पर अधिक से अधिक कुशलता प्राप्त करता है। दूसरा भाषा आमतौर पर अपने परिवेश की भाषा, उसकी शब्दावलिक संरचना और शैलियाँ मातृभाषा से मिलती जुलती हैं। आमतौर पर व्यक्ति अन्य भाषा को जीवन में व्यवहार को लिए सीखते हैं। विदेशी भाषा इस दृष्टि से दूर की भाषा होती है और विदेशी भाषा को ज्ञान पिपासा के कारण ही सीखता है। हम जीवन में विदेशी भाषा का उतना प्रयोग नहीं कर सकते। इस संदर्भ में चर्चा का विषय यह बन सकता है कि भारत में अंग्रेज़ी शिक्षण का स्वरूप क्या हो?

व्यक्ति मातृभाषा को समाज में सामान्य सदस्य बनने के लिए सीखता है इसलिए वह मातृभाषा में क्षमता और गति पा जाता है। इसकी तुलना में अन्य भाषा और विदेशी भाषा सीखने वाले इन्हें सीमित परियोजना को अर्जित करते हैं। साथ ही उन भाषा पर मातृभाषा की संरचना का बराबर आघात (impact) पड़ता है। साथ ही उन भाषा या विदेशी भाषा सीखने वाला छात्र उस भाषा में पूरी दक्षता प्राप्त नहीं कर पाते और उनमें कुछ दोष रह ही जाते हैं। इन्हीं दोषों के संदर्भ में और अन्य या विदेशी भाषा को पूरी क्षमता के साथ सीखने

की आवश्यकता के संदर्भ में हम विधि की चर्चा करते हैं। अच्छी भाषा-शिक्षण की वह विधि है जो कम से कम समय में बहुत अच्छे ढंग से भाषा के अर्जन का मार्ग दिखाए। इस इकाई में तीन प्रमुख विधियों की चर्चा की गई है। व्यारकण, अनुवाद विधि, परंपरागत विधि से. विधि के माध्यम से छात्र लिखित भाषा में दक्षता प्राप्त कर लेते हैं। लेकिन उच्चरित भाषा में कमजोर विधि का परवर्धित रूप ही संप्रेषणपरक विधि है जिसमें सहज संप्रेषण द्वारा संप्रेषण के लिए भाषा सीखने पर बल दिया जाता है।

विधि चाहे जो भी हो लेकिन उस विधि के प्रभावी प्रयोग के लिए उचित सामग्री का होना आवश्यक है। अच्छी विधि, उसके माध्यम से पढ़ाने के लिए उपयुक्त सामग्री और अध्ययन के लिए अध्यापकों का सही प्रशिक्षण भाषा शिक्षण के क्षेत्र में सफल बन सकता है। इकाई के अंत में आधुनिक युग में भाषा-शिक्षण की उपयोगिता और भूमिका की चर्चा की गई है।

15.7 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

(1) मातृभाषा एवं भाषा तथा विदेशी भाषा की संकल्पना स्पष्ट कीजिए।

(2) व्याकरण, अनुवाद, विधि और सम्प्रेषणपरक भाषा-शिक्षण की तुलना कीजिए।

2. टिप्पणियाँ

(1) व्याकरण अनुवाद विधि के गुण-दोष

(2) मातृभाषा-शिक्षण का स्वरूप

(3) बहुसंचार सामग्री

इकाई 16 भाषा-शिक्षण-II

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य केंद्रित भाषा-शिक्षण
  16.2.1 उद्देश्यों की पूर्ति में भाषा-शिक्षण
  16.2.2 भाषा-शिक्षण के उद्देश्यों में निर्धारण
  16.2.3 उद्देश्यों की पूर्ति में बाधाओं का विश्लेषण
16.3 भाषा-शिक्षण और त्रुटि विश्लेषण
  16.3.1 त्रुटि विश्लेषण के सिद्धांत
  16.3.2 व्यतिरेकी विश्लेषण और त्रुटि विश्लेषण
16.4 परीक्षण ओर मूल्यांकन
  16.4.1 भाषा परीक्षण के संदर्भ
  16.4.2 मूल्यांकन के प्रकार
16.5 अभ्यास सामग्री
16.6 दृश्य-श्रव्य सामग्री
16.7 सारांश
16.8 अभ्यास प्रश्न

16.0 उद्देश्य

इस इकाई में भाषा-शिक्षण की उन मान्यताओं और धारणाओं पर विचार किया गया है जिनसे संबद्ध होकर ही भाषा-शिक्षण और भाषा-अधिगम की प्रक्रिया सफलतापूर्वक संपन्न होती है। आज भाषा-शिक्षण का केंद्रक 'शिक्षार्थी' है अतः शिक्षार्थी केंद्रित भाषा-शिक्षण में इस इकाई में विवेचित संदर्भ बहुत ही उपयोगी और महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भाषा सीखने में उत्पन्न बाधाओं की चर्चा कर सकेंगे;
- त्रुटि विश्लेषण की व्याख्या कर सकेंगे;
- भाषा परीक्षण और मूल्यांकन का स्वरूप स्पष्ट कर सकेंगे; और
- दृश्य-श्रव्य सामग्री के प्रकार प्रयोग की स्थित स्पष्ट कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

भाषा-शिक्षण का क्षेत्र आज अतिव्यापक हो गया है। भाषा-शिक्षण की तकनीक अधिक वैज्ञानिक बन गई है और उसकी विधियाँ-पद्धतियाँ नए रूप में भाषा-शिक्षण के नवीन लक्ष्यों, उद्देश्यों को साधने की दृष्टि से सामने आई हैं। इनमें से कुछ का परिचय छात्रों को इसके पहले की इकाई में मिल चुका है। आज भाषा-शिक्षण को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की एक शाखा के रूप में विवेचित किया जा रहा है। भाषा-शिक्षण में समाज भाषाविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान, शैलीविज्ञान के सहयोग से एक नई क्रांतिं उत्पन हुई है। परंपरागत शिक्षण की कई अवधारणाएँ अमान्य हुई हैं और नवीन दृष्टि आई है। परीक्षण-मूल्यांकन की परंपरागत धारणा में भी परिवर्तन आया है कि इनका उद्देश्य छात्र को सफल असफल घोषित करना मात्र है - आज इन्हें भाषा-शिक्षण के साथ सहयोजित क्रिया के रूप में देखा जा रहा है। शिक्षार्थी के क्षमता संबंधी विकास की पहचान के लिए अभ्यास-सामग्री तथा दृश्य-श्रव्य सामग्री का महत्व भी अन्य भाषा-शिक्षण में बढ़ा है और इनक स्तरों और भाषा-

शिक्षण को इनसे होने वाले लाभों पर विस्तृत चर्चा हमें मिलती है। इन सभी पर इस इकाई में विचार करते हुए 'भाषा-शिक्षण' के अधुनातन संदर्भ इस इकाई में उभारे गए हैं।

16.2 उद्देश्य केंद्रित भाषा-शिक्षण

भाषा-शिक्षण आज उद्देश्य केंद्रित है। भाषा का अध्येता भाषा को किसी न किसी उद्देश्य से सीखता है। मातृभाषा को औपचारिक और लिखित रूप वह इसलिए सीखता है कि एक बड़े लिखित साहित्य से परिचित हो सके। मातृभाषा सीखने का एक उद्देश्य यह भी होता है कि शिक्षार्थी इसके माध्यम से अपने भावों और विचारों को लिखित रूप में व्यक्त करके अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने में समर्थ बनता है। इसी प्रकार द्वितीय भाषा सीखने का उद्देश्य यह होता है कि व्यक्ति अपनी भाषा के परिवेश की कोई दूसरी भाषा सीखकर अपने को सामाजिक संप्रेषण के उन क्षेत्रों से जोड़ सके जिनकी पूर्ति द्वितीय भाषा के माध्यम से ही संभव है। विदेशी भाषा सीखने का उद्देश्य किसी अन्य भाषा के माध्यम से उन लाभों को प्राप्त करना है जो विदेशी भाषा के माध्यम से ही प्राप्त हो सकते हैं जैसे अनुवाद कार्य, दुभाषिए का कार्य, विदेशी दूतावासों में सेवा इत्यादि। इसके साथ ही किसी अन्य राष्ट्र में पर्यटक के रूप में जाने पर भी विदेशी भाषा का सामान्य ज्ञान काफी सहयोगी होता है। विदेशी भाषा के अधिकांश अध्येता इसी उद्देश्य से कोई विदेशी भाषा सीखते हैं।

16.2.1 उद्देश्यों की पूर्ति में भाषा-शिक्षण

भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में मातृभाषा, द्वितीय भाषा और विदेशी भाषा तीनों ही स्तरों पर भाषा-शिक्षण के उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं। इस संदर्भ में भाषा-शिक्षण में 'केंद्रक' के बदलने का भी काफी प्रभाव पड़ा है। भाषा-शिक्षण की आधुनिक विचारधारा यह मानती है कि आज भाषा शिक्षण का केंद्रक शिक्षार्थी है अतः पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम दोनों के केंद्र में मूलतः शिक्षार्थी को ही महत्व मिलना चाहिए। अब भाषा-शिक्षण का केंद्रक शिक्षार्थी है और पूरी शिक्षण प्रणाली को शिक्षार्थी की दृष्टि से ही निर्मित और नियंत्रित किया जाता है। इस प्रकार भाषा-शिक्षण का उद्देश्य शिक्षार्थी के भाषा सीखने के पीछे निहित उद्देश्य से सम्बद्ध हो गया है। यहाँ आपको यह भी जानना चाहिए कि शिक्षा की पुरानी परंपरा पाठ्यचर्या के रूप में 'विद्यालय' और 'विषयवस्तु' को केंद्र में रखती थी, यह परांपरागत शिक्षा पद्धति पाठ्यक्रम के केंद्रक के रूप में 'शिक्षक' को महत्व देती थी। परंतु अब यह धारणा बदल गई है। अब यह माना जाने लगा है कि शिक्षार्थी के उद्देश्य को प्रमुखता देनी चाहिए क्योंकि भाषा-शिक्षण का तात्पर्य शिक्षार्थी के अनुभव जगत को उसकी रुचि के अनुरूप सक्षम बनाना है। शिक्षार्थी को केंद्र में रखने वाली आधुनिक भाषा-शिक्षण पद्धति यह मानती है कि शिक्षण सामग्री के रूप में विषयवस्तु चाहे कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो और पाठ्य सामग्री का स्तर कितना ही ऊँचा क्यों न हो, जब तक अध्ययन अध्यापन के समय शिक्षार्थी का अनुभव जगत उसे ग्रहण नहीं करता और उससे प्रभावित नहीं होता तथा उसकी क्षमता, रुचि और अभिवृत्ति के अनुरूप उपयोगी नहीं बनता तब तक शिक्षा का पूरा कार्यक्रम अधूरा ही माना जाएगा। इस प्रकार भाषा-शिक्षण के उद्देश्य भी पूरे नहीं हो पाएँगे।

यही कारण है कि शिक्षार्थी को ध्यान में रख कर भाषा-शिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण किया गया।

16.2.2 भाषा-शिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण

भाषा मनुष्य के जीवन में अनेक कार्य करती है। मनुष्य भाषा के द्वारा ही अपने अनेक सामाजिक दायित्वों की पूर्ति करता है। आजकल यह भी माना जाता है कि मनुष्य को व्यापक संप्रेषण के लिए दो प्रकार की भाषाओं की आवश्यकता होती है। जब वह अपनी किसी प्यारी या आत्मीय वस्तु के बारे में बात करना चाहता है तब उसे घर परिवार की

भाषा अर्थात् सामान्य भाषा की आवश्यकता पड़ती है लेकिन इसके साथ ही उसे तथ्यपरक भाषा भी चाहिए। ज्ञान, तर्क और वैज्ञानिक सत्य की भाषा भी चाहिए। ज्ञान, तर्क और वैज्ञानिक सत्य की भाषा के बिना भी उसका कार्य नहीं चल सकता। इस भाषा के शब्द आधुनिकीकृत होते हैं और उनके अर्थ स्थिर। हम यह जानते हैं कि हिंदी की बोलियाँ घर-जीवन की भाषा के रूप में हमारी आवश्कयताएँ पूरी करती हैं लेकिन ज्ञान, तर्क आदि के लिए हमें हिंदी या अंग्रेज़ी की ओर जाना पड़ता है, अर्थात् हम भाषा-शिक्षण की औपचारिक प्रणाली से किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही जुड़ते हैं। संसार की अनेक छोटी-छोटी भाषाएँ भी उन भाषा समुदायों की संप्रेषण संबंधी सामान्य ज़रूरतों को तो पूरा कर देती हैं लेकिन व्यापक उद्देश्यों के लिए ये समाज विश्व की विकसित भाषाओं का अधिगम करते हैं और अपने को आधुनिक या अंतर्राष्ट्रीय संप्रेषण व्यापार के लिए तैयार करते हैं। सामान्य और विशिष्ट दोनों ही प्रकार के भाषा प्रयोगों को देखते हुए भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में कुछ उद्देश्य निर्धारित किए गए जो निम्नलिखित हैं :

1) **मन की सर्जनात्मकता :** आप और हम यह भलीभाँति जानते हैं कि भाषा हमारे विचार और दृष्टिकोण दोनों को प्रभावित करती है। भाषा मनुष्य को अपने नियंत्रण में रखती है। भाषा के अधिगम या शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य यह है कि वह अध्येता को भाषा से नियंत्रित होने की स्थिति से निकाल कर उसमें भाषा को नियंत्रित करने की क्षमता और दक्षता उत्पन्न करे। भाषा-शिक्षण का यह प्रमुख उद्देश्य है कि भाषा का अध्येता आवश्यकता पड़ने पर अपने अनुभवों और अपनी अभिव्यक्तियों को सर्जनात्मक स्तर पर भी व्यक्त कर सके। वह एक ही कथन को अनेक ढंग से कह सके, प्रश्न पूछ सके, भिन्न मनोभावों को व्यक्त करने के लिए भिन्न अभिव्यक्तियों का सटीक उपयोग कर सके इत्यादि। इसे हम भाषा को साधने की स्थिति भी कह सकते हैं। प्रमुख रूप से मातृभाषा अधिगम का यह उद्देश्य होता है कि अध्येता अपनी मातृभाषा को साध कर विविध परिस्थितियों और संदर्भों में मौखिक और लिखित अभिव्यक्ति कर सके।

2) **दृष्टि की मुक्तता :** भाषा हमें जीवन और जगत को देखने की दृष्टि भी देती है। हम अपने आसपास की चीज़ों को भाषा के माध्यम से ही पहचानते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि हम संसार को उसी प्रकार देखते हैं जिस तरह भाषा हमें देखने की अनुमति देती है। इतना ही नहीं, हम अपने अनुभवों को भी उसी रूप ढाल सकते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि भाषा का संबंध हमारे परिवेश और समाज से बहुत गहरा होता है। अन्य भाषा-शिक्षण का उद्देश्य इसीलिए विशिष्ट है कि वह हमें दूसरी भाषा के माध्यम से जीवन और जगत को देखने की शक्ति प्रदान करता है। अपनी मातृभाषा में हमें यह शक्ति स्वतः प्राप्त होती है। अन्य भाषा-शिक्षण का यह उद्देश्य है कि मातृभाषा में बंधी हुई संसार को देखने की इस दृष्टि से भिन्न एक दृष्टि भाषा अध्येता को प्राप्त हो सके उसका आयाम विस्तृत हो सके। अब हम यह मान सकते हैं कि अन्य भाषा शिक्षण का उद्देश्य है कि शिक्षार्थी एक अतिरिक्त भाषा की संस्कृति से आमने-सामने हो सके। दो संस्कृतियों के माध्यम से अध्येता का अनुभव जगत व्यापक बनता है। दो भाषा व्यवस्थाओं में गुंथा उसका अनुभव मानसिक दृष्टि से भी उसे लचीला बनाता है और उसकी मानसिक क्षमताएँ बढ़ती हैं। दृष्टि की मुक्तता का उद्देश्य यही है कि अध्येता एक से अधिक दृष्टिकोण से देख पाने मे समर्थ हो।

3) **बुद्धि की समृद्धता :** जैसा कि अभी कहा गया, भाषा ज्ञानार्जन का एक महत्वपूर्ण साधन है। हमने यह भी देखा कि ज्ञान, विज्ञान और तर्क के कई ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ हमें एक विशेष प्रकार की भाषा अथवा अन्य भाषा की आवश्यकता पड़ती है। हमारी अपनी ही भाषा में ज्ञान-विज्ञान से संबंधित नित नए शब्द आते रहते हैं। इनके माध्यम से ही हम बाह्य जीवन की नई-नई वस्तुओं की जानकारी प्राप्त

करते हैं। मातृभाषा और अन्य भाषा, दोनों के शिक्षण का यह उद्देश्य होता है कि ज्ञान और बुद्धि के धरातल पर भाषा अध्येता समृद्ध बनता चले। भाषा-शिक्षण की प्रक्रिया में पाठ्य सामग्री इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर बनाई जाती है कि भाषा के सहारे अध्येता का बौद्धिक स्तर समृद्ध से समृद्धतर हो सके।

4) **व्यक्तित्व की सामाजिकता :** भाषा केवल संप्रेषण का साधन ही नहीं है, यह व्यक्ति को सामाजिक बनाने का समर्थ माध्यम भी है। हमने इसके पहले की इकाई में यह देखा था कि भाषा के द्वारा व्यक्ति का समाजीकरण होता है। भाषा के सहारे ही व्यक्ति समाज से जुड़ता है और इस जुड़ने की प्रक्रिया में ही वह सामाजिक बनता चलता है। भाषा अधिगम और भाषा-शिक्षण भी इसीलिए एक अनवरत प्रक्रिया माने गए हैं। यही कारण है कि भाषा अधिगम और शिक्षण के समय ही व्यक्ति समाज और संस्कृति को तथा समाज और संस्कृति से सामाजिक व्यक्तित्व को प्राप्त करता है। भाषा-शिक्षण का यह उद्देश्य है कि वह अध्येता के सामाजिक व्यक्तित्व के निर्माण और विकास पर ध्यान दे।

16.2.3 उद्देश्यों की पूर्ति में बाधाओं का विश्लेषण

भाषा-शिक्षण की प्रक्रिया में उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति बहुत आसान नहीं होती, भाषा सीखते समय अनेक ऐसी बाधाएँ आती हैं जो इन उद्देश्यों की पूर्ति में अवरोध उत्पन्न करती हैं। इन्हें दूर करने का प्रयास भाषा-शिक्षण की उपयुक्त विधि अपनाकर अनेक प्रकार के अभ्यासों के माध्यम से किया जाता है यदि हम अति सामान्य स्तर पर भी देखें तो हम अपने स्कूली अनुभव के आधार पर भी यह कह सकते हैं कि भाषा सीखते समय अध्येता कई प्रकार की भूलें करता है जिससे भाषा-शिक्षक की स्वाभाविक गति में रुकावट आती है और निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इन भूलों का निदान करने के बाद ही शिक्षण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाना चाहिए क्योंकि जो भूलें अध्येता के मस्तिष्क में दृढ़ हो जाती हैं। वे केवल उसे ही गलत भाषा प्रयोग की ओर नहीं ले जाती बल्कि भाषा-शिक्षण के उद्देश्यों को ही निरर्थक बना देती हैं। किसी भी भाषा के संरचनात्मक स्तर पर शब्द रूप, विशेषण संज्ञा अन्विति, संज्ञा क्रिया अन्विति महत्वपूर्ण होते हैं। संरचनात्मक अभिरचना निर्माण में अनेक भूलों को बच्चों की भाषा के अधिगम स्तर पर भी देखा जा सकता है। अपनी मातृभाषा के अधिगम के समय भी बच्चा इस प्राकर की भूलें करता है वह संरचनात्मक अभिरचना के सामान्यीकृत नियम बना लेता है और उनका प्रयोग करता है। अधिगम की प्रक्रिया में यह प्रवृत्ति स्वतः अनुकरण के कारण भूलों में सुधार करती चलती है लेकिन भाषा-शिक्षण में यह प्रवृत्ति एक बाधा बनती है जिसे दूर करने के लिए प्रयास करना पड़ता है। ऐसे कुछ उदाहरण नीचे देखे जा सकते हैं :

(क) मैंने पेड़ काटा। पेट कटा।
मैंने राज़ जाना। *राज़ जना।

(ख) छोटा लड़का - छोटी लड़की
ज़िंदा लड़का - *ज़िंदी लड़की

नोट : *चिह्न वाली अभिव्यक्तियाँ अव्याकरणिक है।

मातृभाषा की अभिरचना व्यक्ति की भाषायी चेतना में आदत के रूप में सिद्ध हो जाती है। जब वह अन्य भाषा सीखने की ओर प्रवृत्त होता है जब मातृभाषा की अभिरचना का अंतरण वह सीखी जाने वाली भाषा पर करने लगता है ऐसे में बाधा उत्पन्न होती है। अगर सीखी जाने वाली भाषा की संरचना मातृभाषा के अनुरूप हुई तब तो उसे संरचना को सीखने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती ऐसी स्थिति में वह केवल अन्य भाषा के शब्दों को सीख कर ही वाक्य को सही रूप में बोल लेता है परंतु यदि मातृभाषा और अन्य भाषा में अंतर होता है तब भाषा व्याघात (Language inteferance) की स्थिति पैदा हो जाती है। भाषा अध्येता

इस स्थिति में मातृभाषा की अभिरचना का अंतरण (Transfer) दूसरी भाषा पर करने लगता है। दो भाषाओं के संरचनात्मक विभेद से उत्पन्न व्याघात की स्थिति में भाषा सीखना कठिन होता है। भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में इन बाधाओं को दूर करने के लिए विशेष प्रकार की शिक्षण पद्धतियों को अपनाने पर बल दिया गया है। यह स्वीकार कर लिया गया है कि इन बाधाओं को दूर करते हुए भाषा अधिगम में दृढ़ता लाने के लिए जो प्रक्रिया आवश्यक है वह **अभ्यास** है। अतः भाषा-शिक्षण को अभ्यासपरक होना चाहिए। यह भी प्रश्न उठा कि अभ्यास भाषा के किस तत्व का कराया जाए और यह निश्चित किया गया कि भाषा-शिक्षण अभिरचना अभ्यास है, वह पैटर्नड्रिल है। इनका परिचय आपको इस इकाई में आगे दिया जा रहा है।

16.3 भाषा-शिक्षण और त्रुटि विश्लेषण

भाषा-शिक्षण की प्रक्रिया में त्रुटि के कारण बाधा उत्पन्न होती है। इन बाधाओं को दूर करने के लिए त्रुटियों और उनके विश्लेषण पर गंभीरता से विचार किया गया है तथा त्रुटियों की पहचान उनके कारणों तथा उनके निदान और उपचार के मार्ग सुझाए गए हैं ताकि भाषा-शिक्षण अपने महती उद्देश्यों की और अपेक्षित लक्ष्यों की प्राप्ति कर सके। त्रुटियों पर विचार करते समय यह खोजने का प्रयास किया गया कि त्रुटियों के मूल स्रोत क्या हैं? स्रोतों की पहचान के बाद इनके विश्लेषण और मूल्यांकन की पद्धति निर्धारित की गई।

भाषा-शिक्षण के संदर्भ में त्रुटियों के निम्नलिखित स्रोत रेखांकित किए गए :

1. भाषा$_1$ का व्याघात
2. भाषा$_2$ के विशिष्ट तत्व
3. नियमों का सामान्यीकरण
4. त्रुटिपूर्ण शिक्षण
5. किसी अन्य भाषा का व्याघात जो अध्येता ने मातृभाषा के अतिरिक्त सीखी हो।
6. मनोवैज्ञानिक कारण

इन सभी स्तरों पर भाषा-शिक्षण की प्रक्रिया में व्यतिरेकी विश्लेषण (Contrastive analysis) का महत्व है जिस पर आगे चर्चा की जाएगी।

त्रुटियों के अनेक स्तरों के कारण त्रुटि विश्लेषण महत्वपूर्ण बनता चला गया है। आधुनिक भाषाओं के शिक्षण की विस्तृत संभावनाओं ने भाषा को अनुप्रयोगात्मक (Applied) बनाया, इसलिए भी त्रुटि विश्लेषण का केंद्रीय महत्व बन गया। आधुनिक भाषा-शिक्षण त्रुटियों को हेय नहीं मानता। वह इन्हें मात्र परीक्षण मूल्यांकन के परंपरागत आधारों तक ही सीमित नहीं करता। पारंपरिक शिक्षा पद्धति त्रुटि विश्लेषण को परीक्षा और उत्तीर्णता से ही जोड़ कर देखती थी जबकि आधुनिक भाषा-शिक्षण इसे अधिगमकर्ता या भाषा अध्येता के भाषा विकास की एक स्वाभाविक प्रक्रिया मानता है, वह इसे अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण भी मानता है। आज इस बात पर बल दिया जाता है कि त्रुटि विश्लेषण के द्वारा भाषा अधिगम के वातावरण को, शिक्षण सामग्री को और शिक्षण विधि को पुनर्गठित किया जा सकता है जिससे कि भाषा-शिक्षण के मूल लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके।

16.3.1 त्रुटि विश्लेषण के सिद्धांत

जैसी कि हमने पहले चर्चा की है अन्य भाषा-शिक्षण में द्विभाषियों के भाषा व्यवहार में व्याघात की संकल्पना को महत्वपूर्ण माना गया है। व्याघात की संकल्पना इस मान्यता पर आधारित है कि कोई भी दो भाषाएँ पूर्णतया समान नहीं होतीं। उनमें भाषा के हर स्तर पर कुछ न कुछ भिन्नता रहती है। व्याघात की प्रक्रिया के कारण भाषा सीखने में जो

कठिनाइयाँ आती हैं उन्हे जानने के लिए ही भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में व्यतिरेकी विश्लेषण को महत्व मिला है। व्यतिरेकी विश्लेषण एक ओर उस भाषा के व्याकरणिक नियमों को सामने रखता है जो शिक्षार्थी की आदत में ढल गए होते हैं। भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में इस भाषा को स्रोत भाषा (Source Language) कहा गया है। दूसरी ओर व्यतिरेकी विश्लेषण उस भाषा के व्याकरणिक नियमों का भी पता रखता है जिसे सीखा जाता है। सीखी जाने वाली भाषा को लक्ष्य भाषा (Target Language) कहते हैं। स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की तुलना के आधार पर व्यतिरेकी पद्धति इनके बीच पाई जाने वाली समानता और असमानता का निर्धारण करती है। यह पद्धति इस बात को स्वीकार करती है कि दो भाषाओं के बीच पाई जाने वाली असमानता ही व्याघात का मूल कारण है इसलिए लक्ष्य भाषा सीखते समय जो कठिनाइयाँ आती हैं उन्हें दूर करने के लिए स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के व्यवस्था वैषम्य का पता लगाना अनिवार्य है। व्यतिरेकी विश्लेषण की पद्धति भाषिक इकाइयों के विविध स्तरों पर (ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य) उपस्थित वैषम्य के आधार पर लक्ष्य भाषा के व्याकरण और अध्ययन सामग्री के निर्माण को प्रोत्साहित करती है। इस प्रकार वह मुख्यतः 'शिक्षक का व्याकरण' निर्मित करने पर बल देती है जिससे शिक्षक को यह पता चले कि शिक्षार्थियों को इकाई के किन स्तरों पर भाषा सीखने में कठिनाई की संभावना अधिक है और किन क्षेत्रों में कम। इस प्रकार वह तदनुसार शिक्षण सामग्री तैयार करने और कक्षा में उसे अनुस्तरित रूप में प्रस्तुत करने का एक ठोस आधार भी प्रदान करता है। वास्तव में कठिनाई के क्षेत्र ही त्रुटि का कारण बनते हैं। इसमें संदेह नहीं कि जब कोई व्यक्ति किसी दूसरी भाषा को सीखने की ओर प्रवृत्त होता है तब वह लक्ष्य भाषा के 'अव्यक्त व्याकरण' को उसी प्रकार सीखता है जिस प्रकार वह अपनी मातृभाषा का अव्यक्त व्याकरण सीखता है जैसे बालक अपनी मातृभाषा सीखते समय भैंस, बैल, बकरी सभी के लिए गाय शब्द का प्रयोग करता है। इसी प्रकार वह लड़का आया है के आधार पर पापा आया है, माँ आया है - का प्रयोग करता है। मातृभाषा और अन्य भाषा अव्यक्त व्याकरण को सीखने की प्रक्रिया एक होने पर भी उनमें एक बहुत बड़ा अंतर है। लक्ष्य भाषा को व्यक्ति हमेशा नहीं सीख पाता। इसका कारण यह है कि जिन विविध क्षेत्रों में जितनी सार्थकता के साथ वह अपनी मातृभाषा का प्रयोग अपने दैनिक जीवन में करता है उसी प्रकार लक्ष्य भाषा का नहीं करता। व्यवहार का यह अवसर न मिलने से भी त्रुटियाँ होती रहती हैं। त्रुटि विश्लेषण सिद्धांत ने त्रुटियों के अनेक प्रकारों की चर्चा की है जिनकी प्रकृति एक दूसरे से भिन्न है:

1) **व्यवहार संदर्भित त्रुटियाँ** : इन्हें दोष (Lapses) के रूप में देखा गया है। इस प्रकार की त्रुटियों का संबंध 'अव्यक्त व्याकरण' से न हो घर उस व्याकरण को व्यवहार में लाते समय की गई असावधानी से होता है। ऐसी त्रुटियाँ प्रयोक्ता अनजाने में करता है और बोलने के साथ ही वह ऐसे दोषों को समझ जाता है। इनके प्रति सजग भी हो जाता है या बताने पर अपनी गलत मान लेता है।

2) **अज्ञान संदर्भित त्रुटियाँ** : इस प्रकार की त्रुटियों को गलती (mistakes) कहा जा सकता है। गलती का संबंध लक्ष्य भाषा के नियमों की सही जानकारी के अभाव से होता है। उदाहरण के लिए हिंदी सीखने वाले अन्य भाषा-भाषी शिक्षार्थी आदर सूचक प्रयोग में गलतियाँ करते हैं - आप बैठो, आप कब आओगे जैसे प्रयोग वह प्रयोग के नियम की सही जानकारी न होने के कारण ही करता है।

3) **अंतर भाषा संदर्भित त्रुटियाँ** : भाषा-शिक्षण में इन्हें ही वास्तविक त्रुटियाँ (Errors) माना गया है और त्रुटि विश्लेषण (Error Analysis) की प्रमुख सामग्री के रूप में इन्हीं त्रुटियों पर सर्वाधिक बल दिया जाता है। त्रुटियों के इस वर्ग में वे अशुद्ध प्रयोग आते हैं जिनका मूल कारण 'अंतर भाषा' की अपनी व्यवस्था के साथ होता है। ये अशुद्ध प्रयोग एक निश्चित 'व्यवस्था' को व्यक्त करते हैं। अतः इन्हें

'व्यवस्था संबद्ध त्रुटियाँ' भी कहा जाता है। ये ही शिक्षार्थी की वास्तविक त्रुटियाँ हैं। इन त्रुटियों की प्रवृत्ति गत्यात्मक (Dynamic) होती है। इन्हें भाषा अधिगम प्रक्रिया में स्वाभाविक माना जाता है। शिक्षक इन्हीं को ध्यान में रखकर सामग्री और सुधारात्मक पाठ का निर्माण करता है।

इन त्रुटियों के विश्लेषण का संबंध स्रोतों के विवरण और वर्गीकरण से संबंधित होता है। वर्गीकरणों के आधार पर ऐसी त्रुटियों के अनेक स्रोत हैं जिनका संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत है :

1) **अति सामान्यीकरण :** इस प्रक्रिया का संबंध लक्ष्य भाषा की तथ्य सामग्री और भाषा व्यवस्था के आधारभूत नियमों का सादृश्य विधान के आधार पर प्रयोग प्रसार है। जैसे :

वह पढ़ता है - उसने पढ़ा
वह रोता है - उसने रोया

2) **उपनियमों की अज्ञानता :** हर भाषा में कुछ सामान्य नियम होते हैं और कुछ उन नियमों के विशेषीकृत प्रयोग, जिनका संबंध उपव्यवस्था या उपनियमों से रहता है जिनके अभाव में भी शिक्षार्थी त्रुटियाँ करता है, जैसे :

आप पीएं/'पीइए' (पीजिए)
आप करें/'करिए' (कीजिए)

3) **नियमों का अपूर्ण प्रयोग :** भाषा में नियम गुच्छ रूप में आते हैं, अतः जब एक नियम लागू किया जाता है तो स्वभावतः उस पर आधारित दूसरे नियम को भी लागू करना पड़ता है। पर भाषा अधिगम की प्रक्रिया क्रमिक होती है जिसके कारण त्रुटियाँ होती हैं जैसे :

मैंन रोटी खाया है।
मोहन जी बैठा है।

4) **भ्रांतिपूर्ण धारणा :** भाषा सीखने के समय कभी-कभी कुछ धारणाएँ भ्रांति रूप से मन में बैठ जाती हैं जिसके कारण त्रुटियाँ होती हैं जैसे वाच्य संबंधी त्रुटियाँ :

लड़के ने रोटी खा ली - लड़के ने रोटी को खा ली।
तुमने किताब पढ़ी - तुमने किताब को पढ़ी।

(क) भाषा का संरचनात्मक संदर्भ और त्रुटियाँ

(i) रूपात्मक : 'बेटा' से बोला।
वह राय 'भी' पुर गया था।

(ii) प्रकार्यात्मक : मोहन को किताब 'बेची'
सोहन ने मोहन 'को' किताब खरीद ली!

(ख) भाषा की बोधात्मक संदर्भ और त्रुटियाँ :

(i) शब्दार्थपरक : हिमालय भारत के 'दक्षिण'/उत्तर में है।
वह लेटकर/'सोकर' सोचता है।

(ii) वाक्यपरक : मैंने अनजान में गोली चलाई।
गिलास उससे जानबूझकर टूट गया।

(ग) भाषा का सामाजिक संदर्भ :

(i) रूपात्मक : शीला 'जी', 'तू'/ आप कहाँ गई थी,
मास्टर 'साहब' आज 'आया' था।

(ii) सामाजिक बोधपरक : नाना सब फल 'खा गया'।

धोबी (एक वचन) आज नहीं आए।

(iii) प्रयुक्ति/शैलीपरक : चर्चा के अनुसार तुम कार्रवाई करो/चर्चा के अनुसार कार्रवाई की जाए।
पत्र मिलने की पावती मैंने भेज दी है पत्र मिलने की पावती भेज दी गई है।
(कार्यालयीन हिंदी/लिखित हिंदी)

त्रुटियों के इन कारणों पर ध्यान देना अनिवार्य है। भाषा-शिक्षण को प्रभावी और उपादेय बनाने के लिए शिक्षार्थी की इन त्रुटियों पर ध्यान देते हुए भाषा-शिक्षण को स्वाभाविक बनाया जा सकता है। त्रुटि विश्लेषण सिद्धांत त्रुटियों के इन विभिन्न वर्गों को भाषा सीखने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण मानता है।

16.3.2 व्यतिरेकी विश्लेषण और त्रुटि विश्लेषण

व्यतिरेकी विश्लेषण पर चर्चा करते हुए भाषा-शिक्षण के सिद्धांतों पर चिंतन करने वाले विद्वान रॉबर्ट लैडो (1957) ने यह कहा था, "जो तत्व अधिगम कर्ता की देशीय भाषा के समान हैं वे उसके लिए सरल होंगे और जो भिन्न हैं वे कठिन होंगे", इन कठिनाइयों की पहचान और निदान में व्यतिरेकी विश्लेषण के महत्व को विवेचित करते हुए इस क्षेत्र के प्रमुख चिंतक पोलितज़र (1967) ने कहा था, "भाषाओं के शिक्षण में व्यतिरेकी विश्लेषण अध्येता की कठिनाइयों को अर्थवत्ता प्रदान कर सकता है और उनके बारे में अनुमान लगा सकता है।

इस प्रकार व्यतिरेकी विश्लेषण और त्रुटि विश्लेषण के बीच गहरा संबंध है। इन संबंधों को देखते हुए व्यतिरेकी विश्लेषण के तीन उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं – पूर्वानुमान, निरुपण और परीक्षण सामग्री निर्माण। पूर्वानुमान समान स्रोत भाषा-भाषियों की लक्ष्य भाषा अधिगम में होने वाली त्रुटियों का आकलन करता है और इन्हें देखते हुए सामग्री निर्माण में सहायक बनता है। **पूर्वानुमान** को चार दृष्टियों से देखा जा सकता है - वे स्थल जो समस्या को जन्म दे सकते हैं, कठिनाई का पूर्वानुमान, त्रुटियों का पूर्वानुमान और दृढ़ हो चुकी त्रुटियाँ। **निरूपण** के अंतर्गत यह देखा जाता है कि वास्तव में ये त्रुटियाँ क्यों होती हैं, त्रुटि के कारणों की पहचान से छात्र और अध्यापक दोनों को लाभ होता है। अध्यापक इसके माध्यम से ही त्रुटियों को दूर करने के लिए सुधारात्मक शिक्षण सामग्री तैयार करता है और उन्हें प्रयोग में ले आता है, **परीक्षण सामग्री निर्माण** में व्यतिरेकी विश्लेषण की दो भूमिका होती हैं। पहली भूमिका के अनुसार पूर्वानुमान के आधार पर यह वह बतलाता है कि क्या-क्या परीक्षणीय है। उसकी दूसरी भूमिका यह बताना होता है कि परीक्षण की आवश्यकता किन सीमाओं पर कितनी मात्रा में अपेक्षित है।

भाषा-शिक्षण के समय भाषा अधिगम प्रक्रिया में जो त्रुटियाँ होती हैं, उनकी व्याख्या और उनका निरूपण व्यतिरेकी विश्लेषण द्वारा ही संभव हो पाता है। शिक्षण प्रक्रिया के अंतर्गत आने वाली इन कठिनाइयों को सांचा अभ्यास (Pattern Practice) द्वारा अधिक वैज्ञानिक तरीके से दूर किया जा सकता है। व्यतिरेकी विश्लेषण और त्रुटि विश्लेषण के अंतःसंबंधों को निम्नलिखित बिंदुओं पर देखना चाहिए :

1) भाषा की सम्यक जानकारी न होने के कारण त्रुटियाँ होती हैं जिन्हें व्यतिरेक द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। व्यतिरेकी विश्लेषण द्वारा भाषा$_1$ से भाषा$_2$ के नियमों की जो भिन्नता है वह भी विवेचित होती है।

2) व्यतिरेकी विश्लेषण भाषा$_1$ और भाषा$_2$ की कठिन-सरल इकाइयों को स्पष्ट करता है। भाषा अधिगम प्रक्रिया में भाषा$_2$ की कठिन इकाइयाँ ही त्रुटि का कारण बनती हैं।

3) कठिनता और सरलता की संकल्पना शिक्षण और अधिगम की प्रक्रिया की दृष्टि से ही की गई है। इस स्तर पर सामग्री का चयन और उसके अनुस्तरण का महत्व जिससे यह भी संभव है कि त्रुटियाँ हों ही नहीं।

4) त्रुटियों का विश्लेषण भाषा के अभिव्यक्ति पक्ष से संबंधित होता है, बोधन पक्ष से नहीं अतः व्यतिरेकी विश्लेषण द्वारा कठिनाइयों के स्तरों का आसानी से पता लगाया जा सकता है।

5) व्यतिरेकी विश्लेषण त्रुटि की संभावना से भी बचा सकता है क्योंकि इसके माध्यम से कठिन संरचनाओं को पहचान कर उनके विकल्प दिए जा सकते हैं।

6) त्रुटियों का विश्लेषण व्यतिरेकी विश्लेषण का ही विकल्प है।

7) त्रुटि विश्लेषण के तीन प्रमुख उद्देश्य हैं : (1) अधिगम की समस्याओं को दूर करना, (2) भाषा$_2$ में निहित विशिष्ट भाषिक तत्वों की पहचान, (3) शिक्षक और शिक्षण सामग्री का सहयोगी बनना।

8) इन तीनों उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए त्रुटियों के स्रोतों की पहचान आवश्यक है।

16.4 परीक्षण और मूल्यांकन

भाषा-शिक्षण में भाषा-परीक्षण (Language Testing) और भाषा मूल्यांकन (Language Evaluation) का एक विशेष स्थान है। परीक्षण और मूल्यांकन दोनों का महत्व शिक्षा के क्षेत्र में पहले से स्वीकृत है। इनका एक लंबा इतिहास भी है। पर आज ये दोनों जिस रूप में भाषा-शिक्षण के एक उपांग के रूप में उभर कर सामने आए हैं वह पिछले पाँच दशकों की ही देन है। अब यह स्वीकार कर लिया गया है कि भाषा-शिक्षण के सैद्धांतिक और तकनीकी ज्ञान के साथ ही भाषा परीक्षण और मूल्यांकन को भी एक निश्चित दिशा और तकनीक मिल गई है। ये दोनों अपने उद्देश्य के अनुरूप अपनी प्रणाली का भी समुचित विकास कर चुके हैं।

16.4.1 भाषा परीक्षण के संदर्भ

शिक्षा के व्यावहारिक संदर्भ में परीक्षण किसी एक (निम्न स्तरीय) पाठ्यक्रम या कक्षा से किसी दूसरे (उच्च स्तरीय) पाठ्यक्रम या कक्षा में प्रवेश पाने के लिए एक निश्चित विधि है। यह विधि संस्थान द्वारा दिए जाने वाले प्रमाण-पत्र के लिए अपनाई जाती है। इस परंपरागत परीक्षण विधि को रूढ़िवादी माना गया है यह रूढ़िवादी मान्यता परीक्षण को सत्रांत की उस परीक्षा से जोड़ती है जो छात्रों को उत्तीर्ण अनुत्तीर्ण अथवा प्रथम, द्वितीय, तृतीय श्रेणियों में विभाजित करते हैं। यह विधि यह भी निर्णय करती है कि किन छात्रों को आगे की कक्षा में प्रवेश दिया जाए और किन्हें नहीं। शिक्षा की आधुनिक दृष्टि परीक्षण की इस पद्धति को उचित नहीं मानती। यह परीक्षण को शिक्षा प्रक्रिया का ही एक अभिन्न अंग मानती है। इसे वह अध्यापन क्षेत्र के भीतर ही रखती है। शिक्षण करते समय ही परीक्षण की प्रक्रिया साथ-साथ चलनी चाहिए - यह इसकी मान्यता है। इस प्रकार यह दृष्टि परीक्षण को छात्रों की अपनी सफलता या असफलता के परिणाम से संबद्ध नहीं करती। यह परीक्षण को उस सामर्थ्य और क्षमता से जोड़ती है जिसे लक्ष्य में रख कर शिक्षण प्रक्रिया चलती है।

परीक्षण और मूल्यांकन में भेद है पर 'सफलता-असफलता' से इसे अलग करने के लिए अब 'मूल्यांकन' शब्द का प्रयोग ही उचित माना जा रहा है। मूल्यांकन उद्देश्य बाधित होता है। यह एक ऐसी नियमित शैक्षिक प्रक्रिया है जो छात्रों की सामर्थ्य या क्षमता को विकसित करते हुए यह प्रयास करती है कि शिक्षण अधिक से अधिक प्रभावी रूप से चल सके।

16.4.2 मूल्यांकन के प्रकार

शिक्षा व्यापार को आधुनिक दृष्टिकोण से जोड़कर और परंपरागत शिक्षा व्यवस्था से उसे अलग करते हुए उसके तीन निश्चित चरण माने गए हैं – पाठ पूर्व, पाठ प्रक्रिया और पाठ पश्च। इन तीनों के अनुरूप भाषा-शिक्षण विभिन्न प्रकार के मूल्यांकन को वर्गीकृत करता है:

1) **प्रवेश मूल्यांकन :** इस प्राकर के मूल्यांकन का उद्देश्य यह जानना होता है कि छात्र की भाषाई क्षमता, निर्धारित पाठ्यक्रम के योग्य है या नहीं। इस प्रकार के परीक्षण के आधार पर शिक्षार्थी को एक या दूसरे पाठ्यक्रम में प्रवेश दिया जाता है।

2) **अभिक्षमता मूल्यांकन :** इस प्रकार का मूल्यांकन अन्य भाषा सीखने में छात्रों के संभाव्य सफलता की सांख्यिकीय सूचना देता है। इससे छात्रों की भाषा संबंधी रुझान का पता चलता है।

3) **वर्ग निर्धारण मूल्यांकन :** इस प्रकार के मूल्यांकन का संबंध नियोजित पाठ्यक्रम में भाषाई क्षमता के संदर्भ में छात्रों के उचित स्थान निर्धारण से रहता है। इससे छात्र की भाषाई क्षमता की स्थिति, योग्यता आदि का पता चलता है, साथ ही यह भी पता चलता है कि निर्धारित पाठ्यक्रम के अपेक्षित स्तर के संदर्भ में किस कौशल पर अध्यापन में कितना बल देना है।

4) **निदानात्मक मूल्यांकन :** इसे दो बातें जानने के लिए किया जाता है – पहली, यह कि पाठ्यक्रम में अभी कितना और क्या पढ़ाया जाना शेष है, और दूसरी यह कि शिक्षार्थी भाषा के किस पक्ष को अभी नहीं सीख पाया है या उसके सीखने में उसे क्या कठिनाइयाँ हैं जिससे उसका उपचार किया जा सके। इसलिए इसे उपचारात्मक मूल्यांकन भी कहा जाता है।

5) **उपलब्धि मूल्यांकन :** इसका उपयोग पाठ निर्देश के संदर्भ में और कक्षा में पढ़ाए गए तथ्यों के आधार पर छात्रों के भाषाई कौशल संबंधी उपलब्धि का पता लगाने के लिए किया जाता है। यह अध्यापन के संदर्भ में छात्रों की अपनी उपलब्धि से संबंध रखता है।

6) **दक्षता मूल्यांकन :** यह छात्रों के भाषा अधिगम संबंधी संयोजित अनुभव से संबद्ध रहता है। इसमें परीक्षण का संदर्भ कक्षा में दिए गए पाठ संबंधी निर्देश नहीं होता। इसका संदर्भ शिक्षार्थी के भाषाई-कौशल में दक्षता का वह अनुपात होता है जिसके माध्यम से वह दी गई परिस्थिति विशेष में भाषा का सक्षम या अक्षम रीति से उपयोग करता है।

16.5 अभ्यास सामग्री

भाषा अधिगम प्रक्रिया में जिन त्रुटियों की संभावना होती है उन त्रुटिपूर्ण संरचनाओं में शिक्षार्थी को अधिक से अधिक प्रयोग कराना चाहिए। इससे त्रुटियों का निदान और उपचार भी संभव होगा और सीखने की गति में भी तीव्रता आएगी। इन लक्ष्यों की प्राप्ति में अभ्यासों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। अभिरचना अभ्यास इसी दृष्टि से निर्मित किए जाते हैं कि शिक्षार्थी लक्ष्य भाषा को उसके परिवेश में प्रयोग में ला सके। प्रयोग के अवसर भाषा के विभिन्न प्रकार्यों को ध्यान में रख कर विभिन्न प्रकार के अभिरचना अभ्यासों द्वारा सिद्ध किए जाते हैं। ऐसा करने से अध्येता के मन में भाषा के शुद्ध रूपों का दृढ़ीकरण होता है और त्रुटिपूर्ण रूपों की जगह शुद्ध रूप के प्रयोग की ओर वह आगे बढ़ता है। इस प्रकार शिक्षण प्रक्रिया के अंतर्गत आने वाली कठिनाइयों/ त्रुटियों को सांचा अभ्यास द्वारा दूर करने तथा भाषा अधिगम को अधिक से अधिक त्रुटिहीन बनाने का प्रयास किया जाता है। अभिरचना अभ्यास के कई प्रकार हैं जिन्हें अध्यापक कक्षा में पढ़ाते समय उपयोग में ले आता है। इस

अभ्यास के पीछे दो तथ्य काम करते हैं – एक तो लक्ष्य भाषा की संरचनात्मक व्यवस्था और दूसरे अधिगम (Learning) प्रक्रिया। इन अभ्यासों द्वारा दो कार्यों की सिद्धि होती है – एक तो प्रत्यक्ष अभ्यास और दूसरा अध्येता में संरचनात्मक व्यवस्था की समझ का विकास। ये अभ्यास शिक्षार्थी में अभिरचना को आदत के रूप में ढालते हैं। संरचनात्मक व्यवस्था की समझ उसे यह बताती है कि वह क्या सीख रहा है। भाषा-शिक्षण प्रक्रिया में साँचा अभ्यास या अभिरचना अभ्यास (pattern practice) के दो वर्ग बनाए गए हैं – (1) पुनरावृत्ति अभ्यास, (2) संदर्भ परक अभ्यास। पुनरावृत्ति अभ्यास यांत्रिक रीति से अभिरचना का ड्रिल कराता है। इसे करते समय छात्र यह नहीं जान पाते कि वे किसका अभ्यास कर रहे हैं लेकिन अध्यापक इन अभ्यासों के माध्यम से उनकी त्रुटियों का निदान करता चलता है। संदर्भ परक अभ्यास में इसे नियंत्रित किया जाता है जिसमें छात्र अभिरचना को समझ कर उनका अभ्यास करते हैं। इन दोनों वर्गों में अभिरचना अभ्यास से संबंधित सामग्री का थोड़ा-सा विवरण नीचे दिया जा रहा है जिससे आप भाषा-अधिगम में अभ्यास सामग्री के महत्व को समझ सकेंगे और यह भी देख सकेंगे कि त्रुटियों के निदान में या त्रुटियों को आने ही न देने में ये अभ्यास बहुत ही उपयोगी सिद्ध होते हैं :

1) पुनरावृत्ति अभ्यास

सामूहिक पुनरावृत्ति अभ्यास –

अध्यापक : मोहन को किताब चाहिए।
छात्र : (सामूहिक रूप से) मोहन को किताब चाहिए।

सरल प्रतिस्थापन अभ्यास –

अध्यापक : मोहन को किताब चाहिए।
छात्र : (सामूहिक रूप से) मोहन को किताब चाहिए।
अध्यापक : सोहन
छात्र (1) : सोहन को किताब चाहिए।
अध्यापक : शीला
छात्र (2) : शीला को किताब चाहिए।

रूप सिद्धि अभ्यास –

अध्यापक : मोहन को किताब चाहिए।
छात्र : (सामूहिक रूप से) मोहन को किताब चाहिए।
अध्यापक : मोहन लड़का है।
छात्र : (सामूहिक रूप से) मोहन लड़का है।
अध्यापक : लड़के को किताब चाहिए।
छात्र : (सामूहिक रूप से) लड़के को किताब चाहिए।
अध्यापक : बेटा
छात्र (1) : बेटे को किताब चाहिए।

बहुविध प्रतिस्थापन अभ्यास –

अभिरचना : क्या तुम ..... रहे हो?
अध्यापक : पढ़ना (किताब की ओर संकेते देते हुए)
छात्र : क्या तुम किताब पढ़ रहे हो?

योजक अभ्यास –

अध्यापक : मुझको बाज़ार जाना है।
छात्र : मुझको बाज़ार जाना है।
अध्यापक : शाम को
छात्र : मुझे शाम को बाज़ार जाना है।

सामान्य रूपांतरण अभ्यास –

अध्यापक : मोहन किताब पढ़ता है
क्या मोहन ने किताब पढ़ी?
अध्यापक : मोहन चिट्ठी लिखता है।
छात्र : क्या मोहन ने चिट्ठी लिखी।

2) संदर्भ परक अभ्यास

(क) इसमें स्थितियाँ प्रमुख होती हैं –

अध्यापक : किताब कहाँ है?
छात्र : किताब मेज़ पर है।
अध्यापक : पेंसिल कहाँ है?
छात्र : पेंसिल डिब्बे में है।

(ख) छात्र दो वर्गों में बाँट दिए जाते हैं

अध्यापक : किताब?
छात्र (1) : किताब कहाँ है?
छात्र (2) : किताब मेज़ पर है।

(ग) प्रश्नोत्तर सरल वार्तालाप में बदल जाता है –

अध्यापक : (चित्र दिखाकर) क्या आदमी मिठाई बेच रहा है?
छात्र : हाँ, वह मिठाई बेच रहा है।
अध्यापक : क्या वह फल बेच रहा है?
छात्र : नहीं, वह फल नहीं बेच रहा है।

16.6 दृश्य-श्रव्य सामग्री

अन्य भाषा-शिक्षण के व्यापक आयाम ने अध्येता और शिक्षक के दायित्व को भी गंभीर बनाया है। अब विदेशी भाषा-अध्येता कुछ पूर्व निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के उद्देश्य से किसी विदेशी भाषा की ओर प्रवृत्त होते हैं। अतः उनका मार्ग तभी प्रशस्त हो सकता है जब वे शीघ्रता से विदेशी भाषा में दक्षता प्राप्त करें और उनका प्रयोग करते हुए अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकें। दक्षता की प्राप्ति में शीघ्रता दृश्य-श्रव्य उपकरणों की सहायता से निश्चय ही लाई जा सकती है। भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में कार्य कर रहे प्रमुख विद्वानों (लेडो, डाले, पिट कॉर्डर) को इस बात में कोई संदेह नहीं है कि दृश्य-श्रव्य तकनीक विदेशी भाषा-शिक्षण को अधिक सफल, रोचक और गतिशील बनाती है और इस बात में भी कि इन उपकरणों के प्रयोग से भाषा-शिक्षक का अस्तित्व भी खतरे में नही पड़ता। अतः यह सोचना-मानना भ्रामक है कि तकनीकी उपकरण भाषा-शिक्षक का स्थान ले सकते हैं और यह भी कि केवल इन उपकरणों के माध्यम से शिक्षक-अध्येता के शारीरिक-बौद्धिक प्रयत्न के बिना विदेशी भाषा-शिक्षण और अधिगम के लक्ष्य प्राप्त किए जा सकते हैं। यह अवश्य है कि ये उपकरण भाषा-शिक्षक के कार्य को प्रभावशाली और फलप्रद बना सकते हैं, विशेषतः उन नियमित ड्रिल्स और अभ्यासों के क्षेत्र में जो अपने में मशीली प्रकृति के होते हैं तथा भाषा के सामाजिक-सांस्कृतिक पक्षों को प्रामाणिक रूप में दर्शाने में जो मात्र कक्षा में दिए गए विवरणों से साफ नहीं हो पाते हैं। इन दोनों धरातलों पर दृश्य-श्रव्य उपकरण भाषा-पाठ्यक्रमों में सहायक की भूमिका निभा सकते हैं, निभाते हैं।

यह तो हम सभी जानते हैं कि अन्य भाषा-शिक्षण में अन्य शिक्षण-प्रक्रियाओं ने क्रमशः व्याकरण-अनुवाद विधि का स्थान ले लिया। अन्य भाषा-शिक्षण की ये सभी प्रक्रियाएँ

वास्तविक भाषा-व्यवहार पर केंद्रित हैं। यह भी सर्वविदित तथ्य है। अन्य भाषा-शिक्षण के प्रारंभिक स्तर पर उच्चरित भाषा के वास्तविक व्यवहार पर बल दिया जाता है। कई शिक्षण प्रक्रियाएँ विद्युत मशीनी (electro-mechanical) उपकरणों (Aids) का भी उपयोग करती हैं। ये उपकरण ग्रामोफोन-टेपरिकार्डर से लेकर भाषा-प्रयोगशाला, दृश्य-श्रव्य तकनीक और शिक्षण-मशीन तक विस्तृत होते चलते हैं। अन्य भाषा अधिगम के दो उद्देश्य हैं : (1) संप्रेषणपरक क्षमता अर्थात् मूलभूत भाषा कौशलों का अर्जन तथा (2) सूचना-पक्ष की प्राप्ति अर्थात् अन्य समाज की संस्कृति और जीवन का ज्ञान। इन दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति में दृश्य-श्रव्य उपकरण और विशेष रूप से वीडियो अति उपयोगी और सफल सिद्ध हो सकते हैं। परंपरागत कक्षा में इन उद्देश्यों की प्राप्ति इतनी सफल नहीं होती। अन्य भाषा में और उसके उपयुक्त (appropriate) व्यवहार में निबद्ध विचार, मूल्य, विश्वास, अंग-संचालन आदि वीडियो के माध्यम से प्रस्तुत करना आज अन्य भाषा-शिक्षण का प्रमुख अंग बन चुका है।

रेडियो कार्यक्रमों को टेपांकित करने और टी.वी. कार्यक्रमों को वीडियो अंकित करने की सुविधा ने अन्य भाषा-शिक्षण में बहुसंचार पाठ्यक्रम और बहुसंचार कक्षा (Multi-media courses and multi-media classes) को भी प्रोत्साहित किया है। टी.वी. पाठ्यक्रम रेडियो कार्यक्रमों द्वारा 'बैक अप' होते हैं और ये दोनों पाठ्य-पुस्तकों या पाठ्य-सामग्री द्वारा, फिर सभी वीडियो द्वारा। इससे भाषा अध्येता गहन अभ्यासों से बार-बार जुड़ता है और उसकी बोधात्मक क्षमता बहुस्तरीय रूप में विकसित होती है। टी.वी. और वीडियो भाषा अध्येता को नई भाषा के सामने उसके सभी सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों के साथ ला खड़ा करते हैं और इन्हीं संदर्भों के इर्द-गिर्द उन्हें संप्रेषण करने का उद्दीपन (stimulus) प्रदान करते हैं। रेडियो नई भाषा को अन्य उदाहरणों के साथ री-इनफोर्स करता है और कानों को प्रशिक्षित करता है। पाठ्य-पुस्तकें या शिक्षण सामग्री भाषा व्यवस्था के सिद्धांतों की व्याख्या करती है, मूलभूत अभ्यास-सामग्री उपलब्ध कराती है। अन्य माध्यमों से दिशा-निर्देश देती है और लिपि के रूप में लिखित माध्यम प्रदान करती हैं। ऑडियो-कैसेट, श्रवण और अभ्यास को ड्रिल और संवादों के माध्यम से गहनता प्रदान करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि भाषा शिक्षक का व्यक्तित्व और भाषा-शिक्षण की उसकी तकनीक किसी भी मशीन-उपकरण से अधिक महत्वपूर्ण और दीर्घ-प्रभावी होते हैं लेकिन तकनीकी उपकरण निश्चित ही भाषा-शिक्षण के भाषाई-अनुभव को विस्तार से प्रस्तुत करने में सहायक हैं तथा वह इनके माध्यम से भाषा-शैली और शिक्षण सामग्री में विविधता ला सकता है।

अन्य भाषा-शिक्षण में भाषा के तात्विक धरातलों के अधिगम को पाँच चरणों में बाँटा जा सकता है :

(i) पहचान (recognition)
(ii) नकल (imitation)
(iii) दुहराना (repetition)
(iv) वैविध्य (Variation) और
(v) चयन (selection)

इन चरणों की संप्राप्ति वीडियो के माध्यम से संभव है और ऑडियो कैसेट रिकार्डर के माध्यम से भी। ऑडियो कैसेट रिकार्डर द्वारा भाषा-शिक्षक नई भाषा को प्रस्तुत कर सकता है तथा गीतों, खेलों या अन्य गतिविधियों पर प्रकाश डाल सकता है। ये सभी गतिविधियाँ वह ध्वनि के माध्यम से पूर्ण करता है। वीडियो भी ठीक यही कार्य ध्वनि और चलचित्र के माध्यम से करता है। व्याख्यान या परिचर्चा ऑडियो-वीडियो, दोनों माध्यमों में निर्मित किए जा सकते हैं।

वीडियो निम्नलिखित तीन स्तरों पर भाषा के संप्रेषणपरक धरातल के उभारने में सक्षम हैं:

(i) स्थिति और अर्थ (situation and meaning)

(ii) रूप और अर्थ (form and meaning) तथा
(iii) संस्कृति और अर्थ (culture and meaning)

रेडियो

- कान को प्रशिक्षित करना
- गहन श्रवण अभ्यास
- मातृभाषा भाषी प्रारूप
- टी.वी. वीडियो की तुलना में अधिक उपलब्धता
- अनुस्तरित कार्यक्रम श्रवण को सफल बनाते हैं।
- क्षणभंगुर (Ephmeral)
- प्रसारण अस्पष्ट हो सकता है
- भाषा अति मानकीकृत हो सकती है।

टी.वी.

- संदर्भ में भाषा
- ध्वनि के साथ चलचित्र
- बाहरी दुनिया कक्षा में
- अंतर्सांस्कृतिक
- एक बार दो बार देख सकते हैं
- अल्प भाषा सघनता (लौ लैंग्वेज डेंसिटी)
- गहन अध्ययन के लिए अनुपयुक्त
- जटिल भाषा का रूप
- बोलने की तेज़ गति या अस्पष्ट उच्चारण

वीडियो

- टी.वी. के सभी लाभ और कुछ हानियाँ जिन्हें निर्माण स्तर पर दूर किया जा सकता है।
- गहन अध्ययन
- छोटे क्रमिक अंश चुने जा सकते हैं
- दृश्यों को धीमी गति से या रोक कर दिखलाया जा सकता है
- अभिवृत्ति, मुख-मुद्रा, अंग-संचालन और परिवेश पर फोकस किया जा सकता है।
- डिटेल्स का क्लोज़ आप लेने की सुविधा
- अल्प भाषा सघनता (लो लैंग्वेज डेंसिटी)
- दृश्य पर बल
- एक कक्षा में प्रयोग के लिए बहुत लंबा दृश्य

भाषा-शिक्षण मे परिवर्तन की संभावना अनिवार्य है और विचारों, आधुनिक विकासों और नई माँगों के अनुरूप इसमें परिवर्तन की संभावना का मार्ग निर्मित होता रहा है। जब ये परिवर्तन पाठ्यक्रम, पाठ्य-सामग्री की संप्रेषणीयता, परीक्षण और अध्यापक के माध्यम से आते हैं तो इनकी उपादेयता असंदिग्ध होती है। ये नई तकनीकें भी इस प्रकार के परिवतर्न का रूप हैं। निश्चित ही ये तकनीकें भाषा-शिक्षक के लिए चुनौतियाँ हैं।

वीडियो के लिए सामग्री भाषा-शिक्षक द्वारा बनाई जाती है। निश्चय ही यह सामग्री विविधतापूर्ण होती है क्योंकि यह उन दरारों को भरती है जो मूल कक्षा में छूट गए थे।

भाषा-शिक्षक अपने कक्षा के अनुभव को वीडियो द्वारा संचालित कर अपने व अध्येता के उस लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है जो दैनंदिन या वास्तविक भाषा प्रयोग और उसके बोधन से संबद्ध है। इस क्षेत्र में इस प्रकार के पाठ्यक्रम लिखना निश्चित ही एक विशेषीकृत कार्य है। जो श्रम साध्य भी है और समय साध्य भी। फिल्मों उपयुक्त अंशों का संकलन, पटकथा-लेखन, वार्तालाप निर्माण, साक्षात्कार, परिचर्चा, व्याख्यान आदि कई ऐसे पक्ष हैं जो वीडियो पर लाए जा सकते हैं, लाए जा रहे हैं। लेकिन वीडियो भाषा-शिक्षक का स्थानापन्न कभी नहीं हो सकता और न ही यह भाषा-अधिगम का समतुल्य ही है। यह भाषा-शिक्षण का एक सशक्त साधन है। बहु-जनसंचार भाषा-शिक्षण उपकरणों जैसे रेडियो, टी.वी., टेपरिकार्डर, पाठ्यपुस्तक आदि की तुलना में वीडियो में अनंत संभावनाएँ हैं।

यह प्रयोग अध्येताओं में आत्मविश्वास, समझ और मनोरंजन पैदा कर भाषा-शिक्षण को तो अपूर्व गति प्रदान कर ही रहा है साथ ही भाषा-समाज, उसकी जीवन-पद्धति, उसके रीति-रिवाज तथा उसके लोक-विश्वासों को दृश्य रूप में अध्येता के सामने लाने में भी समर्थ है।

रेडियो या टेलीविज़न एक तरफ़ा संचार माध्यम है, जिनमें परस्पर संपर्क की गुंजाइश नहीं है। भाषा संप्रेषण की वस्तु है और परस्परता इसमें सबसे आवश्यक गुण है। आजकल प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास के कारण हम टेलीकांफ्रेंसिंग का उपयोग करते हैं जो कक्षा का सक्रिय वातावरण उपस्थित कर देता है। कंप्यूटर की विकसित तकनीकों के कारण अब मल्टीमीडिया कार्यक्रम बहुत सहज हो चले हैं। इनसे हम भाषा को वास्तविक संदर्भ में देख सकते हैं और इसमें कक्षा से भी अधिक परस्परता (interactivity) आ सकती है। टेलीकांफ्रेंसिंग और कंप्यूटर के जोड़ से हम अपने कक्ष में ही वास्तविक कक्षा (virtual classroom) का वातावरण निर्मित कर सकते हैं।

16.7 सारांश

इकाई 15 में हमने भाषा शिक्षण के विविध रूपों और विधियों की चर्चा की। इकाई 16 में भाषा शिक्षण से संबंधित व्यावहारिक पक्षों की चर्चा की गई है।

हम भाषा शिक्षण के लिए लक्ष्य निर्धारित कर लेते हैं, जिससे विविध उद्देश्यों से भाषा सीखने वाले अपनी-अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप भाषा दक्षता अर्जित करें। लेकिन हम अक्सर देखते हैं कि छात्र या अध्येता के सामने अर्जन में बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं। इन्हें पहचानने और दूर करने के उद्देश्य से दो विशिष्ट अध्ययन क्षेत्रों का आविर्भाव हुआ है।

भाषा का व्यतिरेकी विश्लेषण संरचनात्मक भाषाविज्ञान पर आधारित है। यह दो भाषाओं में अंतर के स्थलों का आकलन करता है जिससे हम इन स्थलों पर होने वाली संभावित त्रुटियों का पूर्वानुमान कर सकें। सामग्री निर्माण में हम इन त्रुटियों को दूर करने के उद्देश्य से आवश्यक अभ्यास और उपचारात्मक सामग्री की योजना बनाते हैं।

भाषा दोष विश्लेषण (या त्रुटि विश्लेषण) चॉम्स्की के उपागम पर आधारित अध्ययन क्षेत्र हैं। इसके अनुसार त्रुटियाँ भाषा अर्जन की प्रक्रिया के सहज अंग हैं। यह अध्ययन मानता है कि संरचना की विभिन्नता हमेशा त्रुटि का कारण नहीं बनती। वास्तव में इन त्रुटियों से हम यह पता लगा सकते हैं कि भाषा के नियमों को आत्मसात करने की प्रक्रिया कैसे काम कर रही है।

हम जिन उद्देश्यों से भाषा सीखते हैं, उन्ही उद्देश्यों के संदर्भ में भाषा का परिक्षण होना चाहिए। भाषा का परीक्षण गणित, विज्ञान आदि की तरह ज्ञान पर आधारित नहीं हो सकता।

हमें विभिन्न भाषिक कौशलों में क्षमता का परीक्षण करना चाहिए। मूल्यांकन विभिन्न स्तरों पर भाषा शिक्षण के आयोजन के विभिन्न पहलुओं की जानकारी देता है।

भाषा शिक्षक के आयोजन में विधि या अध्यापक द्वारा प्रस्तुतीकरण का जितना महत्व है उतना ही महत्व सामग्री का है। भाषा शिक्षण की सामग्री अन्य विषयों की सामग्री से भिन्न होती हे। मौखिक कौशलों के विकास के लिए हमें उचित साँचा अभ्यास (pattern drill) तैयार करने चाहिए, जिनकी सहायता से छात्र ध्वनि, शब्दार्थ आदि तत्वों पर भी अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। यह सामग्री क्रमबद्ध होती है और नियंत्रित अभ्यास के लिए उपयोगी भी।

साँचा अभ्यास या अभिरचना अभ्यास भाषा को संदर्भ से अगल करके प्रस्तुत करता है। आधुनिक युग में प्रौद्योगिकी के विकास के कारण हम टेलीविज़न, वीडियो आदि उपकरणों के माध्यम से भाषा का संदर्भ उपस्थित कर सकते हैं। अब तक यही कठिनाई थी कि इनके माध्यम से परस्परता युक्त (interactive) शिक्षण संभव नहीं था। अब कंप्यूटर के मल्टीमीडिया कार्यक्रम भाषा शिक्षण में क्रांति ला रहे हैं।

16.8 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

(1) भाषा शिक्षण में दृश्य-श्रव्य सामग्री का महत्व स्पष्ट कीजिए।

2. टिप्पणियाँ

(1) त्रुटि विश्लेषण : प्रक्रिया और प्रयोजन

(2) भाषा परीक्षण

(3) साँचा अभ्या

इकाई 17 अनुवाद

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 अनुवाद से तात्पर्य
17.3 भाषाविज्ञान और अनुवाद
  17.3.1 अनुवाद और ध्वनिविज्ञान
  17.3.2 अनुवाद और शब्दविज्ञान
  17.3.3 अनुवाद और रूपविज्ञान
  17.3.4 अनुवाद और वाक्यविज्ञान
  17.3.5 अनुवाद और अर्थविज्ञान
  17.3.6 अनुवाद और शैलीविज्ञान
17.4 अनुवाद : प्रकृति, क्षेत्र, प्रकार तथा उपयोगिता
  17.4.1 अनुवाद की प्रकृति
  17.4.2 अनुवाद के क्षेत्र
  17.4.3 अनुवाद के प्रकार
  17.4.4 अनुवाद की उपयोगिता
17.5 अनुवाद की प्रक्रिया
17.6 हिंदी में अनुवाद से संबद्ध समस्याएँ तथा निदान
  17.6.1 भाषिक स्तर की समस्याएँ
17.7 साहित्यिक अनुवाद
17.8 सारांश
17.9 अभ्यास प्रश्न

17.0 उद्देश्य

अनुवाद अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का एक प्रमुख क्षेत्र है और आज के अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में एक महत्वपूर्ण और आर्थिक दृष्टि से उपयोगी कार्यकलाप है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- अनुवाद की परिभाषा दे सकेंगे;
- अनुवाद और भाषाविज्ञान का संबंध समझा सकेंगे;
- अनुवाद की प्रकृति और उपयोगिता की चर्चा कर सकेंगे;
- अनुवाद के प्रकार बता सकेंगे और साहित्यिक तथा विषय संबंधी अनुवाद की प्रक्रिया समझा सकेंगे;
- अनुवाद से संबंधित समस्याओं का आकलन कर सकेंगे और समाधान खोज सकेंगे; और
- अनुवाद कार्य में इस जानकारी के आधार पर प्रवृत्त हो सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग में हम सबको अनुवाद से कहीं-न-कहीं वास्ता पड़ता है। हम अगर किसी नए देश में जाएँ तो अनुवादक ढूँढ़ना पड़ता है या विदेशी भाषा में मुद्रित सामग्री को समझने के लिए अनुवाद की आवश्यकता महसूस होती है। आधुनिक युग वैश्वीकरण का युग है। विश्व के सभी लोग मिलकर ज्ञान-विज्ञान के विकास के लिए प्रयत्नशील हैं। लेकिन विश्व में लगभग 70 प्रमुख भाषाएँ हैं जिनमें साहित्य तथा ज्ञान-विज्ञान के विषय उपलब्ध हैं। हमें एक भाषा से दूसरे भाषा में इस सामग्री को ले जाने के लिए कुशल अनुवादक की ज़रूरत होती है। यूँ कह सकते हैं कि अनुवाद के अभाव में आज विश्व विखंडित हो जाएगा।

भाषाविज्ञान तथा हिंदी भाषा के विविध पक्षों का अध्ययन करते हुए जब हम अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान पर आते हैं तो अनुवाद का अध्ययन हमें इसका एक अत्यंत स्वाभाविक अंग लगता है कि अनुवाद की प्रक्रिया का माध्यम भाषा ही होती है। इस इकाई में हम अनुवाद के तात्पर्य और स्वरूप को समझते हुए भाषाविज्ञान से उसके संबंध पर भी दृष्टिपात करेंगे। हम देखेंगे कि भाषा के विभिन्न स्तरों–ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ, शैली आदि का वैज्ञानिक अध्ययन सही अनुवाद में किस प्रकार और कहाँ तक सहायक सिद्ध होता है।

इसके बाद हम अनुवाद की प्रकृति पर विचार करते हुए यह जानने की कोशिश करेंगे कि यह विज्ञान है या कौशल या कला। इसी क्रम में हम आगे उन क्षेत्रों का आकलन करेंगे जिनमें अनुवाद का प्रयोग होता या हो सकता है। फिर अनुवाद के विविध प्रकारों की चर्चा करते हुए हम अनुवाद की उपयोगिता को रेखांकित करने की कोशिश करेंगे।

अगले अनुभाग में हम देखेंगे कि मूल पाठ को पढ़ने और दूसरी भाषा या भाषा-भेद में उसकी अभिव्यक्ति के बीच अनुवाद कौन-सी विभिन्न प्रक्रियाओं से गुज़रता है।

अनुवाद के क्रम में अनुवादक को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है। इनमें से कुछ भाषिक स्तर की समस्याएँ होती हैं कुछ भाषा से इतर स्तर की। कुछ समस्याएँ किसी विशिष्ट साहित्यिक विधा से भी जुड़ी हुई होती हैं। इन सभी प्रकार की समस्याओं पर भी हम संक्षेप में विचार करेंगे।

अंत में, सामान्य अनुवाद तथा साहित्यिक अनुवाद का अंतर स्पष्ट करते हुए हम इस पाठ के उपसंहार पर आएँगे।

17.2 अनुवाद से तात्पर्य

'अनुवाद' वास्तव में है क्या? आप तुरंत कह उठेंगे– 'एक भाषा में कही हुईबात को दूसरी भाषा में कहना'। जी हाँ, वे शब्द अति सरलीकृत रूप में वही संकल्पना हमारे सामने रखते हैं जिसे आज अनुवाद के नाम से जाना जाता है। पर क्या आप जानते हैं कि मूलतः इस शब्द का अर्थ क्या था?

वह शब्द संस्कृत भाषा का है। 'अनु' का अर्थ है पीछे चलना और 'वाद' का अर्थ है बोलना। 'शब्दार्थ चिंतामणि' कोश में इसका अर्थ दिया गया है। 'प्राप्तस्य पुनःकथने' (पहले कहे गए को फिर से कहना) और 'ज्ञातार्थस्य प्रतिपादने' (ज्ञात अर्थ को प्रतिपादित करना)। अर्थात् पहले कही हुई किसी बात को समझकर अगर आप पुनःप्रस्तुत करते हैं, तो वह अनुवर्ती कथन या अनुवाद है। ध्यान दें, यह पुनःकथन मूल कथन की ही भाषा में भी हो सकता है। शर्त यही है कि मूल कथन और पुनःकथन के अर्थ में कोई अंतर न आए।

आज हम अनुवाद को अंग्रेज़ी 'ट्रांसलेशन' (Translation) के पर्याय के रूप में प्रयुक्त करते हैं। 'ट्रांसलेशन' शब्द का भी प्राथमिक अर्थ है–स्थानांतरण, अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। विस्तृत अर्थ में पहले कही हुई बात का दूसरे शब्दों में पुनःकथन ही अनुवाद है, चाहे वह समभाषिक हो या अन्यभाषिक। किंतु आज अनुवाद को सामान्यतः द्वैभाषिक व्यापार ही माना जाता है जैसा कि इसकी अनेक परिभाषाओं से स्पष्ट है। उदाहरण के लिए कुछ परिभाषाएँ देखिए (अंग्रेज़ी परिभाषाओं का यहाँ हिंदी भाषांतरण दिया जा रहा है) :

अनुवाद "एक भाषा की पाठ्यसामग्री को दूसरी भाषा की पाठ्यसामग्री को समतुल्य पाठ्यसामग्री द्वारा प्रतिस्थापित करना" ही अनुवाद है जे.सी. कैटफर्ड। अनुवाद "एक भाषा के शाब्दिक प्रतीकों की अन्य भाषा के शाब्दिक प्रतीकों द्वारा व्याख्या" है रोमन याकोबसन।

अनुवाद "मूल भाषा के संदेश के सममूल्य संदेश को लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करने की क्रिया" है जिसमें संदेशों की यह सममूल्यता "पहले अर्थ और फिर शैली की दृष्टि से" निकटतम और स्वाभाविक होती है इ.ए. नाइडा तथा आर. टेबर। "पहले किसी भाषा में लिखी या कही गयी बात को पीछे किसी अन्य भाषा में कहना या लिखना" अनुवाद है डॉ. जी. गोपीनाथन। 'एक भाषा में व्यक्त विचारों को यथासंभव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है डॉ. भोलानाथ तिवारी। अनुवाद का प्रकार्य है "एक भाषा में व्यंजित संदेश को दूसरी भाषा में पुनः कहना" डॉ. सुरेश कुमार।

इन परिभाषाओं के विश्लेषण तथा आकलन के लिए आप पाठ के अंत में दिए गए संदर्भ ग्रंथों का अध्ययन करें। यहाँ हम साररूप में अनुवाद की उन कुछ विशेषताओं का उल्लेख मात्र करेंगे जो इन परिभाषाओं से उभरकर सामने आती हैं :

1. अनुवाद एक भाषिक प्रक्रिया है।
2. सामान्यतः यह दो भाषाओं के बीच का ऐसा संबंध है जिसमें एक भाषा के शाब्दिक प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त बात को दूसरी भाषा के शाब्दिक प्रतीकों के माध्यम से पुनः प्रस्तुत किया जाता है।
3. पुनःप्रस्तुति की इस प्रक्रिया में भाषा में अंतरण आता है, अर्थ में नहीं।
4. एक भाषा का संदेश जब दूसरी भाषा में अभिव्यक्त किया जाता है तो दोनों में अर्थ (कथ्य) तथा अभिव्यक्ति (शैली) के स्तर पर भी समतुल्यता आवश्यक है, तभी मूल अर्थ का संप्रेषण संभव होगा।
5. अनुदित पाठ यथासंभव सहज तथा स्वाभाविक हो।
6. अनुवाद मौखिक भी हो सकता है और लिखित भी।

1. परिभाषाओं से स्पष्ट है कि मोटे तौर पर एक बार कही हुई बात को दूसरे शब्दों में फिर से कहना ही अनुवाद है। कथन ८. अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है, इसलिए अनुवाद की प्रक्रिया भी भाषा पर ही होती है।

   विस्तृत अर्थ में अनुवाद एकभाषिक भी हो सकता है और द्वैभाषिक भी। कई बार किसी भाषा में अभिव्यक्त विचार अधिक स्पष्ट या सरल रूप में सामने रखने के लिए उसी भाषा के अपेक्षाकृत सहज शब्दों में प्रस्तुत किए जाते हैं। उदाहरण के लिए : "दिवस का अवसान समीप था"–"दिन का अंत निकट था/दिन ढलने को था" या एक ही भाषा के प्राचीन रूप में अभिव्यक्त बात को आधुनिक रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। (जैसे पुरानी अंग्रेज़ी→आधुनिक अंग्रेज़ी), या एक ही भाषा के मानक रूप में अभिव्यक्त बात अमानक रूप में या अमानक रूप में अभिव्यक्त बात मानक रूप में प्रस्तुत की जाती है, या एक ही भाषा की एक बोली में अभिव्यक्त बात दूसरी बोली में, एक बोली में अभिव्यक्त बात मानक भाषा में, या मानक भाषा में अभिव्यक्त बात किसी बोली में रूपांतरित करके प्रस्तुत की जाती है। इन सभी स्थितियों को एकभाषिक अनुवाद के अंतर्गत रखा जा सकता है।

   किंतु अनुवाद का द्वैभाषिक रूप ही अधिक प्रचलित तथा चर्चित है, जैसा कि अनुवाद की अधिकतर परिभाषाओं तथा तत्संबंधी विवेचन से ज़ाहिर है। मगर इस प्रक्रिया का संबंध एक भाषा से दो या एकाधिक भाषाओं से, इतना निश्चित है कि इसका आधार भाषा ही है और यह भाषिक प्रक्रिया है।

   जहाँ अनुवाद की प्रक्रिया दो भाषाओं के बीच होती है, वहाँ जिस भाषा से अनुवाद किया जाता है, उसे स्रोत भाषा (सो.भा.) या मूल भाषा (मू.भा.) तथा जिस भाषा में अनुवाद किया जाता है, उसे लक्ष्य भाषा (ल.भा.) कहा जाता है।

2. भाषा का भवन शब्द रूपी ईंटों से है और शब्द मूर्त जगत के तथ्यों और अमूर्त संकल्पनाओं को अभिव्यक्त करने वाले प्रतीक भर होते हैं। इस प्रकार भाषा शाब्दिक प्रतीकों की श्रृंखला भर है। वह श्रृंखला हर भाषा में अपनी विशिष्ट संरचना में बँधी होती है। अनुवाद में जब हम एक भाषा के शाब्दिक प्रतीकों को दूसरी भाषा के शाब्दिक प्रतीकों द्वारा पुनःप्रस्तुत या प्रतिस्थापित करते हैं, तो यह प्रतिस्थापन मात्र शाब्दिक स्तर ही नहीं भाषिक संरचना के स्तर पर भी होता है। इसे ही स्रोत भाषा की 'पाठ सामग्री में अंतर्निहित तथ्य' का लक्ष्य भाषा में 'संगठनात्मक रूपांतरण' अथवा 'सर्जनात्मक पुनर्गठन' कहा गया है।

3. पुनर्गठन या पुनःप्रस्तुति की इस प्रक्रिया में भाषा अवश्य बदल जाती है, किंतु अर्थ, आशय या संदेश में कोई अंतर नहीं आना चाहिए। यह हमेशा संभव नहीं होता क्योंकि हर भाषा का अपना सामाजिक-सांस्कृतिक ऐतिहासिक-राजनीतिक परिवेश होता है जो उसके शाब्दिक प्रतीकों और संरचनाओं को विशिष्ट व्यंजना देता है। मात्र भाषांतर से उस विशिष्ट व्यंजना का वहन कठिन होता है। इसीलिए कई विद्वानों ने अनुवाद को असंभव माना है।

यह सही है कि कई प्रसंगों में अनुवाद अर्थ का हूबहू अंतरण नहीं कर पाता, किंतु अनुवाद का काम ही एक भाषा में अभिव्यक्त बात को दूसरी भाषा में प्रस्तुत करना है। अतः अनुवादक को, आशय की पूर्ण समानता संभव न होने पर भी यथासंभव समानता की कोशिश तो करनी ही चाहिए।

4. जैसा कि आप देख चुके हैं अनुवाद में अर्थ का मतलब केवल शब्दार्थ नहीं होता। अनुवादक स्रोत भाषा में कही गई पूरी बात को लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करने की कोशिश करता है। अर्थ की इस समतुल्यता के लिए शैली की समतुल्यता भी बहुत ज़रूरी है। उदाहरण के लिए डिकेंस के किसी उपन्यास के अनपढ़, अनगढ़ देहाती चरित्र की ऊबड़-खाबड़ भाषा का अनुवाद यदि परिनिष्ठित तत्सम शब्दावलीयुक्त हिंदी में कर दिया जाए तो उससे कुछ सीमा तक शब्दार्थ का द्योतक भले ही हो जाए, स्रोत भाषा के मुख्य कथ्य का बोध नहीं होगा जिसमें पूरा परिवेश और चरित्र की विशेषताएँ भी सम्मिलित होती हैं। सरकारी कामकाज की नपी-तुली औपचारिक भाषा का अनुवाद ठीक वैसी ही शैली में हो तभी उसे संपूर्ण कथ्य का अनुवाद कहा जा सकेगा। इसके लिए अनुवादक को स्रोत तथा लक्ष्य भाषा की विविध शैलियों तथा उनसे प्रतिपादित प्रकार्यों की समझ तो होनी ही चाहिए, उसे इस बात की भी समझ होनी चाहिए कि किसी ख़ास शैली के प्रयोग के पीछे लेखक का आशय क्या था। अनुवाद में समतुल्य शैली के प्रयोग के द्वारा उसे सही अर्थ के संप्रेषण की कोशिश करनी चाहिए।

5. अनुवाद सहज और स्वाभाविक होना चाहिए, अर्थात् अनुवाद की भाषा में बनावटीपन या स्रोत भाषा की छाप नहीं होनी चाहिए। उसकी भाषा-शैली यथासंभव ऐसी हो कि वह अनुवाद न होकर मूलतः लक्ष्य भाषा की रचना ही प्रतीत होने लगे।

6. जिस प्रकार भाषा के मौखिक और लिखित दो पक्ष होते हैं, उसी प्रकार अनुवाद के भी। लिखित अनुवाद के विस्तृत क्षेत्र से आप सभी परिचित हैं। मौखिक अनुवाद के अंतर्गत विविध प्रकार का दुभाषिया कर्म आता है। आपसी बातचीत में या कक्षाओं में किसी अन्य भाषा के शब्द, वाक्य या उद्धरण को समझने-समझाने के लिए हम प्रायः मौखिक अनुवाद का सहारा लेते हैं।

17.3 भाषाविज्ञान तथा अनुवाद

भाषिक प्रक्रिया होने के नाते अनुवाद का भाषा ही नहीं भाषाविज्ञान से भी गहरा संबंध है। भाषा के ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य आदि अनेक स्तर होते हैं जो मिलकर उसे एक सुगठित इकाई के रूप में हमारे सामने लाते हैं। इन विविध स्तरों का अध्ययन आप भाषाविज्ञान के अंतर्गत करेंगे। यहाँ इतना आपके सामने स्पष्ट होना चाहिए कि अनुवाद की प्रक्रिया इन सभी स्तरों को समेटती है, और अनुवाद के क्रम में इन सभी स्तरों के प्रति सचेत रहना भी आवश्यक है। इसके अलावा इन विभिन्न स्तरों पर मूल भाषा तथा लक्ष्य भाषा की प्रकृति तथा संरचना में जो अंतर होता है, उसका भी अनुवादक को भली प्रकार ज्ञान होना ज़रूरी है। हर भाषा की अपनी विशिष्ट ध्वनियाँ और ध्वनि व्यवस्था होती है; हर भाषा का अपना शब्द भंडार होता है, हर भाषा की रूप-व्यवस्था अर्थात् पदों के लिंग, वचन, पुरुष, कारक-व्यवस्था, क्रिया के काल, पक्ष, विधि, अन्विति आदि की व्यवस्था भी भिन्न होती है। इसके अलावा कई समान प्रतीत होने वाली वाक्य संरचनाओं के अभिहित अर्थ भी दो भाषाओं में भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। इन विविध स्तरों पर दो भाषाओं की प्रकृति, संरचना, शैली आदि में जो अंतर होते हैं, वे समान प्रतीत होने वाले प्रसंगों में भी अलग-अलग अर्थ भर देते हैं। अनुवाद में भाषातरण के बावजूद अर्थ की रक्षा अपरिहार्य होती है। अतः अनुवादक को स्रोत तथा लक्ष्य भाषा की प्रकृति, संरचना, विविध भाषिक तथा व्याकरणिक स्तरों, विभिन्न शैलियों तथा इन तमाम पक्षों से संबद्ध अर्थ व्यंजनाओं का संपूर्ण ज्ञान होना चाहिए। इसे देखते हुए ही कैटफर्ड, नाइडा, न्यूमार्क आदि भाषावैज्ञानिकों ने अनुवाद के अध्ययन की भाषावैज्ञानिक दृष्टि का विकास किया। हम आगे भाषा के विभिन्न स्तरों की संक्षिप्त चर्चा करते हुए देखेंगे कि अनुवाद के संदर्भ में इन स्तरों पर किन मुख्य-मुख्य बातों का ध्यान रखना ज़रूरी है।

17.3.1 अनुवाद और ध्वनिविज्ञान

ध्वनि विज्ञान के अंतर्गत भाषा की विभिन्न ध्वनियाँ, ध्वनिगुच्छों, स्वनिमों, ध्वनि गुणों, अक्षर, मात्रा, बलाघात, सुरलहर आदि का अध्ययन किया जाता है। ध्वनि भाषा की मूलभूत इकाई होती है और हर भाषा की अपनी विशिष्ट ध्वनि व्यवस्था होती है। जैसे हिंदी की 'त' ध्वनि अंग्रेज़ी में नहीं है तो अंग्रेज़ी के v (व) और w (व) का सूक्ष्म अंतर हिंदी में नहीं है। इस तरह के अनेक उदाहरण आप सहायक ग्रंथों में देख सकते हैं। ध्वनि तथा उच्चारण से ही भाषा की वर्तनी व्यवस्था भी जुड़ी होती है। ध्वनियों के संयोजन से ही शब्द बनते हैं जो पदों के रूप में वाक्यों में प्रयुक्त होते हैं। वाक्य प्रोक्ति का आधार होते हैं और प्रोक्ति ही भाषा का मुख्य प्रकार्य-कथ्य का संप्रेषण-संपन्न करती है।

यहाँ आपके मन में एक प्रश्न उठ सकता है। ध्वनियाँ तो भाषाविशिष्ट होती हैं। जब किसी बात का एक भाषा से दूसरी भाषा में अंतरण कर दिया जाता है तो स्वाभाविक रूप से ही स्रो.भा. (स्रोत भाषा) और उसकी ध्वनियाँ पीछे टूट जाती हैं और अनूदित पाठ में ल.भा. (लक्ष्य भाषा) की ही ध्वनियों का प्रयोग होता है। ऐसी स्थिति में ध्वनि विज्ञान के ज्ञान का अनुवाद में क्या महत्व हो सकता है?

सामान्य अनुवाद के लिए यह बात ठीक हो सकती है, पर कुछ अनुवादों को लेकर ग़ौर से उनका अध्ययन कीजिए। कई स्थानों पर आपको ऐसे शब्द मिलेंगे जिनका अनुवाद संभव नहीं होता और उन्हें स्रो.भा. से ल.भा. में लिप्यंतरित करना पड़ता है। अर्थात् उन शब्दों को ल.भा. की वर्तनी में लिख देना पड़ता है। किसी व्यक्ति (तोलस्तेय, द 'गाल), महादेश (एशिया, अफ्रीका), देश (इटली, मालदीव), शहर (लंदन, बैंकाक), पर्वत (आल्प्स) नदी (ह्वांग हो), समुद्र (कैस्पियन), भाषा (जर्मन, बांग्ला) ग्रंथ/पुस्तक (इलियट, पैराडाइज़ लॉस्ट) व्यापारिक नाम (हेक्स्ट, रोलेक्स) संस्था, संस्थान आदि का नाम – अर्थात्

व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ इसी श्रेणी में आती हैं। ज़ाहिर है, आम तौर पर इनका अनुवाद नहीं किया जा सकता। कई बार स्रो.भा. से कुछ तकनीकी, पारिभाषिक या बहुप्रचलित शब्द ल.भा. में ग्रहण भी कर लिए जाते हैं, जैसे, विटामिन, रडार, ट्यूब आदि। प्रश्न है कि इन श्रेणियों के शब्दों को ल.भा. में कैसे लिखा जाए। सीधी-सी बात है कि स्रो.भा. की उन ध्वनियों को ल.भा. की लिपि में लिख लिया जाए। पर वह इतना सहज नहीं है।

व्यक्तिनाम Charles का अंग्रेज़ी उच्चारण 'चार्ल्स' है और फ्रेंच उच्चारण 'शार्ल'। ऐतिहासिक व्यक्तित्व Charlmagne के नाम का उच्चारण वर्तनी के अनुसार 'चार्लमैग्ने' न होकर 'शार्लमेन' होगा। Rousseau, Rembrand और Taine के उच्चारण क्रमशः 'रोउस्सेआउ', 'रेम्ब्राण्ड्ट' और 'टाइने' न होकर 'रूसो', 'रेम्बॉ' और 'तेन' होंगे। अनुवाद में नामों तथा अन्य आगत शब्दों के प्रतिलेखन में सही उच्चारण सुरक्षित रखने के लिए ज़रूरी है कि अनुवादक को स्रो.भा. की ध्वनि-व्यवस्था एवं उस भाषा में लिपि तथा ध्वनि के संबंध का समुचित ज्ञान रहे। अन्यथा अनुवाद में बड़ी हास्यास्पद भूलें होने की संभावना रहती है। इस ज्ञान को प्राप्त करने में ध्वनिविज्ञान बहुत सहायक होता है।

अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में शब्द के अर्थ का निर्धारण बलाघात से भी होता है। नीचे एक उदाहरण देखिए :

(i)	pre'sent	–	उपहार (संज्ञा)
(ii)	prese'nt	–	उपहार देना, प्रस्तुत करना (क्रिया)

इस प्रकार शब्द के सही अर्थ को जानने के लिए उसमें बलाघात की स्थिति को जानना बहुत ज़रूरी है। बलाघात का अध्ययन भी ध्वनिविज्ञान के अंतर्गत आता है।

17.3.2 अनुवाद और शब्दविज्ञान

किसी भाषा की ध्वनियों के सार्थक समुच्चय शब्द कहलाते हैं। भाषा का लक्ष्य अर्थ का संप्रेषण और अर्थ का वहन शब्द ही करते हैं। अनुवाद को भी मूलतः एक भाषा के शाब्दिक प्रतीकों का दूसरी भाषा के शाब्दिक प्रतीकों द्वारा प्रतिस्थापन माना गया है।

शब्द विज्ञान क्या है? इस विज्ञान के अंतर्गत शब्दों को परिभाषित करके विभिन्न आधारों पर उनका वर्गीकरण किया जाता है। किसी शब्द का इतिहास या ऐतिहासिक स्रोत क्या है, उसका प्रयोग-संदर्भ क्या है, उसका प्रयोग अभिधा में हो रहा है या लक्षणा या व्यंजना में, उसकी व्याकरणिक कोटि क्या है, उसका प्रयोग किस विधा के अतर्गत हो रहा है – ये सब बातें उसके अर्थ को निर्धारित करती हैं। अनुवाद के लिए शब्द के सही और सटीक अर्थ की जानकारी ज़रूरी है और इस जानकारी के लिए शब्द वैज्ञानिक विश्लेषण और वर्गीकरण का ज्ञान अपरिहार्य है। कुछ एक उदाहरणों पर ग़ौर कीजिए :

करम : ऐतिहासिक दृष्टि से इस ध्वनिसमूह के दो स्रोत है जिससे इसके अर्थ भी भिन्न-भिन्न हैं।

	स्रोत	अर्थ
करम	तद्भव (संस्कृत 'कर्म')	भाग्य, काम
	अरबी	कृपा, मेहरबानी

अब वाक्य में इसका प्रयोग देखिए :

– आपका करम है।

इस वाक्य का अर्थ आप क्या निकालेंगे?

1. आपका भाग्य है।
2. आपकी कृपा है।

इससे यह स्पष्ट है कि अनुवाद में केवल शब्दार्थ समझ लेना काफ़ी नहीं। शब्द के अर्थ को पूरी तरह समझने के लिए हर तरह के संदर्भ की जानकारी बहुत आवश्यक है। कई बार अनेक शब्द एक-सा ही अर्थ देते हैं किंतु उनके संदर्भ भिन्न होते हैं। हिंदी क्षेत्र में विभिन्न सामाजिक स्थितियों में 'पति' के लिए भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग होता है– 'स्वामी', 'आदमी', 'मरद', 'भतार', 'खसम' आदि। ज़ाहिर है, अंग्रेज़ी में केवल husband के माध्यम से इन अलग-अलग शब्दों की ध्वनियाँ संप्रेषित नहीं हो सकतीं। इनमें से किसी भी शब्द का किसी खास संदर्भ में प्रयोग कौन-से अतिरिक्त अर्थ देता है। इसे जानने में शब्द विज्ञान के साथ ही अर्थ विज्ञान और समाजभाषाविज्ञान भी सहायक होता है।

पारिभाषिक शब्दों के अनुवाद में भी शब्द विज्ञान की जानकारी से सहायता मिलती है। विशिष्ट शास्त्रों, विज्ञानों, व्यवहार क्षेत्रों आदि की विशिष्ट संकल्पनाओं के लिए पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग होता है जो सामान्यतः आम बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त नहीं होते, जैसे 'संध्वनि' (भाषाविज्ञान), 'दशमलव' (गणित), 'अचिंत्यभेदाभेद' (दर्शन) आदि। कई बार ल.भा. में इनके प्रतिशब्द उपलब्ध होते हैं, पर जहाँ वे उपलब्ध नहीं होते वहाँ अनुवादक को स्वयं उपयुक्त प्रतिशब्द गढ़ने पड़ते हैं। शब्द-निर्माण की प्रक्रिया का अध्ययन भी शब्द विज्ञान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

किसी भाषा के शब्द भंडार में बोलियों के शब्द भी शामिल रहते हैं। अनुवादक को उनकी जानकारी तो रहनी ही चाहिए, इस बात का विवेक भी होना चाहिए कि स्रो.भा. की ऐसी शब्दावली का ल.भा. में किस प्रकार प्रतिस्थापन किया जाए।

17.3.3 अनुवाद और रूपविज्ञान

रूपविज्ञान के अंतर्गत किसी भाषा की रूप-रचना का अध्ययन तथा विश्लेषण किया जाता है। रूप-रचना संबंधी नियमों का आकलन तथा निर्धारण भी इसी के अंतर्गत होता है। रूप-रचना के नियम चूँकि तमाम व्याकरणिक कोटियों पर लागू होते हैं, इसलिए इनका क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। संज्ञा तथा सर्वनाम के कारकीय रूपों की रचना; संज्ञा, सर्वनाम तथा (कुछ भाषाओं में) विश्लेषण और क्रिया के लिंग, वचन, पुरुष आदि का बोधन; कृदंतों की रचना; उपसर्ग, प्रत्यय आदि के योग से शब्दों की व्याकरणिक कोटि में परिवर्तन, समास-रचना आदि सभी क्रियाओं तथा प्रक्रियाओं का अध्ययन रूपविज्ञान के क्षेत्र में आता है। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि कथ्य का संप्रेषण भाषा के रूप विन्यास पर निर्भर होता है। इसलिए अनुवादक को स्रो.भा. तथा ल.भा. दोनों की ही रूप-रचना से भलीभाँति परिचित होना चाहिए।

अंग्रेज़ी में hair (बाल) शब्द हमेशा एकवचन में आता है। हिंदी में इसका अनुवाद करते समय बहुवचन का प्रयोग करना चाहिए। निम्नलिखित गलत अनुवाद देखिए :

Her hair is beautiful – उसका बाल बहुत अच्छा है।

अंग्रेज़ी में /ed/ प्रत्यय से कृदंत रूप desired की सिद्धि होती है। लेकिन यह क्रिया और विशेषण के रूप में प्रयोग में भिन्न हो जाता है।

He desired to go उसने जाना चाहा
The desired result अपेक्षित परिणाम

इस तरह रूपों की रचना और अर्थ की अच्छी जानकारी अनुवाद के लिए आवश्यक है।

17.3.4 अनुवाद और वाक्यविज्ञान

वाक्य अर्थ संप्रेषण की इकाई है जिसकी रचना रूपबद्ध शब्दों के संयोजन से होती है। वाक्य विज्ञान के अंतर्गत सामान्य रूप से भी और भाषा विशेष के संदर्भ में भी वाक्य-रचना और इसके विभिन्न पक्षों का अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है। वाक्यविज्ञान की जानकारी भाषा के सही स्वरूप को समझने के लिए बहुत ज़रूरी है क्योंकि भिन्न-भिन्न अर्थों के संप्रेषण के लिए भाषा में भिन्न-भिन्न प्रकार की वाक्य-रचनाओं का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण को लिए देखें :

(क) राम ने फूलदान तोड़ दिया।
(ख) राम से फूलदान टूट गया।

इन दोनों वाक्यों से मिलने वाली सामान्य सूचना समान है – 'फूलदान' (कर्म) 'टूट गया' (क्रिया) और इस क्रिया को 'राम' (कर्ता) ने किया है। किंतु दोनों वाक्यों की संरचना की भिन्नता से इनके अर्थों में अंतर आ गया है। वाक्य (क) में क्रिया कर्ता की स्वेच्छा से संचालित है – अर्थात् 'राम' ने अपी इच्छा से, जानते-बूझते फूलदान तोड़ा है। वाक्य (ख) में यह क्रिया स्वेच्छाचालित न होकर किसी चूक का परिणाम है। अनुवादक में इस अंतर को समझकर ल.भा. में सही ढंग से संप्रेषित करने की क्षमता होनी चाहिए।

इस संक्षिप्त विवेचन में आपको इस संबंध में पूरी जानकारी देना संभव नहीं है, अतः केवल कुछ मुख्य-मुख्य बातों पर ही आपका ध्यान दिलाया जा रहा है।

वाक्यों का अपना विशिष्ट आधारभूत पदक्रम होता है।

यह भिन्न भी हो सकता है, जैसे :

हिंदी	राम किताब खरीद रहा है। (कर्ता - कर्म - क्रिया)
अंग्रेज़ी	Ram is buying a book. (कर्ता - क्रिया - कर्म)

आधारभूत पदक्रम के अतिरिक्त भी वाक्य-संरचनाओं में कई स्तरों पर पदक्रम अलग-अलग हो सकता है। उदाहरण के लिए क्रिया-विशेषण हिंदी में क्रिया के पहले आता है और अंग्रेज़ी में क्रिया के बाद। जैसे :

हिंदी : राम दस बजे के बाद आएगा।
क्रिया विशेषण
अंग्रेज़ी : Ram wil come after ten O'clock.
क्रिया क्रिया विशेषण

इस तरह के अन्य भी अनेक उदाहरण आपको विभिन्न भाषाओं में मिल जाएँगे।

वाक्य में निकटतम पदों की पहचान : कई बार किसी भाषा में वाक्य के पदों का परस्पर संबंध स्पष्ट नहीं होता। कुछ स्थितियों में ऐसे वाक्यों के एक से अधिक अर्थ निकलते हैं। उदाहरण को लिए अंग्रेज़ों के एक प्रसिद्ध चुटकुले का एक वाक्य है जिसमें ख़रीदार महिला सेल्सगर्ल से कहती है :

I want to try out that dress in the show window.

इस वाक्य से सीधे-सीधे दो अर्थ निकलते हैं :

(अ) मैं यह पोशाक 'शो विंडों' में पहनकर देखना चाहती हूँ।
(आ) मैं वह 'शो विंडो' वाली पोशाक पहनकर देखना चाहती हूँ।

इस द्वयर्थकता को ही चुटकुले का आधार बनाया गया है। पर आप ग़ौर कीजिए कि इस द्वयर्थकता की वजह क्या है?

ऊपर दिए गए वाक्य (अ) में in the show-window क्रिया विशेषण होने के नाते क्रिया के निकट है और वाक्य (आ) में यह पद विशेषण होने क नाते संज्ञापद the dress के निकट है।

इस प्रकार आप देख सकते हैं कि किसी वाक्य के सही आशय को समझने के लिए उसके विभिन्न घटकों का विश्लेषण आवश्यक है और यह देखना भी ज़रूरी है कि अर्थ की दृष्टि से कौन-से घटक निकट हैं।

समान प्रतीत होने वाली व्याकरणिक संरचनाओं के वाक्य : ऐसा कभी-कभी हो सकता है कि एक भाषा में संदर्भ विशेष में ऐसी व्याकरणिक संरचना का प्रयोग होता हो जो दूसरी भाषा में नहीं मिलती। जैसे, ये हिंदी वाक्य देखिए :

मैं कहीं नहीं जाता – जाने का – जानेवाला !

अंग्रेज़ी में इसकी प्रतिसंरचना नहीं मिलेगी। ऐसी स्थिति में इसके आशय को अंग्रेज़ी में किसी और संरचना द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। इसमें विशेष कठिनाई नहीं होती। कठिनाई वहाँ होती है जहाँ दोनों भाषाओं में वाक्यों की व्याकरणिक संरचना एक समान प्रतीत होती हो किंतु उन संरचनाओं से संबद्ध वाक्यार्थ भिन्न हों। इसका एक बहुत ही सटीक उदाहरण आपको अंग्रेज़ी की passive वाक्य संरचना के माध्यम से मिल सकता है। अंग्रेज़ी 'पैसिव' तथा हिंदी कर्मवाच्य संरचनाओं में समय का प्रमुख बिंदु है व्याकरणिक उद्देश्य के रूप में कर्म कारक का आना। किंतु फिर भी दोनों संनचनाएँ एक दूसरे के बदले सहज रूप से प्रयुक्त नहीं हो सकतीं। अंग्रेज़ी में जहाँ अभिकर्तायुक्त 'पैसिव' संरचना अनेक संदर्भों में सहज लगती हैं, हिंदी में वैसी कर्मवाच्य संरचनाएँ असहज और बनावटी लगती हैं। कुछ उदाहरण देखें :

अंग्रेज़ी : (क) This novel was written by Rushdie.
(ख) The safe was broken by the thieves.

इन वाक्यों के दो-दो अनुवाद देखिए, जिनमें पहला कर्मवाच्य में है और दूसरा कर्तृवाच्य में। ग़ौर कीजिए कि हिंदी में कौन-सी संरचना सहज लगती है।

हिंदी : (क) (i) यह उपन्यास रश्दी द्वारा लिखा गया था।
(ii) यह उपन्यास रश्दी ने लिखा था।
(ख) (i) यह तिज़ोरी चोरों द्वारा तोड़ी गई थी।
(ii) यह तिजोरी चोरों ने तोड़ी थी।

एक और उदाहरण देखिए जो इस अनुभाग के आरंभ में था :
हिंदी : राम से फूलदान टूट गया।
अंग्रेज़ी : The flower vase was broken by Ram.
यहाँ हिंदी कर्मवाच्य संरचना में कर्ता के स्वेच्छापूर्वक, जानते-बूझते क्रिया संपन्न करने का भाव नहीं है, जबकि अंग्रेज़ी 'पैसिव' संरचना में कहीं स्वेच्छा का निषेध नहीं है। इस आशय की समाप्ति के लिए अनुवादक को किसी और प्रविधिका, या inadvertantly (अनजाने/अनचाहे) जैसे किसी क्रियाविशेषण का प्रयोग करना पड़ेगा। वाक्य संरचनाओं के इस तरह के सूक्ष्म अंतर को समझने के लिए वाक्य-विन्यास का गहन ज्ञान आवश्यक है।

व्याकरणिक संबंध : किसी भी भाषा के वाक्य में पदों के व्याकरणिक संबंध तय रहते हैं। संभव है कि ल.भा. में अनूदित पदों के परस्पर संबंध वही न रहें जो स्रो.भा. में थे। एक उदाहरण देखिए :

अंग्रेज़ी: He is a very good manager of materials.
विशेषण कर्म संज्ञापद

हिंदी : (i)? वह माल का | बहुत अच्छा | व्यवस्थापक है।
विशेषण
कर्म संज्ञापद

(ii) वह माल की व्यवस्था | बहुत अच्छी तरह | करता है।
कर्म संज्ञापद क्रिया विशेषण

आप खुद देखिए, पहले वाक्य में पदों के अंग्रेज़ी वाले व्याकरणिक संबंधों को बरकरार रखा गया है, किंतु हिंदी की दृष्टि से वह वाक्य असहज है। हिंदी की दृष्टि से दूसरा वाक्य अधिक सहज है किंतु इसमें :

(i) विशेषण पद को क्रिया विशेषणपद में बदल दिया गया है।

(ii) अस्तित्ववाची 'है' की जगह सकर्मक क्रिया 'करता है' का प्रयोग हुआ है।

(iii) इस कारण कार्य प्रतिपादन का भाव क्रिया में आ गया है। परिणामस्वरूप कर्तृत्व बोधक शब्द 'व्यवस्थापक' के स्थान पर केवल 'व्यवस्था' शब्द का प्रयोग हो रहा है।

17.3.5 अनुवाद और अर्थविज्ञान

भाषा का कार्य अर्थ का संप्रेषण है और अर्थ विज्ञान में भाषा के अर्थ पक्ष का ही अध्ययन किया जाता है। आप जानते हैं कि शब्द का सीधा अर्थ या कोशार्थ अभिधा शब्द शक्ति के अतर्गत आता है, किंतु लक्षणा तथा व्यंजना के अंतर्गत शब्द कोशार्थ से अतिरिक्त अर्थ भी देते हैं। मान लीजिए हम किसी बच्चे के प्रश्न के उत्तर में मैदान में चरते हुए पशु का परिचय देते हैं– 'वह गाय है'– तो यहाँ हम 'गाय' का कोशीय अर्थ ले रहे हैं। किंतु जब हम किसी लड़की की सिधाई के संदर्भ में कहते हैं "वह तो गाय है" तो निश्चय ही 'गाय' शब्द पशु विशेष का द्योतक न होकर सिधाई और दब्बूपन की प्रवृत्ति का परिचायक है और इस संदर्भ में यह संज्ञा न होकर विशेषण की कोटि में आ रहा है।

इसी प्राकर शब्दों के अर्थ संदर्भ, प्रयोग, काल, स्रोत, लिंग, सहप्रयोग, बलाघात, अनुतान आदि से भी निर्धारित होते हैं। इनमें से कुछ पर हम आगे विचार करेंगे। ध्यान रहे कि अर्थ विज्ञान केवल शब्द ही नहीं, पद, पदबंध, उपवाक्य, वाक्य, प्रोक्ति, मुहावरों, कहावतों आदि के स्तर पर भी अर्थ का अध्ययन-विश्लेषण करता है। इसके अंतर्गत अर्थ का केवल एककालिक ही अध्ययन नहीं होता बल्कि ऐतिहासिक अर्थ विज्ञान के माध्यम से विभिन्न युगों में शब्दों या अभिव्यक्तियों के अर्थ तथा उनमें आए बदलाव का भी अध्ययन किया जाता है।

संदर्भ : शब्द का अर्थ उसके संदर्भ से कैसे निर्धारित होता है, इसका एक उदाहरण आप इस अनुभाग के आरंभ में ही देख चुके हैं। व्यंग्यार्थ तो केवल संदर्भ से ही स्पष्ट होता है। इसके अतिरिक्त अनेकार्थी शब्दों के अर्थ भी केवल संदर्भ से स्पष्ट होते हैं। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी के fire शब्द के अर्थ देखिए :

Fire — (संज्ञा) भाग
Fire — (क्रिया-1) गोली चलाना
Fire — (क्रिया-2) नौकरी से निकालना

शब्दों/प्रयोगों के अर्थ-निर्धारण में सांस्कृतिक संदर्भ बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 'जाने' के स्थान पर 'आने' की बात का ज़िक्र पहले ही हो चुका है। हिंदी में 'दूकान बंद करना' या 'दिया बुझाना' अमंगलसूचक प्रयोग माने जाते हैं। इसलिए 'दूकान बढ़ाना' या 'दिया बढ़ाना' कहा जाता है।

स्रोत : किसी शब्द के अर्थ को समझने के लिए उसके स्रोत का ज्ञान बहुत ज़रूरी है। उदाहरण के लिए अंगेज़ी शब्द Check को लें। इसका एक अर्थ है 'रोक-थाम' या 'नियंत्रण'। किंतु अमेरिका में इसी शब्द का प्रयोग बैंक के 'चेक' के लिए भी किया जाता है जबकि ब्रिटिश अंग्रेज़ी में इसके लिए प्रयुक्त शब्द की वर्तनी cheque है। यदि आपके सामने check शब्द हो, तो आपको देखना होगा कि इसका स्रोत क्या है। यदि ब्रिटिश स्रोत से आया शब्द है तो इसका अर्थ 'नियंत्रण' ही हो सकता है, बैंक का 'चेक' नहीं।

सहप्रयोग : सहप्रयोग से भी शब्द का अर्थ निर्धारित होता है। हिंदी में 'भोजन' के साथ 'करना' क्रिया का प्रयोग होता है, 'खाना' का नहीं। किंतु 'करना' का अर्थ यहाँ कोई काम करना नहीं, 'खाना' ही है। अतः इसका अंग्रेज़ी अनुवाद भी doing a meal न होकर having a meal ही होगा।

मुहावरे या मुहावरेदार प्रयोग : ये भी सहप्रयोग का ही एक रूप हैं जहाँ कथन के आशय को मात्र शब्दार्थ के आधार पर नहीं समझा जा सकता। हिंदी के मुहावरे 'नौ-दो-ग्यारह होना' का अंग्रेज़ी अनुवाद इसके अर्थ 'भाग जाना' के अनुसार होगा न कि शब्दार्थ के आधार पर। इसी प्रकार कई समस्त पद भी अपने अंतर्गत आने वाले शब्दों के योग से भिन्न अर्थ देते हैं। 'गजानन' का शब्दार्थ 'हाथी के मुखवाला' होता है, पर इसका प्रयोग मात्र 'गणेश जी' के लिए होता है, और अनुवाद में इसका ध्यान रखना ज़रूरी है।

17.3.6 अनुवाद और शैलीविज्ञान

शैली का संबंध मूलतः भाषा से है, अतः भाषा का हर स्तर इसके निर्धारण में सहायक हो सकता है। संदर्भ के अनुसार या विशेष संदर्भों में विशेष ध्वनियों, शब्दों, रूपों या वाक्य विन्यास का प्रयोग–यहाँ तक कि लिपि की विचित्रताएँ भी कथ्य की प्रस्तुति की शैली को रूप दे सकती है।

किसी भी रचना की शैली रचनाकार के व्यक्तित्व, विचारधारा और प्रकृति का परिचय तो देती ही है, कथ्य को स्पष्ट करने में भी सहायक होती है। उदाहरण को लिए फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यास 'मैला आँचल' को लीजिए। 'मैला आँचल' में आंचलिक भाषा के प्रयोग, बोलचाल की तर्ज़, टूटे-बिखरे वाक्य, विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ–सब मिलकर विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करते हैं जो लेखक के अभीष्ट कथ्य का हिस्सा हैं। यदि इन सबका अनुवाद सीधे-सपाट वर्णनात्मक गद्य में कर दिया जाए तो उपन्यास में वर्णित घटनाओं के सामान्य सूत्र भले ही मिल जाएँ किंतु उसका संपूर्ण, संश्लिष्ट प्रभाव नहीं आ पाएगा। प्रेमचंद की रचनाओं का अनुवाद यदि लच्छेदार, अलंकृत गद्य में किया जाता है तो न केवल लेखक की शैली की सादगी खंडित होगी बल्कि इस शैली से अभिहित कथ्य भी खंडित हो जाएगा।

शैली विभेद केवल साहित्य में ही नहीं, अन्य प्रसंगों में भी होता है। सामान्य बोलचाल, सरकारी या दफ्तरी कामकाज़, व्यापार-व्यवसाय से संबद्ध प्रसंगों, ज्ञान-विज्ञान से जुड़े प्रसंगों आदि में भाषा में प्रयुक्ति भेद के साथ ही शैली भेद भी हो जाता है।

शैली की विशिष्टता, इसके उपकरणों (अग्रप्रस्तुति, विचलन, संसक्ति आदि), विशेष संदर्भों में विभिन शैलियों के महत्व तथा उनसे संप्रेषित अर्थों का अध्ययन विश्लेषण शैली विज्ञान

के अंतर्गत होता है। शैली का तमाम व्यापार भाषा से संबद्ध है और अनुवाद भी भाषिक प्रक्रिया ही है। अनुवाद का क्षेत्र बहुत विस्तृत है और जो कुछ भी अनूदित होता है उसकी अपनी शैली होती है। इसलिए अनुवादक को शैली विज्ञान के नियमों तथा प्रविधियों की समुचित जानकारी होनी चाहिए ताकि वह स्रो.भा. की सामग्री के अर्थ को सही-सही समझ सके और उपयुक्त युक्तियों के माध्यम से उस अर्थ को ल.भा. में यथासंभव पूर्ण रूप से संप्रेषित कर सके।

17.4 अनुवाद : प्रकृति, क्षेत्र, प्रकार तथा उपयोगिता

अनुवाद के तात्पर्य तथा भाषिक पक्ष के अध्ययन के बाद हम इसे और गहराई से समझने के लिए इसकी प्रकृति, इसके क्षेत्र, इसके विभिन्न प्रकारों और फिर इसकी उपयोगिता तथा महत्व का आकलन करेंगे।

17.4.1 अनुवाद की प्रकृति

एक भाषा (या समभाषिक अनुवाद की स्थिति में एक भाषा-भेद) के कथ्य को दूसरी भाषा (या भाषा-भेद) में प्रतिस्थापित करने को ही अनुवाद कहते हैं। प्रश्न यह है कि प्रतिस्थापन की इस प्रक्रिया की प्रकृति क्या है। क्या एक भाषा की भाषिक इकाइयों को व्यवस्थाबद्ध या नियमबद्ध यांत्रिक रीति से दूसरी भाषा की भाषिक इकाइयों में बदल भर दिया जाता है? क्या इस प्रक्रिया में अनुवादक के लिए दोनों भाषाओं की संरचनाओं, शब्द भंडार तथा आर्थी संदर्भों का समुचित ज्ञान ही पर्याप्त होता है? कथ्य चूँकि इसमें पहले से ही उपलब्ध रहता है, इसलिए क्या अनुवादक से सर्जनात्मकता की अपेक्षा नहीं की जाती? अनुवाद को यदि इस प्रकार मात्र वैज्ञानिक नियमों में बद्ध माना जाए तो स्पष्ट ही यह विज्ञान की श्रेणी में आएगा।

हमारे देखने में यह प्रायः आता है कि स्रोत तथा लक्ष्य भाषा के ज्ञान के बावजूद कई बार अनुवाद संतोषजनक नहीं होते। किसी स्थान पर सही शब्द या संरचनाओं के प्रयोग की क्षमता निरंतर अभ्यास से ही आती है। नियमबद्ध तथा अभ्याससिद्ध होने के कारण अनुवाद को शिल्प या कौशल भी माना जा सकता है जिसे सचेत भाव से सीखना होता है। कौशल अर्जित किया जाता है और अभ्यास के द्वारा उसमें परिमार्जन आता जाता है। अनुवाद के साथ भी यही होता है।

अब आप सर्जनात्मक साहित्य के कुछ अनुवाद देखें। अनुवाद केवल एक भाषा (या भाषा-भेद) की इकाइयों का दूसरी भाषा (या भाषा भेद) की इकाइयों से प्रतिस्थापन भर नहीं है। इसमें स्रोत भाषा द्वारा अभिव्यक्त सूचनाओं तथा भावों को लक्ष्य भाषा में संप्रेषित किया जाता है। वैज्ञानिक तथ्यों या सामान्य गद्यात्मक सूचनाओं को भाषिक इकाइयों के कुशल प्रतिस्थापन द्वारा आसानी से संप्रेषित किया जा सकता है किंतु भावप्रधान रचनाओं में अर्थ के अनेक स्तर और कथन की अनेक व्यंजनाएँ होती हैं जिन्हें सीधे-सादे भाषिक प्रतिस्थापन के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता। अनुवादक को 'परकाय प्रवेश' करना पड़ता है। अनुवाद्य कृति के रचनाकार के मानस में गहरे पैठकर उसके भावों तथा उसकी अभिव्यक्ति की अर्थच्छायाओं को समझना पड़ता है और फिर उन भावों को यथासंभव समग्र रूप से ल.भा. में अभिव्यक्त करना पड़ता है। कलाकृति की इस समझ और उसके कलात्मक संप्रेषण–दोनों के ही लिए स्वयं उसमें सर्जनात्मक प्रज्ञा का होना आवश्यक है। भाव के समुचित संप्रेषण के लिए उसे मूल रचना की ही भाँति अभिव्यक्ति की विशिष्ट भंगिमाओं को अपनाना पड़ता है। यह सब मात्र वैज्ञानिक जानकारी या कौशल से संभव नहीं है, बल्कि कला के क्षेत्र में आता है। इसे समझाने के लिए प्रायः उमर ख़य्याम की रुबाइयों के फ़िट्ज़रालड द्वारा किए गए अंग्रेज़ी अनुवाद (और मैथिलीशरण गुप्त, हरिवंशराय बच्चन,

केशव प्रसाद पाठक तथा सुमित्रानंदन पंत द्वारा किए गए हिंदी अनुवादों) का उदाहरण दिया जाता है। आपको हिंदी के अनुवाद संबंधी संदर्भ ग्रंथों में ये उदाहरण मिल जाएँगे। इस प्रकार के अनुवादों में जिस संवेदनशीलता तथा कलात्मक अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है, वह अनुवाद को कला के क्षेत्र में ले आती है, भले ही वह पूर्णतः सर्जनात्मक न होकर अनुकरणात्मक कला हो।

अब आपके सामने यह समस्या आ सकती है कि अनुवाद को आप विज्ञान मानें या कौशल या कला। कुछ गौर करें तो देखेंगे कि अनुवाद की प्रकृति संबंधी इन मतों में कोई मौलिक विरोध नहीं है। आगे जब आप अनुवाद के क्षेत्र और प्रकारों का अध्ययन करेंगे तो आपके सामने और स्पष्ट हो जाएगा कि अनुवाद्य सामग्री अनेक प्रकार की होती है और उसी के अनुसार अनुवाद भी भिन्न-भिन्न प्रकार का हो सकता है।

वैज्ञानिक, तकनीकी तथा सामान्य सूचनापरक साहित्य का अनुवाद अभिधापरक तथ्यात्मक भाषा में सीधे-सीधे भाषिक प्रतिस्थापन के तौर पर होता है। इसमें दोनों भाषाओं की संरचना और शब्दावली का सही-सही ज्ञान काफ़ी है क्योंकि इनमें शब्दों तथा संरचनाओं के अर्थ तथा प्रयोग संदर्भ निश्चित होते हैं। इस तरह के अनुवाद को प्रकृति के अनुसार मात्र विज्ञान माना जा सकता है।

भावप्रधान या सर्जनात्मक साहित्य का अनुवाद कौशल से भी आगे जाकर विशिष्ट संवेदनशीलता और कुछ हद तक सर्जनात्मक प्रतिभा की भी अपेक्षा करता है। इस बात का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। स्रोत भाषा की सामग्री की मूल संवेदना, उसकी व्यंजनाओं तथा उसके सांस्कृतिक संदर्भों का समुचित संप्रेषण अनुवाद को कला की कोटि में ला रखता है।

17.4.2 अनुवाद का क्षेत्र

साहित्यिक कृतियों, ज्ञान, विज्ञान, व्यवसाय, व्यवहार आदि से संबद्ध सामग्री को एक भाषा (या भाषा भेद) से दूसरी भाषा (या भाषा भेद) तक पहुँचाने का नाम अनुवाद है। जिस प्रकार साहित्य, ज्ञान, विज्ञान आदि का क्षेत्र असीम है, उसी प्रकार, अनुवाद का क्षेत्र भी सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। अधिकतर मानव समुदाय बहुभाषिक होते जा रहे हैं। नई जीवन पद्धति के साथ दैनिक जीवन व्यवहार में भी अनेक नए क्षेत्र खुले हैं और बहुभाषिक मानव समूहों में उन क्षेत्रों से संबद्ध सामग्री भी एक से अधिक भाषाओं में पहुँचाना आवश्यक हो जाता है। इन क्षेत्रों में आप विज्ञापन तथा फ़िल्म की डबिंग, titling जैसी विधाओं को भी ले सकते हैं। विभिन्न देशों के बीच सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा आर्थिक संबंधों के विकास तथा बढ़ते हुए पर्यटन उद्योग के कारण दुभाषियों की आवश्यकता भी बहुत बढ़ गई है जो मौखिक स्तर पर अनुवाद का ही कार्य करते हैं। इन तमाम स्थितियों को देखते हुए आप अनुवाद के क्षेत्र की विशालता का सहज ही अनुमान कर सकते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख क्षेत्र इस प्रकार हैं।

सर्जनात्मक साहित्य : एक भाषा की साहित्यिक कृतियों–महाकाव्य, कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक आदि का अन्य भाषाओं में बहुत बड़े पैमाने पर अनुवाद होता रहा है और किसी समय समस्त अनुवाद कार्य में साहित्यिक अनुवाद का भाग ही सबसे अधिक रहा है। इसके माध्यम से किसी देशी या विदेशी भाषा की प्राचीन या अर्वाचीन श्रेष्ठ तथा कालजयी कृतियों का परिचय ल.भा. के पाठकों को मिल जाता है।

धार्मिक-पौराणिक साहित्य : इस प्रकार का साहित्य किसी देश या समुदाय के जीवन तथा मानसिकता का अनिवार्य हिस्सा होता है। ऐसे साहित्य का अनुवाद उसी देश की प्राचीन भाषा से आधुनिक भाषा में भी हो सकता है, जैसे भारत में वेद, पुराण, उपनिषद्, गीता

आदि का संस्कृत से और जैन तथा बौद्ध धार्मिक साहित्य का प्राकृत, अपभ्रंश तथा पालि से आधुनिक भारतीय भाषाओं में हुआ है। ऐसा साहित्य एक देश की भाषा से दूसरे देश की भाषा में भी अनूदित होता है, जैसा हम बाइबिल, कुरान, तथा गीता आदि के विभिन्न विदेशी भाषाओं में अनुवाद के प्रसंग में देखते हैं।

दार्शनिक साहित्य : विभिन्न देशों के दार्शनिकों के विचारों, चिंतन तथा सिद्धांतों के परिचय के लिए दार्शनिक साहित्य का अनुवाद बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। पश्चिम में प्लेटो से लेकर आज तक का दार्शनिक साहित्य सभी प्रमुख भाषाओं में अनूदित हो चुका है। भारतीय दर्शन के प्रमुख ग्रंथों का भी भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनुवाद उपलब्ध है।

सामज विज्ञान संबंधी साहित्य : इसके अंतर्गत समाज विज्ञान, राजनीति विज्ञान, इतिहास, भूगोल राजनीति, अर्थशास्त्र इत्यादि से संबद्ध साहित्य आ जाता है। इन्हें हम कुल मिलाकर वाङ्मय कहेंगे।

शोध सामग्री : विभिन्न क्षेत्रों में चल रहे शोध कार्य की जानकारी तथा उससे प्राप्त परिणामों की जानकारी का प्रसार अनुवाद के माध्यन से होता है।

पत्रकारिता : समाचार एजेंसियों द्वारा किसी अन्य भाषा में उपलब्ध कराई गई सामग्री को अपनी भाषा में प्रस्तुत करने के लिए पत्रकार अनुवाद का सहारा लेते हैं। दुर्भाग्यवश हिंदी भाषा के समाचार-पत्रों को तो लगभग पूरी तरह अनुवाद पर निर्भर रहना पड़ता है। समाचारों के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाएँ अन्य भाषाओं के महत्वपूर्ण लेखों, 'फ़ीचर्स' तथा अन्य सामग्री का अनुवाद भी प्रस्तुत किया करती हैं।

कार्यालयी कामकाज तथा प्रशासन संबंधी सामग्री : बहुभाषी समाजों में राजकार्य तथा प्रशासन में एक से अधिक भाषाओं का उपयोग होता है। भारतीय संसद, विधान सभाओं तथा विधान परिषदों में भी प्रायः एक से अधिक भाषाएँ प्रयुक्त होती हैं। ऐसे में सदस्यों के भाषण, प्रस्ताव, विचार-विमर्श आदि अनुवाद के माध्यम से ही पूरे सदन तक पहुँचते हैं। प्रशासकीय क्षेत्रों में भी नियमावली, सूचनाएँ, पत्राचार, परिपत्र, ज्ञापन, अदालती कार्यवाही, फ़ैसले आदि प्रायः पहले एक भाषा में लिखे जाते हैं और अन्य भाषाओं में उनका अनुवाद भी उपलब्ध कराया जाता है।

व्यापार-व्यवसाय संबंधी समझौते तथा पत्राचार : ऐसे समझौते तथा संबंध जब दो भिन्न भाषाएँ बोलने वाले समूहों या प्रतिष्ठानों के बीच होते हैं तब उनकी लिखा-पढ़ी प्रायः द्वैभाषिक होती है और उसमें अनुवाद का ही सहारा लिया जाता है।

इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यम : आज इस क्षेत्र में अनुवाद का महत्व तेज़ी से बढ़ता जा रहा है। संचार क्षेत्र के विस्तार के साथ एक से दूसरी भाषा में फिल्मों तथा टेलीविज़न सीरियलों की 'डबिंग', या मूल साउंड ट्रैक के साथ दूसरी भाषा में 'सब टाइटिल' देने का प्रचलन बहुत बढ़ गया है। जहाँ एक फ़िल्म के दो या अधिक भाषाओं के संस्करण बनते हैं, वहाँ एक भाषा के संवाद दूसरी भाषा में अनूदित होते ही हैं। टेलीविज़न तथा रेडियो पत्रकारिता भी अनुवाद का बड़े पैमाने पर उपयोग करती है।

17.4.3 अनुवाद के प्रकार

अनुवाद के क्षेत्र पर हुई चर्चा के आधार पर आप अनुवाद के विभिन्न प्रकारों का भी कुछ अनुमान लगा सकते हैं। अनुवाद्य सामग्री की विषय-वस्तु तथा प्रकृति और अनुवाद के उद्देश्य तथा प्रणाली के आधार पर ही यह निश्चित होता है कि अनुवाद किस प्रकार का है।

(क) **मानस अनुवाद** : यह परंपरा से चला आता अनुवाद प्रकार है जिसमें कोई मानव स्रो.भा. की सामग्री को पढ़ या सुनकर उसके अर्थ का विश्लेषण करके, समुचित पर्यायों तथा प्रस्तुति की शैली का चयन करके ल.भा. में उसे प्रस्तुत करता है। यह कार्य एक व्यक्ति अकेले भी कर सकता है और कई व्यक्तियों का समूह भी इसे कर सकता है। इस प्रकार के अनुवादक मंडल का गठन प्रायः वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों के अनुवाद के लिए होता है। ऐसे अनुवादक मंडल कुछ तो विषय के ज्ञाता होते हैं और कुछ भाषा में निष्णात व्यक्ति।

(ख) **मशीन अनुवाद** : यह अनुवाद का अपेक्षाकृत नया प्रकार है जिसमें अनुवाद का काम कंप्यूटर करता है जिसे इस कार्य के लिए विशेष रूप से प्रोग्राम किया जाता है। अवश्य ही इस प्रकार के अनुवाद की अपनी सीमाएँ होती हैं।

अनूदित पाठ के आकार की दृष्टि से अनुवाद का वर्गीकरण भी किया जाता है। इस वर्गीकरण के अनुसार अनुवाद दो प्रकार का हो सकता है।

भाषाकेंद्रित अनुवाद : अनुवाद दो भाषाओं के बीच का संपर्क सूत्र है। आप अनुभाग 17.1 में देख चुके हैं। कि भाषाविज्ञान तथा अनुवाद का संबंध कितना गहरा है और अनुवाद की क्रिया किस प्रकार भाषा के हर स्तर से सबंधित है। भाषा की संरचना, शैली और पाठ की प्रकृति के अनुसार अनुवाद कई प्रकार का हो सकता है।

आइए, हम अनुवाद के कुछ प्रमुख प्रकारों पर विचार करें।

(क) **शब्दानुवाद (Literal)** : जहाँ स्रो.भा. के हर शब्द या अभिव्यक्ति का ल.भा. में अनुवाद किया जाता है। इसे मूलनिष्ठ अनुवाद भी कहा जा सकता है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी साहित्य का इस प्रकार अनुवाद किया जा सकता है क्योंकि वह मुख्यतः अभिधापरक होता है और इसलिए स्रो.भा. की शब्दावली तथा अभिव्यक्तियों का ल.भा. की शब्दावली, अभिव्यक्तियों तथा संरचना द्वारा प्रतिस्थापन कर देना पर्याप्त होता है।

(ख) **भावानुवाद** : इस प्रकार के अनुवाद में मूल भाषा की अभिव्यक्ति के अनुसरण पर बल नहीं होता, बल्कि उसके निहित आशय को स्पष्ट करने की चेष्टा की जाती है। मूल सामग्री के ढाँचे से स्वतंत्र होने के कारण यह अनुवाद ल.भा. की दृष्टि से अधिक सहज तथा स्वाभाविक भी होता है, किंतु इसमें सावधानी न रखी जाए तो मूल कृति की विशिष्टता के लुप्त हो जाने का भय रहता है।

(ग) **रूपांतरण** : इस प्रकार का अनुवाद अधिकतर कथा-साहित्य या नाटक के क्षेत्र में देखने में आता है। इसमें अनुवादक मूल कृति के परिवेश, चरित्रों आदि को बदलकर दूसरे देश-काल में ढाल लेता है। उदाहरण के लिए आप शेक्सपीयर के नाटक The Merchant of Venice का भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा किया गया अनुवाद 'दुर्लभ बंधु' देख सकते हैं, जिसमें एंटोनियो, बसानियो, शायलॉक आदि को क्रमशः अनंत, वसंत और शैलाक्ष नाम दे दिए गए हैं और नाटक की पृष्ठभूमि इटली के वेनिस शहर के स्थान पर भारत का काशी नगर है।

(घ) **छायानुवाद** : यह भी रूपांतरण का ही एक प्रकार है। रचनाकार, किसी अन्य भाषा की कृति से प्रभावित होकर उसका अनुवाद नहीं करते। बल्कि उसी कृति के आधार पर उसी कथ्य को संप्रेषित करने के लिए स्वतंत्र कृति रच देते हैं। ऐसी कृतियों में प्रायः बिंब विधान, प्रस्तुतीकरण, कथा साहित्य के पात्र और उनके चरित्र भी मूल कृति के प्रतिबिंब से ही होते हैं। उदाहरण के लिए आप

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'चित्रलेखा' को ले सकते हैं जो अनोतोले फ्रांस के उपन्यास 'थाया' पर आधारित है।

(ङ.) **सारानुवाद** : इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक अपने अनुवाद-कार्य के दौरान ही मूल का सार करके उसका ल.भा. में रूपांतरण करता जाता है। कई पत्रिकाओं में आपने प्रसिद्ध विदेशी उपन्यासों के इस प्रकार के सार-संक्षेप देखे भी होंगे।

(च) **टीकापरक अनुवाद** : इस प्रकार के अनुवाद में मूल सामग्री के अनुवाद के साथ ही उसकी व्याख्या भी की जाती है। आपने श्रीमद्भगवद् गीता के इस प्रकार के व्याख्यानुवाद देखे होंगे।

(छ) **संप्रेषण केंद्रित अनुवाद** : कई बार अनुवाद ऐसे पाठकों के लिए किया जाता है जिनकी शैक्षिक योग्यता या बौद्धिक स्तर मूल सामग्री को समझने जैसा नहीं होता। उस दशा में मूल सामग्री के स्तर से हटकर अधिक सरल भाषा-शैली में उसका अनुवाद कर दिया जाता है। हिंदी में बच्चों के पढ़ने के उद्देश्य से अंग्रेज़ी क्लासिक ग्रंथों के जो अनुवाद किए गए हैं, वे इसी श्रेणी में आते हैं।

इस तरह भिन्न संदर्भों और भिन्न प्रकार्यों के आधार पर अनुवाद के अनेक प्रकार हो सकते हैं। जैसे : **आशु अनुवाद** (जो दुभाषिया कर्म के लिए आवश्यक है), **अनुकूलन** (मुख्यतः शब्दों के संदर्भ में, जहाँ स्रो.भा. के शब्द को लेकर ल.भा. की ध्वनियों में ढाल लिया जाता है, जैसे हॉस्पिटल अस्पताल आदि), **परोक्ष अनुवाद** (मूल भाषा से किसी अन्य भाषा में किए गए गए अनुवाद का अनुवाद), **पुनरनुवाद** (ल.भा. में किए गए अनुवाद का फिर से स्रो.भा. में अनुवाद) आदि।

17.4.4 अनुवाद की उपयोगिता

अनुवाद के विस्तृत क्षेत्र तथा विविध प्रकारों के अध्ययन के बाद इसकी उपयोगिता आप सहज ही समझ सकते हैं। अधिक विस्तार में जाकर बातों को दुहराने के स्थान पर हम कुछ उन संदर्भों की गिनती कर सकते हैं जिनमें अनुवाद – मौखिक तथा लिखित – विशेष उपयोगी सिद्ध होता है :

- आज के बहुभाषी समाज में आस-पड़ोस, बाज़ार, कार्यस्थल सभी जगहों पर अन्य भाषा-भाषियों से संवाद-संपर्क के लिए।
- द्वैभाषिक संस्थानों में पठन-पाठन के लिए।
- विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञानों में अन्य भाषाओं में किए गए शोध-कार्य तथा अन्य सामग्री का लाभ उठाकर ल.भा. का क्षेत्र विस्तृत करने के लिए
- द्वैभाषिक/बहुभाषिक कोश निर्माण में
- अन्य भाषाओं के साहित्य का परिचय प्राप्त करने और विभिन्न भाषाओं तथा उनके साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए
- अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधी में
- प्रशासन तथा दफ़्तरी काम-काज में
- व्यवसाय-वाणिज्य के क्षेत्रों में
- पत्रकारिता में
- मनोरंजन के क्षेत्र में

इस प्रकार के अन्य भी अनेक संदर्भ हैं जिनमें अनुवाद की ज़रूरत पड़ती है। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि जीवन तथा व्यवहार के हर क्षेत्र में अनुवाद की उपयोगिता तथा महत्व असंदिग्ध है।

व्यावहारिक उपयोग के लिए इन संदर्भों के अतिरिक्त अनुवाद ल.भा. के विकास में भी अत्यंत सहायक होता है और अनुवादों के माध्यम से ल.भा. अधिकाधिक समृद्ध होती है :

- सामान्य क्रम में भाषा में मूलतः अनुपलब्ध सामग्री अनुवाद के माध्यम से उपलब्ध हो जाती है। इससे भाषा की क्षमता और समृद्धि बढ़ती है।
- स्रो.भा के कई शब्दों, मुहावरों तथा अभिव्यक्तियों के लिए ल.भा. में पहले से कोई प्रतिशब्द या अभिव्यक्ति नहीं होती। ऐसे में या तो पहले से उपस्थित शब्दों/ अभिव्यक्तियों का अर्थ-विस्तार कर दिया जाता है या नए शब्द, अभिव्यक्तियाँ आदि गढ़ ली जाती हैं। दोनों ही स्थितियों में ल.भा. की क्षमता और क्षेत्र का विस्तार होता है।

17.5 अनुवाद की प्रक्रिया

अनुवाद में आप देखते हैं। कि स्रोत भाषा की शब्दावली, संरचनाओं तथा अभिव्यक्तियों को लक्ष्य भाषा की शब्दावली, संरचनाओं तथा अभिव्यक्तियों द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जाता है और इस प्रकार स्रो.भा. के संदेश का ल.भा. में संप्रेषण किया जाता है। इस प्रतिस्थापन की प्रक्रिया में बाह्य अभिव्यक्त के स्तर पर फेर-बदल होता है किंतु अर्थ के स्तर पर किसी भी प्रकार का अंतर अनुवाद को दूषित कर देगा। आर्थी स्तर पर सममूल्यता ही अनुवाद का लक्ष्य है, इसलिए अनुवाद की प्रक्रिया मुख्य रूप से अर्थ के ग्रहण तथा संप्रेषण की प्रक्रिया है।

अनुवादक द्वारा स्रो.भा. के पाठ को पढ़कर उसका अनुवाद प्रस्तुत करने के बीच इस प्रक्रिया के जो विभिन्न चरण होते हैं, उन्हें लेकर भाषा वैज्ञानिकों ने काफी विचार-विमर्श किया है जिसके विषय में आपको संदर्भ ग्रंथों से जानकारी मिल सकती है। सार रूप में हम इस प्रक्रिया को तीन चरणों में विभक्त कर सकते हैं :

(i) **पाठ-विश्लेषण** : अनुवादक स्रो.भा. के पाठ को ध्यान से पढ़कर उसका सामान्य अर्थ ग्रहण करने की चेष्टा करता है। जहाँ पाठ के संपूर्ण आशय के ग्रहण के लिए मात्र वाच्यार्थ पर्याप्त नहीं होता, वहाँ अनुवादक गहराई में जाकर पाठ का विश्लेषण करता है। आप जानते हैं कि कुछ खास ध्वनियों, वर्तनी, शब्दों, शब्दरूपों, मुहावरों, विशिष्ट अभिव्यक्तियों या वाक्य संरचनाओं के माध्यम से रचनाकार पाठ में विशिष्ट अर्थ भरता है जो मात्र बाह्य संरचना के स्तर पर नहीं समझे जा सकते। इस प्रकार के विशिष्ट अर्थ का द्योतन लाक्षणिक तथा व्यंजक प्रयोगों के द्वारा भी हो सकता है और वाक्य की संरचना के माध्यम से भी। अनुवाद और भाषाविज्ञान के संबंध को लेकर हुई चर्चा (*अनुभाग 17.1*), विशेषकर वाक्य विज्ञान संबंधी चर्चा में आपको ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे।

कई स्थानों पर वाक्य के बाह्य स्तर से उसका आशय स्पष्ट नहीं होता। ऐसा द्वयर्थक शब्दों के प्रयोग के कारण भी हो सकता है या कथन की अस्पष्टता के कारण भी। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्य लें :

(क) **यह हुसैन का चित्र है।**

द्वयर्थक शब्दों का प्रयोग न होने के बावजूद इस वाक्य के तीन भिन्न अर्थ हो सकते हैं :

(i) इस चित्र में हुसैन की आकृति अंकित है।
(ii) यह चित्र (माधुरी का) हुसैन ने अंकित किया है।
(iii) यह चित्र हुसैन की संपत्ति है।

भाषा तथा संदर्भ (पाठ की विधा, सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि आदि) के विश्लेषण के द्वारा अनुवादक पाठ की गहनता में पैठकर, इस प्रकार के प्रयोगों का अर्थ समझकर लेखक द्वारा अभीष्ट संदेश का ग्रहण करता है। इस क्रिया को

decoding (विकोडीकरण) कहा जाता है। संदेश को इस प्रकार समझकर ही उसका संप्रेषण संभव है। जहाँ स्रो.भा. का पाठ पूर्णतः अभिधापरक होता है और ल.भा. में उसके निश्चित पर्याय उपलब्ध होते हैं, वहाँ अनुवाद-प्रक्रिया का यह चरण आवश्यक नहीं होता। ऐसा शब्दानुवाद में संभव है।

(ii) **अंतरण या संक्रमण :** विश्लेषण के द्वारा अनुवाद्य पाठ के संपूर्ण अर्थग्रहण के बाद अनुवादक उस सामग्री का ल.भा. में प्रतिस्थापन करने की चेष्टा करता है। इस चेष्टा के अंतर्गत वह ल.भा. में स्रो.भा. के शब्दों, मुहावरों, वाक्यों आदि के समुचित पर्याय ढूँढ़ता है। वह ल.भा. में शैली तथा शिल्प के स्तर पर भी ऐसी अभिव्यक्तियों की तलाश करता है जो स्रो.भा. की शैली के निकट हों और उससे अभिहित आशय का वहन कर सकें। इसके लिए अनुवादक को भाषा ही नहीं, उसकी तमाम बारीकियों और गहराइयों की भी जानकारी होनी चाहिए। साथ ही उसे पाठ की विषयवस्तु तथा पृष्ठभूमि का भी ज्ञान हाना चाहिए। इस चरण में अनुवाद कर्म केवल मशीनी भाषांतरण से आगे जाकर सर्जनात्मक प्रतिभा की अपेक्षा करता है जिसके बल पर अनुवादक मूल कृति के अर्थ की गहराइयों में पैठकर ल.भा. में उसके समतुल्य सामग्री या संरचना का अभाव हो, वहाँ अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के बल पर ही वह उपयुक्त विकल्प का चुनाव करता है या नई सामग्री गढ़ता है। विशेषकर सर्जनात्मक साहित्य के अनुवाद में इस चरण का बड़ा महत्व है।

(iii) **पुनर्गठन :** यदि पाठ-विश्लेषण का चरण decoding था तो इस चरण को re-encoding (पुनः कोडीकरण) कहा जा सकता है। संक्रमण वाले चरण में अनुवादक भाषा प्रतिस्थापन के जिन विकल्पों को चुनता है, इस चरण में उन्हीं को वह व्यवस्थित रूप से भाषाबद्ध करता है। यहाँ उसे ध्यान रखना होता है कि स्रो.भा. के पाठ की अर्थछवियों तथा उद्दिष्ट प्रभाव की रक्षा करते हुए भी वह विषयानुरूप ऐसी शब्दावली, पदक्रम, भाषा संरचना, विशिष्ट अभिव्यक्तियों तथा शैली का प्रयोग करे जो ल.भा. में सहज तथा स्वाभाविक प्रतीत हों - किसी अन्य भाषा की छाया से मुक्त इस स्वाभाविकता की रक्षा के लिए कई बार उसे स्रो.भा. वाली संरचना या अभिव्यक्ति के स्वरूप में भी फेर-बदल करना पड़ता है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी वाक्य (क) के हिंदी अनुवाद में कर्मवाच्य (पैसिव) संरचना (क-i) के स्थान पर कर्तृवाच्य संरचना (क-ii) अधिक सहज प्रतीत होती है और इसमें विशेषण उपवाक्य की स्थिति भी हिंदी की प्रकृति के अनुरूप होने के कारण अधिक सहज तथा स्वाभाविक है :

अंग्रेज़ी : (क) The thief who had stolen Mrs. Sharma's jewelry, was caught and beaten up by the neighbours.

हिंदी : (क-i) वह चोर, जिसने श्रीमती शर्मा के गहने चुराए थे, पड़ोसियों द्वारा पकड़ा और पीटा गया।

(क-ii) जिस चोर ने श्रीमती शर्मा के गहने चुराए थे, उसे पड़ोसियों ने पकड़कर पीट डाला।

इस प्रकार इस चरण में अनुवाद पुनःसृजन की सीमा में प्रवेश कर जाता है।

17.6 हिंदी में अनुवाद से संबद्ध समस्याएँ तथा निदान

अनुवाद की इतनी चर्चा के बाद अनुवाद से जुड़ी हुई समस्याओं का स्वरूप आपके सामने बहुत कुछ स्पष्ट हो चला होगा। आख़िर अनुवाद को असंभव क्यों माना जाता है? वह इसलिए कि स्रो.भा. तथा ल.भा. में ध्वनि, शब्द, रूप रचना, वाक्य संरचना, अर्थ की

संरचना, विशिष्ट अभिव्यक्तियों आदि विभिन्न भाषिक स्तरों पर प्रायः अनेक अंतर होते हैं जिनके कारण ल.भा. में भाषिक स्तर, अर्थात् अभिव्यक्ति के स्तर पर समतुल्यता का निर्वाह बहुत कठिन हो उठता है। इसके अतिरिक्त पाठ की विषय-वस्तु की दृष्टि से देखें तो दोनों भाषाओं से जुड़े समाजों में सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टि से इतना अंतर हो सकता है कि जो सांस्कृतिक व्यंजनाएँ स्रो.भा. की कुछ अभिव्यक्तियों में सहज रूप से मिलती हैं, वे ल.भा. में मात्र शब्दानुवाद के माध्यम से आ ही नहीं सकतीं। कई बार मूल पाठ में उल्लिखित सांस्कृतिक-सामाजिक आचारों या स्थितियों के समतुल्य आचार या स्थिति ल.भा. के समाज में होते ही नहीं, इसलिए उनसे संबद्ध अभिव्यक्ति का चुनाव भी समस्या पैदा कर सकता है। इस प्रकार अनुवाद से संबद्ध समस्याएँ : (1) भाषिक (रचना) तथा (2) सामाजिक-सांस्कृतिक (अर्थ) दोनों ही स्तरों पर खड़ी हो सकती हैं।

17.6.1 भाषिक स्तर की समस्याएँ

भाषिक स्तर पर अनुवाद की समस्याओं पर विचार करने से पहले एक बार फिर अनुवाद तथा भाषाविज्ञान से संबद्ध सामग्री को पलटकर देखिए। भाषाविज्ञान की विभिन्न शाखाएँ भाषा के भिन्न-भिन्न स्तरों से जुड़ी हैं और उनकी चर्चा में अनुवाद के दौरान इन स्तरों पर आने वाली कुछ समस्याओं के संकेत भी आपको मिलेंगे।

वर्तनी : अनुवाद और ध्वनि विज्ञान के संबंध की चर्चा के दौरान आप देख चुके हैं कि कुछ स्थितियों में स्रो.भा. के शब्दों को ल.भा. में ज्यों का त्यों लेना आवश्यक है। ऐसी मुख्य स्थितियाँ हैं :

(क) व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ (जिनमें व्यक्ति, स्थान, भौगोलिक स्थल-देश नदी, पर्वत आदि, भाषा, ग्रंथ, संस्थान, भवन, व्यापारिक नाम आदि आ जाते हैं);

(ख) तकनीकी, वैज्ञानिक या दार्शनिक क्षेत्रों में प्रयुक्त कुछ पारिभाषिक शब्द;

(ग) स्रो.भा. की विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से संबद्ध शब्दावली जिसके लिए ल.भा. में प्रतिशब्द उपलब्ध न हों।

ऐसे शब्दों का अनुवाद न करके लिप्यंतरण ही करना पड़ता है। ऐसे में वर्तनी संबंधी कुछ समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं।

शब्दावली : हमारे सामान्य जीवन तथा परिवेश से संबद्ध शब्दावली हर भाषा में मिलती है। मनुष्य, लड़का, लड़की, घर, पेड़, पौधे, पानी, नदी, पहाड़, शहर, दूध, किताब, कपड़ा आदि के पर्याय लगभग हर भाषा में मिल जाएँगे। स्पष्ट ही, ऐसे प्रसंगों में शब्दावली किसी प्रकार की समस्या खड़ी नहीं करती। शब्दावली संबंधी समस्याएँ मुख्यतः निम्नलिखित क्षेत्रों में उभरती हैं :

(i) **ज्ञान-विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा नवीन अनुसंधान संबंधी साहित्य :** यदि ल.भा. के क्षेत्र में ज्ञान-विज्ञान की किसी विशेष शाखा का विकास न हुआ हो, या उससे संबद्ध लेखन की परंपरा न रही हो तो उससे जुड़ी शब्दावली का मिलना कठिन है। किसी क्षेत्र में नवीन अध्ययन-अनुसंधान हो रहा हो या नई अवधारणाएँ उभर रही हों, तो उनसे संबद्ध शब्दावली भी पहले से उपलब्ध नहीं होती। ऐसी स्थिति में अनुवादक के सामने दो विकल्प होते हैं :

(क) **नए शब्द का निर्माण :** इस क्षेत्र में हिंदी में काफ़ी काम हुआ है और हो रहा है। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के अंतर्गत तकनीकी तथा वैज्ञानिक शब्दावली आयोग के तत्वावधान में शब्दावली निर्माण का काम चल रहा है। अनुवादक उनके द्वारा प्रस्तुत शब्दावली कोशों का प्रयोग कर सकते हैं।

(i) **स्रो.भा. के शब्द का लिप्यंतरण** : आजकल भाषा की शुद्धता पर अतिरिक्त बल न देते हुए जरूरत के अनुसार स्रो.भा. के शब्दों को भी अपना लिया जाता है, जैसे 'जीन' (Gene), 'निएंडरथाल' मानव (Neanderthal man) आदि।

(ii) **स्रो.भा. के क्षेत्र से आगत दैनिक जीवन की ऐसी वस्तुओं के नाम जो ल.भा. के क्षेत्र में पहले उपलब्ध नहीं थीं** : भोज्य पदार्थ, परिधान, अस्त्र-शस्त्र, वाहन तथा दैनिक व्यवहार की ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं जिनके नाम या तो :

(क) लगभग मूल उच्चारण सहित ल.भा. में ले लिए जाते हैं, जैसे : हलवा, इडली, गाउन, टी शर्ट, पेस्ट्री, मोटर, बस, सिनेमा, क्रिकेट, फुटबॉल आदि; या

(ख) उनकी ध्वनियों को ल.भा. की प्रकृति के अनुसार ढाल लिया जाता है, जैसे टमाटर, अस्पताल आदि।

(iii) **स्रो.भा. के क्षेत्र विशेष से जुड़ी स्थिति के सूचक शब्द** स्रो.भा. के क्षेत्र में आचार-व्यवहार, सामाजिक रीति-नीति, धार्मिक कृत्य आदि से जुड़ी ऐसी अनेक बातें होती हैं जो ल.भा. के क्षेत्र में नहीं मिलेंगी। उदाहरण के लिए हिंदी क्षेत्र में मध्यम पुरुष के सम्मान सूचक संबोधन "आप" के लिए अंग्रेज़ी में कोई शब्द नहीं है, न "गौना", 'कोहबर" आदि जैसी रस्मों के लिए कोई शब्द है। ऐसी स्थिति में अनुवादक के सामने यही विकल्प रहता है कि स्रो.भा. के शब्द को लिप्यंतरित करके ल.भा. में अपना ले और विशेष टिप्पणी द्वारा उस शब्द के अर्थ तथा संदर्भ को समझा दे ताकि पाठक को संपूर्ण अनुवाद के अर्थग्रहण में आसानी हो।

(iv) **अनेकार्थक शब्द या प्रसंगानुसार विशिष्ट अर्थ देने वाले शब्द** : द्व्यर्थक या अनेकार्थक शब्दों के अनुवाद में अनुवादक को बड़ी सावधानी से पृष्ठभूमि तथा संदर्भों का अध्ययन करके अर्थ निकालना चाहिए। प्रख्यात साहित्यकार धर्मवीर भारती के देहांत पर अंग्रेज़ी अखबार 'टाइम्स ऑफ इंडिया' (दिनांक 5.9.97) में जो स्मरण लेख निकला था, उसमें उनके शोध-प्रबंध का नाम **Siddha Sahitya** (सिद्ध साहित्य) दिया गया था। लेखक ने और भी कौशल दिखलाते हुए कोष्टक में इस शीर्षक का अनुवाद भी दे दिया – **"accamplished literature"**। ठीक है, सिद्ध" एक विशेषण भी है जिसका अंग्रेज़ी प्रतिशब्द **'accomplished'** हो सकता है। किंतु हिंदी साहित्य और धर्मवीर भारती के लेखन की ज़रा-सी भी जानकारी रखने वाला व्यक्ति इतना समझ जाएगा कि उक्त शोध प्रबंध में "सिद्ध" "नाथ' की ही भाँति एक संप्रदाय का सूचक है।

(v) **सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ और उनसे जुड़ी शब्दावली** : यह समस्या शायद भारतीय साहित्य के अंग्रेज़ी आदि पाश्चिमी भाषाओं में अनुवाद के क्रम में अधिक प्रबल हो क्योंकि यहाँ कि रीति-नीति, आचार (जन्म-मरण, विवाह, पूजा आदि संस्कार), पाल्नाये, धार्मिक विश्वास, अंधविश्वास, नाते-रिश्ते, शिष्टाचार आदि से जुड़ी अनेक बातें ऐसी हैं जो पाश्चिम के लिए बिलकुल ही अपरिचित, बल्कि अकल्पनीय हैं। हमारे जन-जीवन, शिक्षा, व्यवहार आदि क्षेत्रों पर प्रकाशनों तथा अन्य संचार माध्यमों के द्वारा इंगलैंड तथा अमेरिका के जीवन तथा संस्कृति का इतना प्रभाव पड़ रहा है कि बहुत सारी स्थितियाँ तथा संकल्पनाएँ हमारे लिए परिचित हो चली हैं और उनके लिए हिंदी में या तो शब्द बढ़ लिए गए हैं (जैसे **honeymoon** → मधुचंद्र, **Good morning** → सुप्रभात) या अंग्रेज़ी के ही शब्द अपना लिए गए हैं। किंतु यहाँ भी शब्द मात्र पूरा अर्थ देने में समर्थ नहीं होंगे।

अनुवादक को टिप्पणियों के माध्यम से सामाजिक-सांस्कृतिक संकल्पनाओं को स्पष्ट करना ही होगा।

वाक्य रचना : अनुवाद और वाक्य विज्ञान की चर्चा के दौरान इस प्रकार की कुछ समस्याएँ हमारे सामने आई थीं। अनुवाद में वाक्य रचना के स्तर पर समस्याओं के मुख्य कारण हैं :

(क) दो भाषाओं की वाक्य संरचनागत असमानताएँ

(ख) दो भाषाओं की संरचनाओं का भ्रामक साम्य

रास्ता खोलता है।अंग्रेज़ी से हिंदी में अनुवाद के दौरान प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कथन संबंधी समस्याएँ भी खड़ी हो सकती हैं। अंग्रेज़ी में अप्रत्यक्ष कथन में, कथित वाक्य में वक्ता का उल्लेख अन्य पुरुष में आना आवश्यक है और मुख्य वाक्य तथा कथित वाक्य में एक ही काल (भूतकाल) का प्रयोग होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए :

अंग्रेज़ी : प्रत्यक्ष कथन : He said. "I will go."

अप्रत्यक्ष कथन : He said that he would go.

हिंदी में यह आवश्यक नहीं है। ये उदाहरण देखें :

हिंदी : प्रत्यक्ष कथन : उसने कहा, "मैं जाऊँगा।"

अप्रत्यक्ष कथन : उसने कहा कि मैं जाऊँगा।

उसने कहा कि वह जाएगा।

(स्वयं या और कोई)

हिंदी अप्रत्यक्ष कथन के दूसरे वाक्य में अंग्रेज़ी संरचना का प्रभाव है। अंग्रेज़ी में काल के कारण भ्रम होता है, हिंदी में पुरुष के कारण।

शैली और मुहावरेदार प्रयोग

(अ) **शैली** : शैली भाषा का, विशेषकर साहित्यिक भाषा का विशिष्ट स्वरूप है। कोई भी बात कई प्रकार से कही जा सकती है और ये कई प्रकार ही उस बात को अभिव्यक्त करने की विभिन्न शैलियाँ हैं। अभिव्यक्ति के क्षेत्र (औपचारिक, अनौपचारिक), विषय (सामाजिक विज्ञान या प्राकृतिक विज्ञान), विधा (कहानी, उपन्यास, गीतिकाव्य, महाकाव्य, नाटक, निबंध) आदि के अनुसार भी कथन की शैली में अंतर आ जाता है। विज्ञान संबंधी विषयों में महत्व इस बात का होता है कि क्या कहा जा रहा है (किंतु इस सीधे-सादे कथन की भी एक अभिधापरक शैली होती है)। साहित्य में केवल कथ्य का ही नहीं, बल्कि इस बात का भी महत्व होता है कि वह कैसे कहा जा रहा है। लेखक/वक्ता अपने उद्देश्य या कथन के प्रसंग के अनुसार भाषा में ध्वनि, शब्दावली, वाक्य संरचना आदि के अनेक विकल्पों -में से किसी एक को चुनता है जो उसके कथ्य को सबसे अच्छी तरह स्पष्ट कर सके। अनुवाद में शैली से संबद्ध कुछ मुख्य समस्याएँ इस प्रकार हैं :

(क) ल.भा. में स्रो.भा. के समतुल्य शैली का उपलब्ध न होना : इसके पीछे भाषागत कारण भी हो सकते हैं और संस्कृतिगत भी। उदाहरण के लिए हिंदी में आदरसूचक सर्वनाम तथा क्रियाओं का प्रयोग होता है, किंतु अंग्रेज़ी में 'तुम' तथा 'आप' सर्वनामों और 'बैठो' तथा 'बैठिए' क्रियाओं के अंतर को स्पष्ट करन वाले भाषिक प्रयोग नहीं हैं। इन दोनों ही विकल्पों के लिए अंग्रेज़ी में एक ही विकल्प क्रमशः you तथा sit का प्रयोग हो सकता है।

(ख) शैलीगत बहुभाषिकता : कई बार स्रो.भा. की किसी एक कृति में भाषा या बोली के विभिन्न रूपों का सार्थक प्रयोग होता है। यदि ल.भा. में

संबद्ध विकल्प उस प्रकार और उन्हीं अर्थों में उपलब्ध न हों, तो शैली के स्तर पर समस्या खड़ी हो जाती है। कुछ उदाहरण लीजिए।

विशाखदत्त के संस्कृत नाटक 'मुद्राराक्षस' के अनुवाद में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने एक स्थान पर चाणक्य के मुख से कहलाया है – 'यह नंद का राज नहीं है, चंद्रगुप्त का राज्य है।' स्वयं भारतेंदु ने टिप्पणी में यह स्पष्ट किया है कि नंद के प्रसंग में "तुच्छता प्रकट करने के लिए राज्य का अपभ्रंश राज लिखा गया है।" इस प्रकार के हिंदी वाक्य के अंग्रेज़ी अनुवाद में समस्या उत्पन्न हो सकती है। इसी प्रकार किसी प्रसंग में 'ब्राह्मण', 'बाँमन' या 'बिरहमन' के प्रयोग की जो विभिन्न व्यंजनाएँ हो सकती हैं, वे किसी भिन्न संस्कृति से संबद्ध भाषा में मिलना कठिन है।

(आ) **लोकोक्तियाँ तथा मुहावरे :** अनुवाद की शैली संबंधी समस्याओं में लोकोक्तियों तथा मुहावरों से संबद्ध समस्याएँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। लोकोक्तियाँ तथा मुहावरे वस्तुतः विशिष्ट प्रकार की अभिव्यतियाँ हैं जिनका आशय शब्दों के अभिधार्थ मात्र से नहीं समझा जा सकता। लोकोक्तियाँ ऐसी उक्तियाँ हैं जो शब्दार्थ से आगे जाकर कुछ ख़ास स्थितियों की व्यंजना करती हैं। ये अपने क्षेत्र की संस्कृति और परंपरा से जुड़ी होती हैं। यह सही है कि इनसे अभिहित सत्य सार्वभौम होता है, किंतु कई लोकोक्तियाँ अभिव्यक्ति के स्तर पर ऐसे बिंब बनाती हैं जो केवल उनके क्षेत्र के जीवन व्यवहार से जुड़े होते हैं। उदाहरण के लिए :

- गंगा गए गंगादास, जमना गए जमनादास।
- रानी रूठेंगी, अपना सुहाग लेंगी।
- कुम्हार का कुम्हारी पर बस नहीं चलता तो गधे के कान उमेठता है।

ऐसी लोकोक्तियाँ भारतीय संदर्भ में ही समझी जा सकती हैं।

यदि स्रो.भा. तथा ल.भा. की पृष्ठभूमि और संस्कृति भिन्न हो, तो अभिव्यक्ति का शब्दानुवाद समझना लक्ष्य भाषा-भाषी के लिए मुश्किल हो सकता है। जैसे Achiles'heel का अनुवाद 'एकिलीज़ एड़ी' या dead as a dodo का अनुवाद 'डोडो की तरह मुर्दा' कर दिया जाए तो सामान्य हिंदी भाषी के आगे इनका आशय स्पष्ट नहीं होगा। ऐसी स्थिति में इनका आशय सामान्य भाषा में लिख देना ही उपयुक्त होगा। Achiles'heel का अनुवाद 'कमज़ोरी' (Money is John's Achiles'heel' → पैसा जॉनकी कमज़ोरी है) किया जा सकता है। Dead as a dodo का अनुवाद प्रसंगानुसार 'विलुप्त' किया जा सकता है।

इस बात का ध्यान रखें कि मुहावरे तथा लोकोक्तियों अभिव्यक्ति को स्पष्ट तथा सबल बनाने का ही साधन हैं। अनुवाद में समतुल्यता की रक्षा करने के लिए यथासंभव :

(अ) ल.भा. में ऐसी अभिव्यक्तियों की तलाश करनी चाहिए जो शब्दार्थ तथा आशध – दोनों में स्रो.भा. के समान है।

(आ) पिछला विकल्प संभव न हो तो ल.भा. में ऐसी अभिव्यक्तियों की तलाश करें जिनका शब्दार्थ भले ही भिन्न हो, लक्ष्यार्थ या आशय स्रो.भा. की अभिव्यक्ति के ही समान हो।

(इ) यह भी संभव न हो तो स्रो.भा. की अभिव्यक्ति का शब्दानुवाद करके देखें। यदि वह ल.भा. में सहज तथा बोधगम्य होता है तो भाषा को एक नई अभिव्यक्ति मिल जाएगी।

(ई) अगर ऊपर का कोई भी विकल्प अपेक्षित प्रभाव देने में समर्थ न हो या ल.भा. में उपयुक्त न लगे तो उस मुहावरे या लोकोक्ति के आशय को सहज भाषा में प्रस्तुत कर देना ही सबसे सही कदम होगा।

17.7 साहित्यिक अनुवाद

अब तक की चर्चा से आपके सामने अनुवाद के क्रम में बल्कि साहित्यिक अनुवाद के क्रम में आने वाली समस्याओं का स्वरूप भी स्पष्ट हो गया होगा। वैसे तो भाषा के विभिन्न स्तरों और शैली के स्तर पर उठने वाली समस्याएँ साहित्यिक अनुवाद की भी प्रमुख समस्याएँ हैं, किंतु साहित्य की विभिन्न विधाओं के अनुवाद की भी अपनी अलग समस्याएँ होती हैं। आइए हम इनकी समस्याओं पर अलग-अलग विचार करें।

(क) काव्य का अनुवाद

- काव्य के अंतर्गत महाकाव्य, खंडकाव्य, गीतिकाव्य, तुकांत तथा अतुकांत लयबद्ध पद्य– सभी प्रकार की रचनाएँ आ जाती हैं। अनुवादक के लिए काव्यानुवाद एक बहुत ही बड़ी चुनौती है क्योंकि कविता मात्र शब्दार्थ तक सीमित नहीं होती। वह शब्दार्थ का अतिक्रमण करके बहुत कुछ संकेत के द्वारा भी कहती है। उसकी शब्दावली ही नहीं, वाक्य गठन, लय, छंद, बिंब, प्रतीक, अलंकार योजना, शैली आदि मिलकर बहुत कुछ ऐसा कह जाते हैं जो मात्र शब्दार्थ नहीं कह पाता। इसीलिए सर फिलिप सिडनी, तथा दाँते जैसे कवियों तथा सिद्धांतकारों ने काव्य का अनुवाद असंभव माना है। कविता के अनुवाद में वे सभी समस्याएँ आती हैं, जिनका पिछले अनुभागों में विवेचन हो चुका है। कविता का समग्र प्रभाव तथा सूक्ष्म अर्थ शब्दों की ध्वनि, कथन की लय, बलाघात तथा बिंब योजना के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। कविता में किसी विशेष प्रभाव को उत्पन्न करने वाली ध्वनियों से युक्त शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए सुमित्रानंदन पंत की कविता में 'उन्मन उन्मन गुंजन' वाक्यांश अपनी ध्वनि, लय, विराम योजना, बलाघात और अलंकारों के माध्यम से एक उदास संगीतमय माहौल की सृष्टि करता है। अनुवाद के क्रम में किसी ल.आ. में हिंदी के इन शब्दों के प्रतिशब्द तो मिल सकते हैं किंतु यह ज़रूरी नहीं है कि वे शब्द भी अपनी ध्वनि तथा लय के माध्यम से वही कुछ व्यंजित करने में समर्थ हों जो स्रो.भा. की कविता कर रही है।

- कविता के दृश्य तथा श्रव्य बिंब शब्दों के नाद गुण से बड़ी सीमा तक नियंत्रित होते हैं। उदाहरण के लिए पंत की ही एक और पंक्ति लीजिए –'मेखलाकार पर्वत अपार'। इसमें 'आ' ध्वनि के आवर्तन के माध्यम से विस्तार का जो आभास हो रहा है वह किसी अन्य भाषा में इसके प्रतिशब्द के माध्यम से संभव नहीं भी हो सकता है।

- कविता में कई बार श्लिष्ट या अनेकार्थी शब्दों के माध्यम से चमत्कार की सृष्टि तो की ही जाती है, अर्थ में भी गहराई तथा समास का गुण आ जाता है। अंग्रेज़ी के कवि जॉन मिल्टन के सॉनेट On his blindness में कवि ने talent शब्द का दो अर्थों में प्रयोग किया है – प्रतिभा तथा एक प्रकार का सिक्का। इस श्लेष के माध्यम से कविता का अर्थ और भी गहन तथा स्पष्ट हो उठा है। किंतु हिंदी में talent का जो भी अनुवाद हो, वह इस प्रकार का श्लिष्ट अर्थ नहीं दे सकेगा और अनुवाद में दोनों अर्थों को स्पष्ट करने की कोशिश की जाए तो कविता की समस्तता खंडित हो जाएगी और साथ ही मूल रचना का प्रभाव भी।

  कविता में कई बार एक ही शब्द के अनेक पर्यायों में से किसी एक का चयन किसी विशेष अर्थ के संप्रेषण के लिए किया जाता है। हिंदी में 'नीरज' और 'पंकज' – दानों ही शब्दों का वाच्यार्थ 'कमल' है किंतु व्यंग्यार्थ भिन्न है और कुछ ख़ास संदर्भों में इस भिन्नता का बड़ा सार्थक उपयोग हो सकता है। अनुभाग 17.3 (iv) में एक नाटक में

'राज' और 'राज्य' के भिन्न व्यंग्यार्थों का उल्लेख किया जा चुका है। किसी अन्य भाषा में मूलभाषा वाले शब्द के किसी एक पर्याय द्वारा इस प्रकार की व्यंजना कर सकना कठिन है।

- पिछले अनुभाग में इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि शब्दालंकारों के अनुवाद में किस प्रकार की असुविधाएँ सामने आती हैं। अर्थलंकारों के अनुवाद में भी, दोनों भाषाओं में एक-से अलंकार उपलब्ध होने के बावजूद, असुविधाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसका कारण दोनों भाषाओं के सांस्कृतिक आसंगों का अंतर हो सकता है। अंग्रज़ी की उपमा (simile) wise like an owl का अनुवाद हिंदी में 'उल्लू के समान बुद्धिमान' करना बुद्धिमानी नहीं होगा क्योंकि हिंदी-भाषी क्षेत्रों में इस पक्षी को मूर्खता का प्रतीक माना जाता है। इसी प्रकार हिंदी के रूपक 'मुखचंद्र' का अंग्रेज़ी अनुवाद बिना किसी टिप्पणी के moon-face कर देना उचित नहीं हेगा क्योंकि अंग्रेज़ी भाषा से जुड़ी संस्कृति में चाँद जैसा मुख सामान्यतः सौंदर्य का नहीं, बल्कि भोंदूपन का प्रतीक होता है। ऐसी स्थितियों में अनुवादक को अपने विवेक से काम लेकर या तो एक टिप्पणी द्वारा बात को स्पष्ट कर देना चाहिए या कथन को ल.भा. के संस्कारों के उपयुक्त ढाल लेना चाहिए। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी की कुछ उपमाओं का हिंदी में रूपांतर देखें :

अंग्रेज़ी	**हिंदी**
Herculean effort	भगीरथ प्रयास
Olympian heights	हिमालय-सी ऊंचाई
Handsome like Apollo	कामदेव-सा सुंदर

हिंदी भाषी के लिए हरक्यूलीज़ की अपेक्षा भगीरथ के प्रयासों को समझना अधिक सरल है। किंतु यह भी सही है कि इस प्रकार का अनुवाद पूरी तरह शुद्ध नहीं होगा।

- पिछले अनुच्छेद से ही जोड़कर एक और बात देखें। किसी भी देश के काव्य (तथा अन्य विधाओं में भी) अनेक सांस्कृतिक आसंग तथा अंतर्कथाएँ होती हैं। स्रो.भा. का पाठक सहज भाव से उन अंतर्कथाओं तथा प्रस्तुत संदर्भ में उनकी संगति को समझता चलता है। हिंदी का पाठक क्रौंच वध, कंचन मृग, पृथ्वीराज के शब्द-वेध आदि के आसंगों और अंतर्कथाओं को आसानी से समझ सकता है। ग्रीक पुराणों और योरपीय इतिहास से संबद्ध प्रसंग उसके लिए प्रायः अनजाने होते हैं जबकि अंग्रेज़ी साहित्य में वे ही प्रसंग आते हैं। ऐसे में अंग्रेज़ी से हिंदी में अनुवाद करने वाले के लिए यही उचित होगा कि स्रो.भा. के ऐसे प्रसंगों को ज्यों का त्यों अनूदित करके टिप्पणियों के माध्यम से उनकी पृष्ठभूमि तथा आसंगों को समझाता चले।

- दो भाषाओं के क्षेत्रों की संस्कृति में कितना अंतर हो सकता है और वह अनुवाद की राह में कैसी अनुल्लंघनीय बाधाएँ खड़ी कर सकता है, इसका उल्लेख कई बार हो चुका है। यहाँ 'दिनकर' की कविता 'बालिका से वधू' का एक उदाहरण लें :

  'मंगलमय हो पंथ सुहागिन यह मेरा वरदान।
  हर सिंगार की टहनी से फूलें तेरे अरमान।'

  हो सकता है अनुवादक टिप्पणियों के माधयम से शब्दों के प्रसंग और वाच्यार्थ स्पष्ट कर दे, किंतु भारतीय मानस में मंगल, सुहाग, वरदान और आशीर्वाद की जो अवधारणा है और केसरिया तथा शुभ्र पुष्प राशि से लदे भरे-पूरे हरसिंगार का जो चित्र है, वह मात्र टिप्पणियों के माध्यम से समझाना मुश्किल है। इसके अतिरिक्त इससे पाठक के अनायास रस ग्रहण में भी बाधा तो पड़ती ही है।

- वर्ड्सवर्थ के अनुसार कविता 'प्रबल मनोवेगों का सहज उच्छलन' है। इस प्रकार सहजता और निरायासता कवि का एक बड़ा गुण है। इसके विपरीत अनुवादक को सोच-समझकर, विश्लेषण कर करके उपयुक्त शब्दावली, वाक्य रचना, छंद आदि का

चयन करना पड़ता है। इसलिए कई बार अनुवाद में सायासता का आभास होने लगता है और कविता मूल रचना के समान प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकती। इसके अतिरिक्त इतनी सावधानी रखते हुए वह मूल रचना का केवल भाषांतरण नहीं करता। उसके पीछे व्याख्या और विश्लेषण की एक पूरी प्रक्रिया रहती है। इस प्रक्रिया के पीछे अनुवादक के अपने व्यक्तित्व, सोच, परिवेश तथा मानसिक बनावट का भी हाथ रहता है। यही कारण है कि एक ही रचना का अनुवाद भिन्न-भिन्न व्यक्ति अलग-अलग तरह से करते हैं।

काव्य के अनुवाद में पहले कविता को समझने क लिए और फिर ल.भा. के पाठकों तक उसे पहुँचाने के लिए, कवि मानस की संवेदनशीलता की आवश्यकता होती है। वास्तव में यह भाषांतरण नहीं, बल्कि पुनःसृजन की क्रिया है। किंतु अनुवादक को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह अनुवाद को ल.भा. में संप्रेषणीय बनाने क लिए मूल से काट न बैठे।

- अब तक काव्यानुवाद संबंधी जिन समस्याओं पर बात हुई है, वे वास्तव में साहित्य की अन्य विधाओं पर भी लागू होती हैं। जो समस्या बिलकुल काव्य से ही जुड़ी हे, वह है छंद तथ लय की समस्या। कवि अपने कथन को अधिक प्रभावी बनाने के लिए प्रसंगानुसार उपयुक्त छंदों को चुनता है। जहाँ पारंपरिक छंदों का प्रयोग नहीं होता, वहाँ भी भाषा की एक विशिष्ट लय के द्वारा अर्थ का संप्रेषण किया जाता है। किंतु विभिन्न भाषाओं के छंदों में तथा शब्द श्रृंखलाओं की लय में अंतर हो सकता है। ऐसे में अनुवादक के सामने ऐसे छंदों तथा लय के चुनाव का प्रश्न खड़ा हो सकता है जो मूल रचना के प्रभाव को अधिक से अधिक सप्रेषित कर सकें। कुछ अनुवादक मूल पद्य रचना को ल.भा. में गद्य में रूपांतरित करके प्रस्तुत करते हैं। किंतु इससे ल.भा. के पाठक के आगे कविता का मात्र शब्दार्थ ही आ पाता है। कविता का पूरा अर्थ उसके शब्दों में ही निहित नहीं होता। प्रस्तुति की भंगिमा में अन्य सब बातों के अतिरिक्त छंद तथा लय का भी महत्व है। संदर्भ ग्रंथों में आपको इस संदर्भ में अनेक उदाहरण तथा उनके विश्लेषण मिलेंगे। यहाँ आप इतना समझ लें कि अनुवादक को अपने विवेक तथा संवेदनशीलता के आधार पर ल.भा. में उपयुक्त छंद तथा लय का चुनाव करना चाहिए। इसके लिए किसी निश्चित नियम का निर्धारण नहीं किया जा सकता।

(ख) नाटक का अनुवाद

यहाँ हम उन बातों का जिक्र करेंगे जिनका संबंध केवल नाटक विधा से है। नाटक एक दृश्य विधा है। इसका संपूर्ण प्रभाव मात्र भाषा पर ही निर्भर नहीं होता बल्कि अभिनय, मंच, रंग-योजना आदि का भी इसमें बड़ा हाथ होता है। अनुवादक का कर्म हालाँकि केवल भाषा से जुड़ा होता है, फिर भी उसे इस क्षेत्र में बहुत ही सावधानी से काम लेना होता है। इसके कई कारण हैं, जिनकी चर्चा आगे कर रहे हैं :

- नाटक में संवादों का बड़ा महत्व है। कथा-साहित्य में पात्रों के संवादों के अतिरिक्त स्वयं लेखक भी अपनी तरफ से बहुत कुछ कहकर वातावरण की रचना कर सकता है, चरित्रों पर प्रकाश डाल सकता है या उलझी हुई स्थितियों को स्पष्ट कर सकता है। नाटककार को यह सारा काम पात्रों के कथोपकथन के माध्यम से ही करना होता है। इसलिए नाटक में हर संवाद की, संवाद के हर वाक्य तथा शब्द की अपनी विशिष्ट अर्थवत्ता होती है।

- नाटक में संवादों के अनुवाद में ध्यान रखना चाहिए कि पात्र किस तरह की भाषा तथा शब्दों का प्रयोग कर रहा है; संवाद में कहाँ विराम आ रहा है; जिन शब्दों या वाक्यांशों का प्रयोग हो रहा है, उनकी अनुतान (intonation) कैसी है, उन पर कहाँ बल देकर बोला जा सकता है; कहाँ वाक्य अधूरे, टूटे या बिखरे हैं। आदि।

- नाटक में पायः अनेक पात्र होते हैं जिनके चरित्र, व्यक्तित्व, वर्ग, सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक पृष्ठभूमि, आयु, लिंग, भौगोलिक अवस्थिति, मनोविज्ञान आदि में बहुत अंतर होता है। नाटक में ये तमाम अंतर हर पात्र के भाषा प्रयोगों की भिन्नता के माध्यम से व्यक्त होते हैं। अनुवादक के लिए यह ज़रूरी होता है कि भाषा प्रयोगों की यह भिन्नता बनाए रखे, ताकि इस भिन्नता से उत्पन्न प्रभाव भी अनुवाद में आ सकें।

- कुछ अनुवादकों ने नाटकों के अनुवाद के स्थान पर उनका रूपांतरण करके भी इस समस्या का कुछ हद तक समाधान किया है। रूपांतरण पूर्णतः अनुवाद न होते हुए भी अनुवाद का एक गौण प्राकर माना जा सकता है जिसमें मूल नाटक (या उपन्यास या कहानी आदि) को ल.भा. के परिवेश में ढाल लिया जाता है। अर्थात् कथा, चरित्र, नाट् योजना आदि मूल नाटक के अनुरूप होते हुए भी स्थान, पात्रों के नाम आदि ल.भा. के अनुसार नियोजित कर लिए जाते हैं। उदाहरण स्वरूप शेक्सपीयर के नाटक The Merchant of Venice के भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा किए गए रूपांतरण 'दुर्लभ बंधु' का उल्लेख पहले किया जा चुका है (देखें, अनुभाग)। ऐसे नाटकों में संवाद प्रायः मूल का ज्यों का त्यों अनुवाद होते हैं, पर कभी-कभी बदले हुए परिवेश तथा संस्कृति के अनुकूल रखने के लिए उनमें अनुवादक अपनी तरफ़ से कुछ परिवर्तन भी कर देता है।

- काव्यात्मक नाटकों का अनुवाद करने की चुनौती और भी कठिन है क्योंकि अनुवादक को नाटक के मूल भाव ही नहीं, काव्यात्मकता की भी रक्षा करनी पड़ती है। यह कार्य कितना कठिन है, यह इसी से स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी में शेक्सपीयर के अनेक अनुवादें में से अच्छे कहे जाने वाले अनुवाद अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं।। कुछ अनुवादक सरल मार्ग अपनाकर पद्यात्मक अंशों का अनुवाद गद्य में कर देते हैं। किंतु इससे मूल नाटक का प्रभाव निश्चित रूप से खंडित हो जाता है और वह अनुवाद नाटक की केवल कथा प्रस्तुत कर सकता है, नाटक नहीं।

- नाटक में संवादों के अतिरिक्त मंच संकेत, रंग संकेत तथा अन्य अनेक युक्तियाँ होती हैं जो परस्पर मिलकर ही नाटककार के कथ्य को स्पष्ट करती हैं। नाटक के अनुवादक को दोनों भाषाओं ही नहीं, उन युक्तियों तथा रंगमंच की परंपराओं का भी सम्यक् ज्ञान होना चाहिए ताकि वह मूल नाटक को पूरी अर्थवत्ता में ग्रहण तथा संप्रेषित कर सके।

(ग) कथा साहित्य का अनुवाद

- कथा साहित्य के अंतर्गत उपन्यास, कहानी आदि विधाएँ आती हैं। इनके अनुवाद में भाषा, शैली, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, विविध भाषा प्रयोग आदि से जुड़ी जो समस्याएँ हैं, उनका उल्लेख हो चुका है। ये समस्याएँ एक ओर **भाषा तथा इसकी संरचना के विविध स्तरों** से जुड़ी हैं और इनका मूल कारण है दो भाषाओं की ध्वनियों, शब्दावली और व्याकरणिक संरचना में अंतर। इन समस्याओं का दूसरा स्तर भाषिक प्रयोग से जुड़ा है जिसके अंतर्गत विशिष्ट शैली तथा भाषा और बोलियों के विशिष्ट प्रयोग आते हैं। इन पर भी पहले चर्चा हो चुकी है और आगे भी कुछ विचार-विमर्श किया जाएगा। समस्याओं का तीसरा स्तर भाषिकेतर है जिसके अंतर्गत स्रो.भा. तथा ल.भा. के भिन्न-भिन्न भौगोलिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्तर से जुड़ी समस्याएँ आती हैं। इन पर भी कुछ सीमा तक पहले चर्चा कर चुके हैं।

- साहित्य में कथा साहित्य की विधाएँ सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। इनका अनुवाद बड़े कौशल की अपेक्षा करता है। कहानी या उपन्यास की ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि के अनुसार उसकी भाषा तथा शैली का चुनाव होता है। ऐतिहासिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा आंचलिक उपन्यासों की शैली तथा भाषा भिन्न-भिन्न होती है। एक ही लेखक यशपाल के ऐतिहासिक उपन्यास 'दिव्या' की भाषा तत्सम प्रधान है और 'झूठा सच' की भाषा सहज बोलचाल की भाषा है, जिसमें कथा के क्षेत्र के मुहावरों तथा बोलियों का खुलकर प्रयोग हुआ है। प्रेमचंद के उपन्यासों

तथा कहानियों की भाषा-शैली सरल मानी जाती है किंतु उनमें विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि के पात्र भिन्न प्रकार की भाषा बोलते हैं। अनुवादक को यदि उपन्यास का पूरा रस अनुवाद में उतारना है तो उसे इस भिन्नता का निदर्शन अनुवाद में भी किसी न किसी प्रकार करना होगा।

- हर लेखक की अपनी अलग भाषा-शैली होती है। परिणामस्वरूप कथा की पृष्ठभूमि समान होने पर भी उनके द्वारा उसकी प्रस्तुति में अंतर आ जाता है। उदाहरण के लिए प्रेमचंद तथा प्रसाद द्वारा लिखित ऐतिहासिक कहानियों को देखें। कहानी की पृष्ठभूमि या पात्र कैसे भी हों, प्रसाद की भाषा तत्सम शब्दावली प्रधान और काव्यमय होती है, जबकि प्रेमचंद की भाषा अपेक्षाकृत सहज-सामान्य और शैली वर्णनात्मक और किस्सागोई वाली होती है। लेखकों का पूरा कथ्य प्रस्तुति की भंगिमा के माध्यम से ही स्पष्ट होता है। इसलिए अनुवाद में भिन्न-भिन्न लेखकों की शैली की विशिष्टताएँ उभरकर आनी चाहिए।

- कथा साहित्य में प्रायः अपने क्षेत्र के जीवन, संस्कारों-व्यवहारों, विचारें-आस्थाओं, रीति-रिवाजों, विश्वासों, शिष्टाचार आदि का चित्रण होता है। उन्हें भलीभाँति समझकर सही रूप में प्रस्तुत कर सकने क लिए अनुवादक को दोनों भाषाओं से जुड़ी सभ्यता-संस्कृति, रीति-रूढ़ियों, विश्वासों आदि का ज्ञान होना चाहिए। उन्हें समझकर ल.भा. में उनके बोधक शब्दों के पर्याय प्रस्तुत करना भी एक जटिल समस्या है। उदाहरण को लिए मलयायम उपन्यास 'चेम्मीन' में केरल के मछुआरों के जीवन, सामाजिक संबंधों तथा व्यवसाय से जुड़ी शब्दावली के लिए हिंदी में प्रतिशब्द मुश्किल से ही मिलेंगे। इसी प्रकार 'मैला आँचल' में प्रयुक्त रीति-रिवाज़ तथा लोक जीवन से संबद्ध शब्दावली के लिए अंग्रेज़ी में विकल्प नहीं मिल सकता। 'बीजक', 'सामा-चकेवा' जैसे शब्दों का या तो व्याख्यापरक अनुवाद करना होगा, या इन्हीं शब्दों के ल.भा. की लिपि में लिखकर टिप्पणी में इनका अर्थ स्पष्ट करना होगा। इस समस्या का यही हल है। किंतु, जेसा कि पहले भी कहा जा चुका है, इससे अनुवाद में सहजता नहीं रह जाती और उसके पाठक के निरायास रस-ग्रहण में भी बाधा पहुँचती है।

17.8 सारांश

इस इकाई में आपने अनुवाद से संबद्ध कुछ सामान्य तथ्यों पर विचार किया। आपने देखा कि अनुवाद एक भाषा या भाषा भेद द्वारा अभिहित कथ्य को दूसरी भाषा या भाषा भेद में अंतरित करने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में भाषा तो बदल जाती है, किंतु अर्थ के स्तर पर दोनों भाषाओं के कथ्य में समतुल्यता ज़रूरी है।

अनुवाद एक भाषिक प्रक्रिया है और इसक लिए अनुवादक को स्रो.भा. तथा ल.भा. के हर स्तर की बारीकियों से परिचित होना चाहिए। इसके लिए उसे भाषाविज्ञान की अच्छी जानकारी होनी चाहिए।

अनुवाद एक विज्ञान भी माना जा सकता है, कौशल भी और कला भी। वस्तुतः अनुवाद की प्रकृति में ये तीनों ही प्रवृत्तियाँ समाहित हैं और अनुवाद की विषय वस्तु के अनुसार इनमें से कोई एक प्रवृत्ति अधिक महत्वपूर्ण हो उठती है। हमारे कार्य और व्यवहार क्षेत्र के निरंतर विस्तार के साथ अनुवाद का क्षेत्र भी बढ़ता जा रहा है। आज अनुवाद हमारे जीवन तथा व्यवहार के हर क्षेत्र से जुड़ा जुआ है और विभिन्न संदर्भों के अनुसार यह अनेक प्राकर का हो सकता है। क्षेत्र के इस अपार विस्तार से ही अनुवाद की उपयोगिता भी जुड़ी हुई है। आज हमें कदम-कदम पर अनुवाद की ज़रूरत पड़ती है। साथ ही यह लक्ष्य भाषा की समृद्धि में भी योग देता है।

अनुवाद की एक निश्चित प्रक्रिया होती है, जिसके तीन चरण होते हैं – पठन तथा पाठ-विश्लेषण, संक्रमण, पुनर्गठन तथा ल.भा. में अभिव्यक्ति। अनुवाद्य विषय के अनुसार इनमें से किसी एक चरण पर कम या अधिक बल हो सकता है।

अनुवाद के क्रम में अनुवादक के समाने अनेक समस्याएँ आ सकती हैं। ये भाषिक स्तर की भी हो सकती हैं और भाषिकेतर स्तर की भी। भाषिक स्तर पर भाषा के विविध पक्षों – वर्तनी, शब्दावली वाक्य रचना तथा शैली से जुड़ी हुई समस्याएँ आती हैं और भाषिकेतर स्तर पर दोनों भाषाओं के क्षेत्रों के समाज तथा संस्कृति की विभिन्नता के कारण उभरने वाली समस्याएँ। साहित्य की विभिन्न विधाओं के अनुवाद में भी अलग-अलग तरह की समस्याएं उभरती हैं। साहित्यिक अनुवाद सामान्य अनुवाद से कुछ भिन्न होता है क्योंकि इसमें शब्दों के कोशार्थ का अनुवाद पर्याप्त नहीं होता। अनुवादक को उनके निहितार्थ या आशय तक पहुंचकर उसे अनुवाद में संप्रेषित करना होता है।

17.9 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

(1) भाषाविज्ञान की जानकारी क्या अनुवाद कर्म में सहायक होती है? यदि हाँ तो कैसे?

(2) अनुवादके प्रमुख प्राकरों की चर्चा करते हुए शब्दानुवाद, भावानुवाद तथा छायानुवाद के अंतर को स्पष्ट कीजिए।

(3) काव्यानुवाद की प्रमुख समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए उनके संभव समाधानों का भी संकेत दें।

2. टिप्पणियाँ

(1) शब्दों के लिप्यंतरण के क्रम में ध्वनि विज्ञान की जानकारी अनुवादक के लिए किस प्रकार उपयोगी सिद्ध होती है?

(2) अनुवादक के लिए अर्थ विज्ञान की जानकारी क्यों आवश्यक है? उदाहरण सहित समझाएँ।

(3) ऐसी कौन-सी स्थितियाँ हैं जहाँ अनुवादक को ल.भा. में स्रो.भा. के शब्दों के प्रतिशब्द नहीं मिलते? ऐसी स्थिति में उसके सामने कौन-कौन से विकल्प होते हैं?

(4) अनुवाद क्या सचमुच 'असंभव' होता है? शैली को दृष्टि में रखते हुए इस प्रश्न का उत्तर दीजिए।

(5) कथा साहित्य के अनुवाद में भाषिक संरचना तथा भाषिक प्रयोग के स्तर पर उठने वाली समस्याओं पर उदाहरण सहित प्रकाश डालें।

(6) सामान्य अनुवाद तथा साहित्यिक अनुवाद का अंतर स्पष्ट करें।

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(क) सही विकल्प पर निशान लगाएँ :

1. अनुवाद एक भाषिक प्रक्रिया है। (सही/गलत)
2. अनुवाद की प्रक्रिया दो भिन्न भाषाओं के बीच ही संभव है। (सही/गलत)
3. भाषाविज्ञान एक अलग विज्ञान है और अनुवाद से उसका कोई संबंध नहीं। (सही/गलत)

4. अनूदित पाठ में चूँकि केवल ल.भा. की ध्वनियों का उपयोग होता है, अतः स्रो.भा. की ध्वनियों के बारे में सचेत होने की अनुवादक को कोई ज़रूरत नहीं। (सही/गलत)
5. जहाँ स्रो.भा. के शब्दों का लिप्यंतरण होता है, वहाँ स्रो.भा. की वर्तनी को ही ल.भा. की वर्तनी का आधार बनाना चाहिए। (सही/गलत)
6. अनुवाद केवल शब्दार्थ पर आधारित नहीं हो सकता। (सही/गलत)
7. भाषा में कथ्य का संप्रेषण रूप रचना के ही माध्यम से होता है।
8. अंग्रेज़ी 'पैसिव' संरचना अर्थ की दृष्टि से हिंदी की कर्मवाच्य संरचना के समतुल्य होती है। (सही/गलत)
9. शब्दों के अर्थ संदर्भ से ही स्पष्ट होते हैं। (सही/गलत)
10. वाक्य की संरचना के अंतर के साथ उसके आशय में भी अंतर आ जाता है। (सही/गलत)
11. अनुवाद विशुद्ध विज्ञान है, कला नहीं। (सही/गलत)
12. भाषिक व्यवहार का संपूर्ण क्षेत्र ही अनुवाद का क्षेत्र हो सकता है। (सही/गलत)
13. भावानुवाद को ही छायानुवाद कहते हैं। (सही/गलत)
14. स्रो.भा. के पाठ के पठन से लेकर ल.भा. में उसकी अभिव्यक्ति तक अनुवाद को कुछ विशेष प्रक्रियाओं से गुज़रना पड़ता है। (सही/गलत)
15. अनुवाद में आशय की रक्षा के लिए स्रो.भा. की वाक्य-संरचना को ल.भा. में ज्यों का त्यों उतारना ज़रूरी है। (सही/गलत)

(घ) **नीचे दिए गए उदाहरणों में से अंग्रेज़ी मुहावरों तथा लोकोक्तियों के लिए उपयुक्त हिंदी अभिव्यक्ति का चुनाव करें : [उदाहरण – (i) –(ठ)]**

अंग्रेज़ी

(i) Golden Oppertunity, (ii) Pig Headed, (iii) A blow by blow account, (v) Round the clock, (v) Chip of the old block, (vi) On the horns of a dilemma, (vii) From the frying pan into the fire, (viii) To leave no stone unturned, (ix) To rain cats and dogs, (x) To kick off (something), (xi) To kill two birds with one stone, (xii) Handsome is that handsome does, (xiii) It's no use crying over spilt milk, (xiv) The grass is greener on the other side of the fence, (xv)An empty mind is the devils workshop

हिंदी

(क) मूसलाधार वर्षा होना, (ख) जैसा बाप वैसा बेटा, (ग) खाली दिमाग शैतान का घर, (घ) काम प्यारा होता है, चाम नहीं, (ड.) पल-पल का ब्यौरा, (च) अड़ियल (टट्टू), (छ) चौबीसों घंटे, (ज) दूर के ढोल सुहावने, (झ) ताड़ से गिरा खजूर में अटका, (ञ) भइ गति साँप छछूंदर केरी, (ट) शुरुआत करना, (ठ) स्वर्ण अवसर, (ड) एक तीर से दो शिकार, (ढ) कोई कसर उठा न रखना, (ण) अब पछताए होत का जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत

इकाई 18 भाषा तुलना

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 व्यतिरेकी विश्लेषण
  18.2.1 व्यवहारवादी सिद्धांत में व्यतिरेकी विश्लेषण
  18.2.2 व्यतिरेक की विश्लेषण : प्रक्रिया और परिणाम
18.3 भाषा त्रुटि विश्लेषण
18.4 भाषा तुलना का भाषावैज्ञानिक पक्ष
18.5 भाषा तुलना और अनुपयोग के क्षेत्र
  18.5.1 अनुवाद और भाषा तुलना
  18.5.2 भाषा-शिक्षण
  18.5.3 कोशविज्ञान
18.6 सारांश
18.7 अभ्यास प्रश्न

18.0 उद्देश्य

भाषाविज्ञान हमें भाषाओं की तुलना का आधार देता है। भाषाओं की तुलना में हमें भाषाओं की प्रकृति का ज्ञान मिलता है। भाषाओं की तुलना से प्राप्त ज्ञान का हम अनुवाद, भाषा शिक्षण आदि अनुप्रयोग के क्षेत्रों में उपयोग कर सकते हैं।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- व्यतिरेकी विश्लेषण के स्वरूप, प्रकार्य और महत्व की चर्चा कर सकेंगे,
- भाषा में त्रुटियों के विश्लेषण का महत्व समझा सकेंगे,
- भाषा तुलना का भाषा वैज्ञानिक आधार बता सकेंगे, और
- अनुवाद, भाषा शिक्षण आदि क्षेत्रों में भाषा तुलना में अनुप्रयोग का महत्व स्पष्ट कर सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

भाषाविज्ञान हमें भाषाओं के विश्लेषण और वर्णन का आधार देता है। इसी वर्णन का आधार लेकर हम दो भाषाओं में लिपि, वर्तनी, उच्चारण, शब्द रचना, वाक्य विन्यास आदि स्तरों पर दो भाषाओं की तुलना कर सकते हैं। इसी अध्ययन को भाषा तुलना की संज्ञा दी जाती है।

हनें सबसे पहले तुलनात्मक भाषाविज्ञान और भाषा तुलना में अंतर करना होगा। तुलनात्मक भाषाविज्ञान एक ही परिवार की भाषाओं की संबद्धता का अध्ययन करता है। इसका आविर्भाव इस उद्देश्य से हुआ कि हम देखें कि किन कारणों से एक ही परिवार की, समान स्रोत की भाषाओं में अंतर आया जिससे ये भाषाएँ दूर होती चली गईं। दो भाषाओं में प्राप्त समान तत्वों के आधार पर उन्हें हम एक भाषा परिवार के अंतर्गत रख सकते हैं। किसी भाषा परिवार की भाषाओं में अंतर के आधार पर हम उसके वर्गों और उपवर्गों की कल्पना कर सकते हैं, उस परिवार के इतिहास का वर्णन कर सकते हैं और इस विकास क्रम के आधार पर उस परिवार के पूर्व रूप की कल्पना कर सकते हैं।

18.2 व्यतिरेकी विश्लेषण

व्यतिरेकी विश्लेषण की हम दो भाषाओं की तुलना करते हैं। सहज रूप से यह सवाल उठता है कि तुलनात्मक भाषाविज्ञान (comparative linguistics) और व्यतिरेकी विश्लेषण में क्या अंतर है। वास्तव में इन दोनों प्रक्रियाओं में अंतर करने के उद्देश्य से हीं ये दो अलग नाम बने हैं। वैसे दोनों में भाषाओं की तुलना होती है या दूसरे शब्दों में तुलना की दृष्टि रहती है। लेकिन इनके उद्देश्यों और प्रविधि में विशिष्ट अंतर है।

तुलनात्मक भाषाविज्ञान इस विषय क्षेत्र के विकास का प्रारंभिक चरण है। आप इकाई 3 में पढ़ चुके हैं कि किस तरह संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि भाषाओं की तुलना से भाषाविज्ञान का उदय हुआ। भाषाविज्ञान की उस शाखा में प्रायः एक ही परिवार की (सगोत्रीय) भाषाओं की तुलना की जाती है। तुलना के आधार पर उनके परस्पर संबंधों का पता लगाया जाता है। उनमें परिलक्षित अंतरों की खोज करते हुए हम उनके इतिहास क्रम को जान पाते हैं। उनके ऐतिहासिक विकास की दृष्टि में परिवार की भाषाओं का वर्गीकरण किया जाता है। तुलना में केवल समान तत्वों की विभिन्नता पर प्रकाश डाला जाता है, जिससे हम मूलभूत एकता को पहचान सकें। अब तक भाषाओं की प्रकृति तथा उनके पारिवारिक वर्गीकरण पर बहुत काम हो चुका है। इस दृष्टि से यह भी कह सकते हैं कि आज तुलनात्मक भाषाविज्ञान की उपयोगिता खत्म हो चुकी है।

आज के भाषावैज्ञानिक संसार के विभिन्न भाषाओं में रचना की दृष्टि से समान तत्वों को ढूँढ़ने पर अधिक जुटे हैं। उन विद्वानों की यह प्राक्कल्पना है कि मानव भाषा में, विविध भाषा परिवारों के होते हुए कई सार्वभौम तत्व हैं, तत्वों की खोज कर लेने पर हम मनुष्यों की समस्त भाषाओं के केंद्र में निहित सार्वभौम व्याकरण (universal grammar) का पता लगा सकते हैं। इसकी थोड़ी चर्चा हम इकाई 5 में कर चुके हैं। इस प्रकरण में इस इकाई में अधिक चर्चा नहीं करेंगे।

18.2.1 व्यवहारवादी सिद्धांत में व्यतिरेकी विश्लेषण

व्यतिरेकी विश्लेषण विश्व की किन्हीं दो भाषाओं के बीच में किया जा सकता है। इसका आधार यही है कि दो भाषाओं में कुछ समान तत्व होंगे और कुछ असमान (विषय) तत्व। एक परिवार की भाषाओं में समानता अधिक होगी, दूर की भाषाओं में विषमता अधिक होगी। किन्हीं प्रयोजनों से (जिनका आगे विवेचन) विश्लेषण का उद्देश्य है। व्यतिरेक (contrast) शब्द वास्तव में रचना में विपरीतता का बोध कराता है। उदाहरण के लिए 'चल और 'जल' शब्द व्यतिरेक में हैं और अर्थ भेद करते हैं। /च/ और /ज/ ध्वनियों की व्यतिरेकी व्यवस्था ही दोनों में अर्थ भेद का आधार है। इस तरह अर्थ भेद पैदा करने वाले इन विपरीत तत्वों का पता लगाना ही व्यतिरेकी विश्लेषण का मुख्य लक्ष्य है। भाषाओं की तुलना की प्रक्रिया से ही हम व्यतिरेकी को पहचानते हैं।

व्यवहारवाद संरचनात्मक भाषाविज्ञान व्यतिरेक को भाषिक अधिकाधिक का आधार माना जाता है। दो ध्वनियों या दो शब्दों में व्यतिरेक अर्थभेद हैं। इस तरह दो भाषाओं के बीच हम व्यतिरेक के माध्यम से भिन्न-भिन्न संचनात्मक तत्वों को पहचानते हैं जो भिन्नता में और अर्थ ग्रहण में बाधा पहुँचाते हैं। इसी को भाषा शिक्षण में व्याघात (interferance) कहा जाता है। आमतौर पर मातृभाषा का दूसरी भाषा एर व्याघात होता है यानि के मातृभाषा की भाषिक इकाइयाँ दूसरी भाषा के अर्जन में व्यवधान पैदा करती हैं। उदाहरण के तौर पर हिंदी भाषी अंग्रेज़ी का 'था' ध्वनियों के उच्चारण से अर्जित नहीं है इसलिए वह Thin तथा Then शब्दों का हिंदी में क्रमशः Thin और Then बोलता है जबकि 'का' और 'न' ध्वनियाँ अंग्रेज़ी में है नहीं।

संरचनात्मक भाषा शिक्षण यह मानकर चलता है कि भाषा आदतों का समुच्चय है जब कोई नई बात सीख ली जाए तो उसे घनात्मक अंतरण (Positive transfer) कहा जाता है। जब वह सीखी न जाए या उसकी जगह कोई और वस्तु सीखी जाए तो इसे ऋणात्मक अंतरण (Negative transfer) कहा जाता है। संरचनात्मक भाषा शिक्षण सही आदत डालने पर बल देता है और इसके लिए पाठ्य बिंदुओं को निश्चय करने के लिए व्यतिरेक की विश्लेषण की सहायता लेता है।

18.2.2 व्यतिरेक की विश्लेषण : प्रक्रिया और परिणाम

व्यतिरेक की विश्लेषण में आमतौर पर भाषा के एक निश्चित क्षेत्र को चुना जाता है जैसे ध्वनियों का विश्लेषण या संध्या पदों का विश्लेषण या क्रिया के काल और पक्ष का विश्लेषण आदि। इस संदर्भ में दोनों भाषाओं की संरचनाओं का समुचित अध्ययन किया जाता है। व्यतिरेक की अध्ययन की नई दिशाएँ दिखाई पड़ती हैं।

1. किसी भाषा में कोई भाषिक तत्व है दूसरी ये नहीं जैसे हिंदी में महापुराण दुनिया में तमिल में नहीं है।

2. कहीं दोनों भाषाओं में वह भाषिक तत्व हैं लेकिन दोनों भाषाओं में इसका मूल्य अलग है। दोनों हिंदी में 'क', 'ख' दोनों अर्थ भेदक हैं जैसे 'काना', 'खाना' अंग्रेज़ी में यह ध्वनियाँ एक स्वनिम के अंग हैं अर्थभेदक नहीं है। अंग्रेज़ी में 'ख' का उच्चारण केवल उच्चारण नहीं होता 'क' का उच्चारण शब्द के और स्थानों में है।

3. भाषिक तत्व दोनों भाषाओं में भिन्न रचनाओं के द्वारा अभिव्यक्त होते हैं जैसे हिंदी में फेंक देना, गिर जाना, लिख लाना आदि। रंजक क्रिया का उपयोग है आमतौर पर कहा जाता है कि अंग्रेज़ी में रंजक क्रियाएँ नहीं है। लेकिन अंग्रेज़ी में रंजक क्रिया के स्थान पर एक मिलती जुलती व्यवस्था है। अंग्रेज़ी में क्रियाओं के साथ क्रिया विश्लेषण शब्द जोड़ कर इन्हीं संदर्भों के through-away, fall down - take down, आदि संयुक्त क्रिया आते हैं।

जब इस तरह की भिन्न रचनाएँ सामने आती हैं तो भिन्न प्रकार से प्रतिक्रिया करता है। इस तरह व्यतिरेक विश्लेषण इस बात का यत्न करता है कि भाषाओं की रचनाओं में भिन्नता के प्रतिभाओं का पूर्वानुमान करें और अध्येताओं की संभावित कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए शिक्षण का आयोजन करें।

18.3 भाषा त्रुटि दिश्लेषण

भाषा त्रुटि विश्लेषण उसी प्रकार व्यतिरेकी विश्लेषण का विरोध करता है जिस तरह चॉम्स्की का मनोवादी भाषाविज्ञान ब्लूमफ़ील्ड के संरचनात्मक भाषाविज्ञान का विरोध करता है। चॉम्स्की भाषा शिक्षण के संदर्भ में भाषा की आदत डालने पर प्रक्रिया से सहमत नहीं है उनके लिए भाषा आदि नहीं है। चॉम्स्की भाषा को नियम मानते हैं। हम लोग भाषा को सुनते हैं। मन है उसकी रचना के तत्वों को संसाधित करता है और भाषा का नियमों के रूप में आत्मसात करता है। हम इस तरह मन में नियम निर्धारण करना ही भाषा अर्जन है. जब हम भाषा अर्जित करते हैं तो इन्हीं नियमों के निर्धारण में गलती कर जाते हैं, जिसके कारण भाषा में दोष रह जाते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि इन दोषों को गौर से देखें तो यह पता लगा सकते हैं कि हम किस तरह नियमबद्ध रूप में अर्जित करते हैं अर्थात् यह दोष अर्जन की क्रिया को समझने में हमारी सहायता करते हैं।

भाषा दोष विश्लेषण में गलतियों के पूर्वानुमान के सिद्धांत को नकारा गया क्योंकि हम अकसर ये देखते हैं कि भाषाओं में भिन्नता होने के बावजूद गलतियाँ नहीं होती। उदाहरण

के तौर पर हिंदी में एक सर्वनाम है 'उसका' इसके अंग्रेज़ी में दो रूप हैं His और Her हिंदी के मुकाबले अंग्रेज़ी में व्यापक समानीकरण हैं लेकिन इसके बावजूद कोई अध्येता अंग्रेज़ी में गलती नहीं करता। एक दूसरा उदाहरण लीजिए – हिंदी में 'न' की रचना है। हिंदी में केवल पूर्ण पारा की क्रियाओं में कर्ता 'ने' लगता है जैसे – मैंने खाना खाया, राम ने किताब पढ़ी, व्यतिरेक की विश्लेषण के अनुसार हमें उम्मीद करनी चाहिए कि तमिल भाषी इन वाक्यों में 'ने' छोड़ देगा, क्योंकि उसकी भाषा में 'ने' की रचना नहीं है।

अगर तमिल भाषा में खाना खाया लिखें तो हम इसे मातृभाषा का व्याघात कहेंगे लेकिन हम देखते हैं कि हिंदी सीखने वाले तमिल भाषी कुछ समय बाद 'मैंने खाया', 'उसने बैठा' आदि वाक्य बोलना शुरू करता है। ऐसा क्यों? इसमें तो कोई व्याघात नहीं है। वास्तव में चॉम्स्की के अनुसार यह नियम का अतिप्रयोग है। इससे एक बात तो सिद्ध होती है कि नियम निर्धारण की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है इन्हीं संदर्भों में हम कहते हैं कि भाषा दोष कई तरह के हैं जिनका संबंध अध्येता के मन से है। इनका प्रभाव व्यतिरेक की विश्लेषण की अपेक्षा कहीं अधिक है।

दोष विश्लेषण को हमें मात्र वर्तनी आदि सामान्य दोषों के संदर्भ में नहीं देखना चाहिए। दोष विश्लेषण का हमारे मस्तिष्क में है, जहाँ विचार जन्म लेते हैं और अभिव्यक्ति का रूप धारण करते हैं। इसलिए बाकी की अंतरनिहित संरचना के भीतर जाकर हमें दोषों का आधार ढूँढ़ना चाहिए।

हम जब वाक्य बोलते हैं तो उसमें अपने विचारों को रचना के माध्यम से स्पष्ट करने की कोशिश करते हैं। लेकिन कभी-कभी हमारे विचार इतने गहन होते हैं कि भाषा साथ नहीं देती। बड़े-बड़े लेखकों में भी हम इस प्रकार के कथन देख सकते हैं जहाँ हम जानते हैं कि लेखक क्या कहना चाह रहा है। लेकिन अनुभव करते हैं कि लेखक का वाक्य वह संदेश नहीं दे पाता। इन स्थलों का अध्ययन हम भाषा दोष विश्लेषण में ही कर सकते हैं क्योंकि यह मन की गहराई में भाषा को ढूँढ़ने का यत्न करता है।

18.4 भाषा तुलना का भाषावैज्ञानिक पक्ष

यह सवाल उठ सकता है कि क्या मानवों की सभी भाषाएँ तुलनीय हैं? एक सवाल यह भी है कि भाषाओं की तुलना क्यों की जाती है और उससे क्या लाभ हैं? इन्हीं दोनों प्रश्नों के संदर्भ में हम भाषा तुलना की उपयोगिता की चर्चा करेंगे। इन दोनों पक्षों को हम निम्नलिखित आरेख में प्रस्तुत कर रहे हैं :

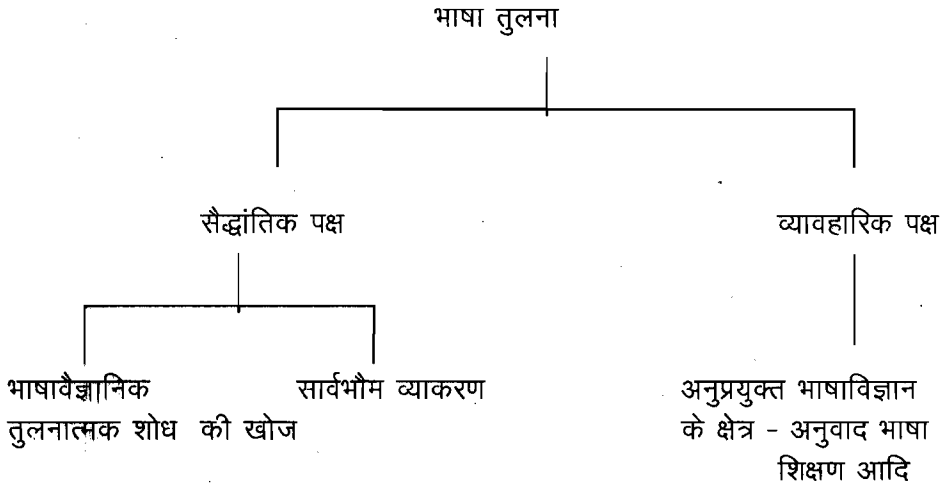

आपने पहले खंड में अध्ययन किया था कि संस्कृत और लैटिन की क्रिया, शब्द आदि की तुलना से ही आधुनिक भाषाविज्ञान का आविर्भाव हुआ। आधुनिक युग में भी चाहे ब्लूम फ़ील्ड का व्यवहारवादी संरचनात्मक भाषाविज्ञान हो, चाहे चामस्की का मनोवादी रूपांतरणपरक व्याकरण, हम विभिन्न भाषाओं की संरचना के समान तत्वों के आधार पर ही भाषाविज्ञान का ढाँचा खड़ा करते हैं। पूर्ववर्ती व्याकरण किसी एक भाषा के स्वरूप का विश्लेषण करते थे, भाषाविज्ञान मानवों की सभी भाषाओं की सामान्य विशेषताओं के आधार पर उनके वर्णन-विश्लेषण का एक सामान्य ढाँचा उपस्थित करता है। भाषाओं की तुलना के आधार पर नए तथ्य सामने आते हैं, जिन्हें सिद्धांत में शामिल कर लिया जाता है। इस तरह भाषाओं के तुलनात्मक शोध कार्य सिद्धांत निर्माण में योगदान करते हैं। दो भाषाओं की तुलना करना अपने में महत्वपूर्ण अनुसंधान का क्षेत्र है।

भाषा मनुष्य मात्र की विशेषता है। और चामस्की के संप्रदाय के विद्वान मानते हैं कि भाषा मानव की जन्मजात वृत्ति है और मानव मस्तिष्क का आंतरिक गुण है। इसका तात्पर्य यह होना चाहिए कि बाह्य संरचनागत अंतरों को छोड़कर मानवों की भाषाओं में गहरा साम्य होना चाहिए। इसी संदर्भ में आधुनिक भाषावैज्ञानिक सार्वभौम व्याकरण (universal grammar) की संकल्पना प्रस्तुत करते हैं, जिसके अनुसार विचार और संप्रेषण का मूलभूत तंत्र एक है, केवल बाह्य भाषिक संरचना के तत्व कहीं-कहीं भिन्न होते हैं। सार्वभौम व्याकरण के संदर्भ में कई कार्य हुए हैं और उनमें भाषाओं की सामान्य विशेषताओं का भी आकलन किया गया है। जैसे :

(i) सारी भाषाएँ मूलतः उच्चरित हैं। सभी में स्वर और व्यंजन ध्वनियाँ हैं।

(ii) ध्वनियों से यादृच्छिक शब्द निर्मित होते हैं। शब्दों से वाक्य की संरचना होती है।

(iii) वाक्य में उद्देश्य और विधेय होते हैं। सकर्मक वाक्य में कई क्रम मिलते हैं। जैसे, कर्ता कर्म क्रिया (हिंदी), कर्ता क्रिया कर्म (अंग्रेज़ी), क्रिया कर्म कर्ता (अरबी) आदि।

(iv) निश्चयार्थ, प्रश्नार्थ, विस्मयार्थ आदि वाक्य रूप सभी में मिलते हैं। इन रूपों के अंतःसंबंध को उस भाषा के संदर्भ में रूपांतरण के नियमों से समझाया जा सकता है।

भाषा तुलना के आधार पर ही विद्वान इस तरह के सामान्य तत्वों का पता लगा सकते हैं। इस संदर्भ में कार्य करते हुए भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा के विविध पक्षों पर कई महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित किए हैं, जैसे भाषाओं में पक्ष, भाषाओं में काल की अवधारणा, भाषा में कर्ता की संकल्पना आदि। फ़िलमोर नामक अंग्रेज़ी विद्वान ने भाषाओं में कारक की सार्वभौमिकता पर एक महत्वपूर्ण कार्य संपन्न किया है। परंपरागत व्याकरणों के आधार पर यह माना जाता है कि संस्कृत में आठ कारक हैं, लैटिन में 5 कारक हैं, अंग्रेज़ी में 3 ही कारक हैं। फिलमोर कहता है कि भाषाओं में कारक कितने हैं यह महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण यह है कि कारकीय संबंध क्या है और वाक्य संरचना में उसका क्या काम है। फ़िलमोर के अनुसार निम्नलिखित दोनों वाक्यों में दरवाज़ा (door) कर्म ही है, चाहे दूसरे वाक्य में वह व्याकरणिक कर्ता के स्थान पर आया हो।

राम ने दरवाज़ा खोला।	Ram opened the door.
दरवाज़ा खुला।	The door opened.

जब हम कहते हैं 'खाना बन गया', हम वास्तविक कर्ता का उल्लेख नहीं कर रहे हैं, लेकिन वास्तविक कर्ता के अभाव की कल्पना भी नहीं कर रहे हैं। सार्वभौम व्याकरण यही प्रयास करता है कि संप्रेषण की स्थितियों को भाषा की रचना से जोड़ा जाए जिससे विचार

और व्याकरण की अभिन्नता को मानव मात्र की भाषा में देखा जा सके। भाषा तुलना व्यापक संदर्भ में सार्वभौम व्याकरण की तलाश में एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

18.5 भाषा तुलना और अनुप्रयोग के क्षेत्र

यहाँ हम भाषा तुलना के व्यावहारिक लाभ तथा उपयोग की चर्चा करेंगे। अनुवाद, भाषा शिक्षण आदि क्षेत्र भाषाविज्ञान के क्षेत्र में प्रतिपादित सिद्धांतों का उपयोग करते रहे हैं और अपने कार्य क्षेत्र में उन सिद्धांतों के अनुप्रयोग (application) का लाभ उठाते रहे हैं। इसी कारण कुछ विद्वान अनुवाद, भाषाशिक्षण आदि विषय क्षेत्रों को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान ही क्षेत्र मानते हैं। हम उस विवाद में न जाकर यह देखना चाहेंगे कि भाषा तुलना से इन क्षेत्रों को क्या लाभ मिलता है।

18.5.1 अनुवाद और भाषा तुलना

अनुवाद में दो भाषाओं का स्थान है - स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा। यह कहा जाता है कि एक भाषा के तत्वों को दूसरी भाषा के समतुल्य तत्वों से स्थानांतरित करना ही अनुवाद है। इस तरह दोनों भाषाओं के समतुल्य तत्वों की पहचान भाषा तुलना से हो सकती है - चाहे यह ज्ञान कुशल अनुवादक की प्रज्ञा से निहित हो, चाहे भाषावैज्ञानिक शोध के आधार पर प्रतिपादित किया गया हो।

भाषा वैज्ञानिक ध्वनि, लिपि, शब्द, वाक्य आदि विभिन्न स्तरों पर भाषा की तुलना कर समतुल्य तत्वों की जानकारी देते हैं। अगर प्रयोक्ता या अनुवादक समतुल्य रूप न पहचान सके, तो भ्रामक अनुवाद होता है। इसलिए अनुवादक के लिए दोनों भाषाओं पर समान अधिकार चाहिए, साथ ही दोनों भाषाओं के तुलनात्मक विवरण का ज्ञान भी चाहिए।

लिपि स्तर पर हम भारतीय अंग्रेज़ी [u] को भारतीय [उ, ऊ] के समान मान लेते हैं। Put 'पुट' जैसे कुछ शब्दों को छोड़कर [u] का समानवर्ण [अ] है, जिसे हम कई अंग्रेज़ी शब्दों में देखते भी हैं। जैसे, हंटर, शंटिंग, कैंपस, बस। फिर भी हम अपरिचित तथा व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्दों में [उ] का प्रयोग करने लगते हैं, जैसे बज़ (buzz), गुन्थर (Gunther)।

उच्चारण के स्तर पर हिंदी और द्रविड़ भाषाओं में समानता होते हुए भी अंग्रेज़ी की मध्यस्थता के कारण हिंदी अनुवादक दक्षिण के शब्दों के उच्चारित रूप को नहीं पहचानते। Muthu (मुत्तु), संस्कृत मौक्तिक से निकला तद्भव रूप है, जैसे हिंदी का 'मोती'। लेकिन अंग्रेज़ी के माध्यम से देखने पर अनुवादक इसे 'मुथु' लिखते हैं। इसी तरह थिम्मय्या, सुमथि, थिरुवारुर आदि लिप्यंतरित रूप (उच्चारण न पहचानने के कारण) गलत हैं।

शब्द और *अर्थ* के स्तर पर विस्तृत अध्ययन और व्यापक शोध अनुवादक के लिए परम आवश्यक है। भाषाओं में शब्द और अर्थ का सामंजस्य एक जैसा नहीं होता। दो उदाहरण लीजिए :

(i)	हिंदी अभ्यास	अंग्रेज़ी	practice
	अंग्रेज़ी practice	हिंदी	अभ्यास
			रिवाज़
	अंग्रेज़ी exercise	हिंदी	अभ्यास
			व्यायाम
(ii)	अंग्रेज़ी authority	हिंदी	प्राधिकार (अमूर्त भाव)
			प्राधिकरण (संस्था)
			प्राधिकारी (व्यक्ति)
		हिंदी	विशेषज्ञ विद्वान

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि अनुवादक को यह जानना चाहिए कि शब्द का किस संदर्भ में प्रयोग हुआ है और दूसरी भाषा में कौन-सा समतुल्य प्रयोग है। इसके अभाव में ही निम्न प्रकार के भ्रामक और हास्यास्पद अनुवाद हो जाते हैं।

मूल	**सही अनुवाद**	**भ्रामक अनुवाद**
One lakh sleepers	एक लाख रेल के	एक लाख सोने वाले
washed away in the river	स्लीपर नदी में बह गये।	नदी में बह गये।
Sub-marine	जलमग्न पाइप	पनडुब्बी पाइप
piped laid	बिछाये गये।	बिछाये गये।

पदबंध स्तर पर प्रायः भारत के अन्य प्रांतों के निवासी 'घर को जाना', 'स्कूल को जाना' आदि का प्रयोग करते हैं। तुलना करने पर ज्ञात होता है कि हिंदी में 'जाना' क्रिया के प्रयोग में गंतव्य स्थान के साथ 'को' का प्रयोग नहीं होता।

क्रियाओं के प्रयोग में भाषाओं में काफ़ी अंतर होता है। ऐसे स्थलों में क्रिया रचना की तुलना हमें समतुल्य प्रयोग की जानकारी देती है। तुलना के ऐसे कुछ उदाहरण देखिए :

(i) गुलाब लाल होता है। Rose is red.
यह गुलाब ताज़ा है। This rose is fresh

'है' तात्कालिक क्रिया है, वस्तुस्थिति सूचित करती है, 'होता है' नित्य सत्य सूचित करती है, सार्वभौम क्रिया है।

(ii) He went to Agra. वह आगरा गया।
He worked throughout the day. वह पूरा दिन काम करता था।

अंग्रेज़ी की एक क्रिया हिंदी में दो संदर्भों में आती है।

(iii) She saw a book. उसने एक किताब देखी।
She sold the book. उसने घर बेच दिया।

हिंदी की रंजक क्रिया और अंग्रेज़ी की artick की व्यवस्था में तालमेल है। यहाँ शाब्दिक स्तर पर a/the या बेच देना ही समतुल्यता नहीं बता सकते।

(iv) वह स्कूल में पढ़ता है।
वह इस समय किताब पढ़ रहा है।

तमिल भाषा में दोनों स्थितियों में क्रिया 'पटिक्किरान' का प्रयोग होता है।

ऐसे संदर्भों में भाषा तुलना हमें समतुल्य प्रयोग की सूचना देती है, जिससे अनुवादक उपयुक्त प्रयोग चुन सके।

वाक्य विन्यास के स्तर पर भी भाषाओं में अंतर के कई स्थल हैं। यहाँ हम केवल दो-तीन प्रमुख उदाहरण लेंगे।

(i) अंग्रेज़ी 'have' के वाक्यों के समतुल्य रूप :

I have a pen	मेरे पास एक कलम है।
I have a servent	मेरे पास एक नौकर है।
I have two sons	मेरे दो बेटे हैं।
	(तमिल में 'मुझे दो बेटे हैं')
Animals have tails	जानवरों के पूँछ होती है।
These houses have two rooms	इन घरों में दो कमरे हैं।
I have fever	मुझे बुखार है।
I have patience	मुझमें धैर्य है।

विभिन्न स्थितियों में अलग-अलग वाक्य संरचनाओं के प्रयोग के कारण उपयुक्त समतुल्य वाक्य चुनना आवश्यक है। अन्यथा 'मेरे पास दो बेटे हैं' जैसा भ्रामक और निरर्थक अनुवाद होगा।

(ii) हिंदी और अंग्रेज़ी में वाच्य की व्यवस्था है, लेकिन अंग्रेज़ी में भाववाच्य नहीं है। समतुल्य वाक्य देखिए :

मुझसे बोलना नहीं जाएगा।	I just can't speak.
मुझसे यहाँ बैठा नहीं जा रहा है।	I just can't sit here.
हमसे सोया नहीं गया।	We just couldn't sleep.

यहाँ हमें संरचना की समतुल्य रचना नहीं, संदर्भगत समतुल्य प्रयोग पर बल देना होगा।

(iii)	वह काम कर चुका है	He has finished the work.
	उसने काम पूरा नहीं किया है	He has not finished the work.

हिंदी में 'चुक' के साथ 'नहीं' का प्रयोग नहीं होता। इस कारण निषेध की स्थिति में हमें भिन्न प्रकार की वाक्य रचना अपनानी पड़ती है। इसी तरह

I have told him	मैंने उसको बता दिया है
	मैं उसको बता चुकी हूँ

यहाँ एक अंग्रेज़ी वाक्य के लिए दो विकल्प उपलब्ध हैं। अनुवादक के लिए आवश्यक है कि वह उपलब्ध विकल्पों और प्रयोग की सीमाओं को ध्यान में रखकर समतुल्य रूप चुने।

18.5.2 भाषा-शिक्षण

भाषा शिक्षण में पाठ्य बिंदुओं के चयन (selection), अनुस्तरण (gradation) तथा कक्षा में प्रस्तुतीकरण (presentation) में भाषाविज्ञान के सिद्धांतों और मान्यताओं का उपयोग होता ही है। अन्य भाषा या विदेशी भाषा के रूप में भाषा शिक्षण के शिक्षण में भाषा की तुलना का अत्यंत महत्व है। मान लीजिए कि छात्र 'भारत' को 'बारत' और घर को 'गार' बोलता है तो सजग अध्यापक समझ जाता है कि छात्र महाप्राण ध्वनियों से परिचित नहीं है, संभवतः उसकी भाषा में महाप्राण ध्वनियाँ नहीं हैं। इस तरह छात्रों की कठिनाइयों को पहचानने और निवारण करने में भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन अध्यापकों की बहुत सहायता करता है। इसी तरह वाक्य के स्तर पर छात्र 'मैं खाना खाया हूँ'। 'मैं खाना खायी हूँ' बोलें तो अध्यापक समझ सकता है कि छात्रों को 'ने' की संरचना से परिचित कराने की आवश्यकता है।

चयन के अंतर्गत हम यह निर्णय करते हैं कि छात्रों को क्या और कितना पढ़ाया जाए। प्रारंभ से हिंदी सीखने वाले अन्य/विदेशी भाषी छात्र भाषा के सभी अंगों से परिचित नहीं होते। अपनी भाषा के प्रभाव के कारण उन्हें ध्वनि, लिपि, वर्तनी, शब्द, वाक्य सभी अंगों में कठिनाई होती है और वे गलतियाँ भी करते हैं। हमें यह चुनना होगा कि उन्हें कौन-कौन से भाषा तत्व सिखाए जाएँ। अनुस्तरण में हम उन पाठ्य बिंदुओं को प्रस्तुत करने के क्रम की चर्चा करते हैं। इन दोनों सोपानों में हमारे लिए यह जानना आवश्यक होगा कि छात्रों की मातृभाषा क्या है, उसकी लक्ष्य भाषा से भिन्नता के स्थल क्या हैं, जहाँ कठिनाई हो सकती है, किन पाठ्य बिंदुओं पर बल दिया जाना है आदि। चयन और अनुस्तरण में भाषा तुलना पाठ्यचर्या निर्धारण और पाठ्य सामग्री निर्माण में योगदान करती है।

सीखने वालों की मातृभाषा की पहचान भाषा शिक्षण की पूरी योजना को दिशा देती है। अगर हम चीनी या स्पैनिश भाषा-भाषी को हिंदी सिखाने की योजना तैयार करें तो हमें लिपि, उच्चारण सिखाने में भी काफ़ी समय लगाना पड़ेगा और धीरे-धीरे एक-एक करके

वाक्य संरचनाओं को प्रस्तुत करना होगा। अगर हम गुजराती भाषी को हिंदी सिखाना चाहें, तो लिपि, उच्चारण, वर्तनी में न्यूनतम समय लगेगा और 'माँ ने उस लड़के को स्टेशन भेज दिया है' जैसी रचना भी शुरू में ही आराम से सिखा सकते हैं। (क्योंकि गुजराती की वाक्य रचना 'माँ ए ओ छोकरा नू स्टेशन मोकलावी दीधो' हिंदी से बहुत मिलती है)। इस कारण सगोत्रीय भाषाओं (cognate language) का शिक्षण विदेशी भाषा शिक्षण से भिन्न होगा और इसका आधार भाषा की तुलना ही है।

भाषा शिक्षण का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है कक्षा में अध्यापक द्वारा सामग्री का प्रस्तुतीकरण। इस सोपान में अध्यापक के सामने छात्रों की वास्तविक कठिनाइयाँ प्रकट होती है। अध्यापक छात्रों की त्रुटियों को पहचानता है, उनके कारण का अनुमान करता है और आवश्यक उपचार ढूँढ़ता है। त्रुटियों को पहचान कर उनका उपचार करना उपचारात्मक शिक्षण (remedial teaching) कहलाता है। इसमें अध्यापक भाषा तुलना में सहायता लेता है।

नये पाठ्यबिंदुओं को प्रस्तुत करते समय भी अध्यापक छात्रों की मातृभाषा के ज्ञान का उपयोग कर सकता है। इसके लिए उसके पास तुलनात्मक दृष्टि होनी चाहिए। उदाहरण के तौर पर हिंदी की क्रिया 'किया करो' का अंग्रेज़ी में समतुल्य प्रयोग क्रिया विशेषण regularly, constantly से सिद्ध होगा :

नियमित रूप से व्यायाम किया करो।	Exercise regularly.

जब छात्रों को इस समतुल्य प्रयोग से अवगत करा दिया जाए, तो उन्हें निम्नलिखित वाक्यों के संदर्भ को समझने में आसानी होगी :

रोज़ एक पन्ना लिखा करो।
मुझे तंग मत किया करो।

18.5.3 कोशविज्ञान

भाषा में विविध प्रकार के शब्दकोशों के निर्माण के सिद्धांत और व्यावहारिक ज्ञान को कोशविज्ञान कहते हैं। किसी भी कोश के निर्माण में भाषा के सम्यक् ज्ञान की आवश्यकता होती है, क्योंकि कोशकार कोश की प्रविष्टियों के चयन और निर्धारण भाषा के सभी अंगों के ज्ञान का आधार लेता है और प्रविष्टियों में जो सूचनाएँ देता है उसके संदर्भ में भी उसे भाषाई ज्ञान की आवश्यकता है जैसे उच्चारण (ध्वनिविज्ञान), वर्तनी का रूप (वर्णविज्ञान), लिंग, वचन आदि व्याकरणिक सूचनाएँ (वाक्यदिज्ञान) शब्दों के अर्थ, प्रयोग, पर्याय, विलोम आदि (अर्थविज्ञान)। इस कारण कोशविज्ञान को कई विद्वान अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की ही एक शाखा मानते हैं।

द्विभाषी कोश के निर्माण में इन सभी अंगों के संदर्भ में पांडित्यपूर्ण तुलनात्मक दृष्टि आवश्यक है। यहाँ हम वाक्य विन्यास और शब्दार्थ संबंधी कुछ पहलुओं को लेकर भाषा तुलना की आवश्यकता की चर्चा करेंगे।

हिंदी में निपात नाम का एक शब्द वर्ग है जिसके दो प्रमुख सदस्य हैं 'ही' और 'तो'। शब्द स्तर पर इनका अनुवाद नहीं हो सकता, क्योंकि अंग्रेज़ी में इनके समतुल्य शब्द नहीं हैं। हिंदी के इन शब्दों को हम अंग्रेज़ी में वाक्य के स्तर पर ही, समान संदर्भ से समझ सकते हैं। जैसे :

तुम तो पागल हो	You are just crazy
हम तो चार बजे निकल गए	Well, we had left at four
छोटी दुकान है, घी तो नहीं मिलेगा	We sure cant get 'ghee' here
अच्छा, पानी तो मिलेगा	We can at least get some water

कोशकार को चाहिए कि वह दोनों भाषाओं की तुलना करे, इस तरह के तमाम प्रयोगों को इकट्ठा करे और प्रयोग के स्तर समतुल्यता के प्रकार निश्चित करे। इसमें वह व्याकरण ग्रंथों से सहायता ले सकता है, लेकिन प्रस्तुतीकरण में द्विभाषी दृष्टि आवश्यक है।

अर्थ देने में भाषा के प्रयोग संदर्भ की पकड़ ज़रूरी है। अगर कोशकार father का अर्थ 'बाप' दे दे, तो विदेशी भाषी पूछ सकता है :

यह कार तुम्हारे बाप की है?

वास्तव में वह जानना चाहता है कि यह गाड़ी तुम्हारे पिता जी की है? उसका उद्देश्य गाली देना नहीं है। लेकिन गलत शब्द के प्रयोग से कैसा अनर्थ हो सकता है, इसके लिए एक दूसरा उदाहरण लीजिए। शब्द है pig शाब्दिक अर्थ सुअर। कोशकार ने मुहावरेदार प्रयोग के संदर्भ में दूसरा अर्थ भी दिया है – झिड़कने का शब्द। अगर हम किसी व्यक्ति को अंग्रेज़ी में pig कहेंगे, तो उसका अर्थ इतना ही होगा – तुम नासमझ हो। याने हिंदी में इसका समान मुहावरेदार प्रयोग होगा – तुम उल्लू हो। लेकिन हिंदी में 'सुअर' कहें तो वह ज्यादा गंभीर अर्थ देता है – तुम घृणित हो, निकृष्ट या नीच हो। इस कारण कोशकार को शब्दार्थ देने में शब्दों के सांस्कृतिक संदर्भों को जानना होगा।

शब्दों के सामाजिक संदर्भों को भी कोशकार को प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करना होगा। हिंदी में 'तुम' और 'आप' दो सर्वनाम हैं। आमतौर पर व्याकरण में इन्हें क्रमशः एकवचन और बहुवचन कहते हैं। सच्चाई यह है कि ये दोनों एकवचन हैं। इनमें अंतर घनिष्ठता और औपचारिकता का है। दोनों के बहुवचन रूप हैं – तुम लोग, तुम दोनों, तुम सब, आप लोग, आप दोनों, आप सब। भाषाओं की तुलना से फिर दूसरी भाषा के समान संदर्भों और प्रयोगों की समतुल्यता के आधार पर प्रस्तुत करना होगा।

अर्थ के प्रतिपादन में नामांकन उपयोगी होता है, जिससे पाठक यह समझ सके कि अमुक शब्द किन शैलियों में प्रयुक्त होगा। हिंदी में कमल शब्द के कई पर्याय हैं – जलज, नीरज, पंकज, पद्म, राजीव, आमतौर पर कोश इन सभी शब्दों के लिए अंग्रेज़ी अर्थ lotus देंगे। लेकिन प्रकार्य की दृष्टि से ये सभी समान नहीं हैं। केवल 'कमल' बोलचाल का शब्द है, शेष सभी साहित्यिक शैली के शब्द हैं। अतः शेष शब्दों के सामने 'साहित्यिक शब्द' लिखना आवश्यक होगा, अन्यथा छात्र अपनी इच्छा से कह सकते हैं – उस तालाब में बहुत से राजीव खिले हैं। इस तरह के अन्य नामांकन के उदाहरण हैं :

घामड़	(बोली)	–	बुद्धू
प्रपत्र	(पारिभाषिक)	–	सबके लिए सूचना का पत्र
मूतना	(अशिष्ट)	–	पेशाब करना
पनसाल	(आर्ष/अप्रचलित)	–	जहाँ मवेशी पानी पीते हैं

कोशकार को अर्थविज्ञान के तुलनात्मक अध्ययनों से ऐसे शब्दों की विशेषताओं की जानकारी मिल सकती है।

18.6 सारांश

तुलनात्मक भाषाविज्ञान लगभग ढाई सौ वर्ष पुराना अध्ययन क्षेत्र है, जो आधुनिक भाषाविज्ञान का पूर्व रूप है। तुलनात्मक भाषाविज्ञान की सहायता से ही लोगों ने विश्व की सभी भाषाओं का अध्ययन किया, उन्हें परिवारों में बाँटा। भाषाओं की तुलना करते समय विद्वानों ने यह भी अनुभव किया कि एक परिवार की दो भाषाओं में अंतर ऐतिहासिक

कारणों से, भाषा परिवर्तन के द्वारा आया है। इससे विद्वानों में ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में रुचि बढ़ी।

भाषा तुलना आधुनिक अध्ययन क्षेत्र है। हम विश्व की किन्हीं दो भाषाओं की तुलना कर सकते हैं। इससे भी भाषा के अध्ययन का एक नया क्षेत्र खुला। हम विश्व की भाषाओं की रचनाओं का अध्ययन करते हुए भाषा के उन तत्वो और अभिव्यक्तियों तक पहुँचते हैं, जो सार्वभौमिक रूप से सभी भाषाओं में पाए जाते हैं। इस तरह के अध्ययन से हम सार्वभौम व्याकरण की संकलप्ना को साकार करने में सफल हो सकते हैं।

भाषा तुलना के व्यावहारिक उपयोग क्या हैं? संरचनात्मक भाषाविज्ञान के सिद्धांतों के अनुसार संरचना की दृष्टि से भिन्न तत्व कठिनाई पैदा कर सकते हैं। उन्होंने भाषा तुलना के आधार पर इन विषम स्थलों को ढूँढ़ा और उनके निवारण के उपायों को पाठ्यक्रम में समाविष्ट किया। इसे वे व्यतिरेकी विशेषण कहते हैं। उनके अनुसार व्यतिरेकी विश्लेषण पाठ्यक्रम निर्धारण और कक्षा में प्रस्तुतीकरण आदि के संदर्भ में अत्यंत उपयोगी है।

व्यतिरेकी विश्लेषण विपरीत रचनाओं की स्थिति में दोष का पूर्वानुमान करता है, जिससे ऐसे प्रसंगों में गलती (ऋणात्मक अंतरण या गलत आदत पड़ना) होने ही न दी जाए। चॉम्स्की का मनोवादी सिद्धांत इन दोनों बातों का खंडन करता है। भाषा आदत नहीं है और ऋणात्मक अंतरण जैसी कोई बात नहीं है। हम सब भाषा सीखते समय नियम निर्धारण करते हैं और उस प्रक्रिया में दोषों का होना सहज ही नहीं, दुर्निवार्य हैं। हममें से कोई बिना गलती किए कोई भाषा नहीं सीख सकता। चॉम्स्की यह भी कहते हैं कि दोषों के पूर्वानुमान की संकल्पना भी व्यावहारिक नहीं है। हम भिन्न रचनाएँ होने पर कई जगह गलतियाँ नहीं करते। उनके अनुसार विचारों को अभिव्यक्ति तक लाते समय अक्सर नियम साथ नहीं देते। ऐसे ही दोषों से हम यह जान सकते हैं कि मन में भाषा के अर्जन की प्रक्रिया कैसे काम कर रही है।

इकाई के अंत में भाषा तुलना के व्यावहारिक पक्ष पर प्रकाश डाला गया है। अनुवाद, भाषा शिक्षण, कोशविज्ञान आदि अनुप्रयोग के क्षेत्रों में दो भाषाओं की तुलना अपने कार्य को समुचित रूप से संपन्न करने में हमारी सहायता का सकती है।

18.7 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

(1) व्यतिरेकी विश्लेषण और भाषा दोष विश्लेषण की तुलना कीजिए।

(2) भाषा के अनुप्रयोग के क्षेत्रों में भाषाओं की तुलना कहाँ तक हमारे कार्य में सहायत होती है?

2. टिप्पणियाँ

(1) भाषा दोष (त्रुटि विश्लेषण)

(2) भाषा शिक्षण में भाषा तुलना की उपादेयता

(3) भाषाविज्ञान में भाषा तुलना की उपादेयता

इकाई 19 शैलीविज्ञान

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य
19.1 प्रस्तावना
19.2 शैली क्या है?
  19.2.1 पाश्चात्य काव्यशास्त्र में शैली
  19.2.2 भारतीय साहित्यशास्त्र में शैली
  19.2.3 आधुनिक शैली संबंधी अवधारणाएँ
19.3 शैलीविज्ञान क्या है?
  19.3.1 बहिरंग आलोचना और अंतरंग आलोचना
  10.3.2 शैलीविज्ञान का नामकरण
19.4 शैलीविज्ञान का विकास
19.5 शैलीविज्ञान और भाषाविज्ञान
19.6 शैलीविज्ञान और साहित्यिक आलोचना
19.7 कविता का शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण
19.8 सारांश
19.9 अभ्यास प्रश्न

19.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- बता सकेंगे कि शैली से क्या अभिप्राय है;
- शैलीविज्ञान के स्वरूप, क्षेत्र और विकास पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- शैलीविज्ञान और भाषाविज्ञान में अंतर बता सकेंगे;
- शैलीविज्ञान और साहित्यिक आलोचना में अंतर कर सकेंगे; और
- किसी साहित्यिक कृति का शैलीविज्ञानिक विवेचन करने का प्रयास कर सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

आप जानते हैं कि अब साहित्य का अध्ययन या तो काव्यशास्त्रीय दृष्टि से होता रहा है या भाषावैज्ञानिक दृष्टि से। वास्तव में ये दोनों एकांगी दृष्टिकोण हैं। इनमें से किसी एक दृष्टि से अध्ययन करने पर साहित्य का सही और सार्थक विश्लेषण नहीं हो पाता, क्योंकि साहित्य एक भाषिक कला है। इसमें कलात्मकता, सर्जनात्मकता तथा साहित्यिकता की प्रमुखता तो रहती ही है किंतु भाषा की भूमिका भी गौण नहीं होती! साहित्य का जन्म भाषा के गर्भ से ही होता है। भाषा ही इसकी शक्ति है। भाषा के बिना साहित्यकार अपनी साहित्य रचना नहीं कर पाता। भाषा की शक्ति से ही वह अपने भावों, विचारों और अनुभवों तथा अनुभूतियों की पूर्ण अभिव्यंक्ति करने में समर्थ होता है। भाषा की इस शक्ति को शैली कहते हैं। इस प्रकार शैली भाषा का सर्जनात्मक प्रयोग है जिसमें कलात्मक सौंदर्य और भाषिक संरचना का संयोजन होता है। अतः शैली का अध्ययन साहित्य के अध्ययन से अधिक व्यापक होता है, क्योंकि शैली का अध्ययन भाषा और साहित्य के विभिन्न मानकों की पृष्ठभूमि में होता है। इस अध्ययन को साहित्य का भाषापरक अध्ययन कहते हैं जिसे शैलीविज्ञान कहा गया है। इसमें साहित्य के भीतर भाषा के परीक्षण के लाभ के साथ-साथ यह भी पता चलता है कि साहित्य और भाषा एक दूसरे का पोषण और परिमार्जन किस प्रकार करते हैं। इसी कारण यहाँ शैली और शैलीविज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए

उसके सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्ष का विवेचन किया जा रहा है। वस्तुतः शैलीविज्ञान साहित्य को समझने-समझाने का अध्ययन है। इसके एक ओर शैली के साक्ष्य पर साहित्यिक कृति की संरचना और बुनावट का विवेचन होता है तो दूसरी ओर कृति में निहित सर्जनात्मकता और साहित्यिकता का उद्‌घाटन होता है।

19.2 शैली क्या है?

मनुष्य सृजनशील प्राणी है। वह विभिन्न संदर्भों, स्थितियों और उद्देश्यों से विभिन्न प्रकार से भाषा का प्रयोग करता है। भाषा के ये प्रकार विविधता लिए हुए होते हैं। यह विविधता और विषमता काल-विशेष, स्थान-विशेष, समाज-विशेष, व्यक्ति-विशेष, विधा-विशेष और प्रयुक्ति-विशेष आदि के कारण पाई जाती है। काल-विशेष मे भाषा के विकास-क्रम के विभिन्न चरणों में भाषा के कई रूप मिलते हैं जैसे – पुरानी हिंदी और आधुनिक हिंदी अथवा छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि के हिंदी-रूप। स्थान-विशेष में विभिन्न क्षेत्रों के भाषा-प्रकार अर्थात् अवधी, ब्रज, भोजपुरी, खड़ीबोली आदि बोलियाँ देखी जा सकती हैं। समाज-विशेष में समाज के विभिन्न वर्गों और स्तरों – शिक्षित और अशिक्षित, उच्च वर्ग और निम्न वर्ग आदि की शैलियाँ दिखाई देती हैं। व्यक्ति-विशेष में गांधी, नेहरु, निराला, पंत, रामचंद्र शुक्ल आदि की विशिष्ट शैलियाँ मिलती हैं। विधा-विशेष में उपन्यास, नाटक, कहानी आदि में भाषा के अलग-अलग रूप मिल जाते हैं। प्रयुक्ति-विशेष में विशिष्ट कार्यक्षेत्रों और विषयक्षेत्रों के भाषा-भेद अर्थात् कार्यालयीन, वाणिज्यिक, तकनीकी, साहित्यिक आदि शैलियाँ मिलती हैं। इस प्रकार मनुष्य की भाषा में जो विविधताएँ पाई जाती हैं उन्हें भाषा की शैलियाँ कहा जाता है। यद्यपि ये भाषा-भेद, एक-दूसरे से भिन्न हैं किंतु अलग-अलग उद्देश्यों, संदर्भों और स्थितियों में अभिव्यक्ति की अलग-अलग रीति होने के कारण ये शैली कहलाते हैं।

19.2.1 पाश्चात्य काव्यशास्त्र में शैली

पश्चिम में 'स्टाइल' शब्द मुख्यतः लेखन की विशेषता के रूप में आया है। इस शब्द की व्युत्पत्ति लेटिन भाषा के 'स्टीलस' (Stilus) से हुई जिसका अर्थ था 'लौह लेखनी'। प्राचीन रोमनकाल में इस लौह लेखनी से मोमचढ़ी पट्टियों पर या कागज़ों पर लिखा जाता था, किंतु बाद में यह शब्द अभिव्यक्ति का प्रतीक बन गया। इसका प्रयोग 'लिखने की विशिष्ट शैली' अथवा 'स्व की अभिव्यक्ति की रीति' के रूप में होने लगा। धीरे-धीरे इसकी संकल्पना का विस्तार हुआ और इसका प्रयोग साहित्येतर क्षेत्रों में अर्थात् बोलने-चालने, खेलने-कूदने, लड़ने-भिड़ने, नाचने-गाने, पढ़ने-पढ़ाने, खाने-पीने, वेश-भूषा आदि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में होने लगा है। इसकी व्यापकता का प्रमाण अंग्रेज़ी के केवल आक्सफ़ोर्ड कोश में ही मिल जाता है। इसमें इसके उप मुख्य अर्थ दिए गए हैं जिनें 28 संज्ञा के रूप में और 6 क्रिया के रूप में तथा 70 अर्थ गौण दिए गए हैं। 'शैली' शब्द का प्रयोग अंग्रेज़ी के 'स्टाइल' शब्द के आधार पर हो रहा है और यह प्रायः अभिव्यक्ति की पद्धति या रीति का बोध कराती है।

यह ध्यान देने की बात है कि पाश्चात्य काव्यशास्त्र में शैली का तार्किक विवेचन बहुत कम हुआ है किंतु उसकी विशेषताओं और उसके गुण-दोषों के बारे में काफ़ी चर्चा हुई है। सर्वप्रथम प्लेटो ने काव्यभाषा का विवेचन करते हुए शैली की व्याख्या न कर उसके तीन भेद बताए – सहज, विचित्र और मिश्रित शैली। अरस्तु ने शैली की महत्ता पर चर्चा करते हुए स्पष्टता और औचित्य शैली के दो गुण माने हैं। होरेस ने शैली में विवेक, शब्द-योजना, स्पष्टता आदि गुणों को माना है। अट्ठाहरवीं शताब्दी से पूर्व शैली का प्रयोग कवि के लिए शिक्षागत होता था लेकिन उसके बाद शैली का विश्लेषण काव्य के संदर्भ में होने लगा। वास्तव में काव्य में संवेदनशीलता के साथ भाषा-प्रयोग का समन्वय रहता है। कवि की

भाषा में बहुत से ऐसे नए शब्द अथवा शब्दों के नए अर्थ प्रयुक्त होते हैं जिनमें अभिव्यंजना-शक्ति होती है। वाल्टर रेले ने शब्द और अर्थ की अभिन्नता पर बल देते हुए 'अर्थ के लिए शब्द ढूँढ़ना और शब्द के लिए अर्थ ढूँढ़ना ' की बात कही है। इस प्रकार पाश्चात्य काव्यशास्त्र में भाव और भाषा के पारस्परिक संबंधों पर बल दिया गया है। पहले भाव तथा विचार पैदा होते हैं और उनके अनुकूल भाषा बनती है और तदनंतर भाषा की काया में शैली की प्राण-प्रतिष्ठा होती है। इसीलिए पश्चिमी आचार्यों ने भव्य शैली के लिए सरलता, स्पष्टता, प्रभावोत्पादकता, लयात्मकता आदि को किसी-न-किसी प्रकार से भाषा में अनुस्यूत माना है। शैली एक ऐसी विलक्षण और विशिष्ट पद्धति है जिसमें जातिगत तथा व्यक्तिगत विशिष्टताओं का, प्राचीनता एवं नवीनता का, स्थायित्व और परिवर्तन का एक विचित्र समन्वय और संयोजन होता है।

19.2.2 भारतीय साहित्यशास्त्र में शैली

भारतीय वाङ्मय के लिए 'शैली ' शब्द नया शब्द नहीं है हालांकि इस पर प्रत्यक्ष रूप से चर्चा नहीं हुई। इस शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'शील ' धातु से मानी गई है – शीलमेव स्वार्थोष्यड्. डीपिः य लोपः। शील के अनेक अर्थ दिए गए हैं – स्वभाव, लक्षण, झुकाव, आदत, चरित्र आदि। इसलिए 'शील ' शब्द का संबंध व्यक्ति की विभिन्न विशेषताओं से जुड़ा हुआ है। बाद में इसका प्रयोग वास्तुकला, चित्रकला, स्थापत्यकला, संगीतकला आदि विभिन्न कलाओं में होता रहा है। साहित्य में अभिव्यक्ति की रीति के अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण भारतीय साहित्यशास्त्र में इसके लिए वृत्ति, प्रवृत्ति, रीति और काव्यमार्ग शब्दों का प्रयोग मिल जाता है।

भारतीय साहित्यशास्त्र में रीति सिद्धांत शैली के काफ़ी निकट जा पड़ता है किंतु इसमें वक्रोक्ति, ध्वनि, अलंकार, रस और औचित्य सिद्धांतों का भी कम योगदान नहीं रहा। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में इसका प्रतिपादन करते हुए जिन वृत्तियों और प्रवृत्तियों का विवेचन किया है उनमें संसार के विभिन्न देशों की वेशभूषा, भाषा, आचार व व्यहवार, वार्तालाप आदि का विश्षलेण मिलता है। यहाँ से रीति-संबंधी संकेत मिल जाते हैं क्योंकि वृत्ति मानसिक तत्व है, इसका व्यक्त रूप प्रवृत्ति है और इन प्रवृत्तियों का सामूहिक तथ सामान्यीकृत रूप रीति है। भरत ने रीति को वक्ता के स्वभांव, उसकी संस्कृति या उसकी प्रादेशिक विशेषताओं को समीप लाने का प्रयास किया है और उसी के आधार पर दाक्षिणात्य, आवंती, औड्रमागधी और पांचाली चार प्रवृत्तियों का उल्लेख किया। बाद में दंडी ने इन प्रवृत्तियों को वैदर्भ काव्यमार्ग, गौडीय काव्यमार्ग आदि कहा। उन्होंने काव्यमार्गों का यह वर्गीकरण भरत द्वारा प्रतिपादित रसाश्रित गुणों के आधार पर किया और गुण रूपी काव्यप्राण को शैली का नियामक माना तथा अलंकारों को उसका शोभाकारी धर्म। वामन ने काव्यमार्ग को भाषायी आधार पर स्पष्ट करते हुए रीति की अवधारणा रखी और रीति को पदो कीं विशिष्ट रचना कहा – विशिष्टः पद रचना रीतिः। इस पदरचना की विशिष्टता गुण है – विशेषो गुणात्मा। ये गुण काव्यार्थ के शोभाकारक धर्म हैं। इस प्रकार भरत की प्रवृत्ति और दंडी के काव्यमार्ग को वामन ने रीति की संज्ञा दी है।

भामह ने भारत द्वारा प्रतिपादित प्रवृत्तियों की प्रादेशिकता और वर्गीकरण की ओर ध्यान न देकर उन्हें काव्य के अंतर्गत रखा। काव्य का विवेचन करते हुए शब्द और अर्थ के पारस्परिक संबंधों पर बल दिया – 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् '। भामह ने भाषा और काव्य में अंतर करते हुए सामान्य शब्दार्थ को वार्ता माना। काव्य में शब्द और अर्थ दोनों की वक्रता का अंतर्भाव माना – वक्रांमिधेय शब्दोक्तिरिष्टा वाचामलंकृति। इस काव्य का मूल अलंकार वक्रोक्ति है जो 'अतिशय उक्ति ' या शब्दार्थ की रमणीयता का ही रूप है। वक्रोक्ति के बिना काव्य काव्य नहीं, वरन् सामान्य कथन या वार्ता होता है। तत्पश्चात् कुंतक ने वक्रोक्ति

को अलंकार न मानते हुए कहा कि वक्र कवि व्यापारशालिनी रचना शब्द-अर्थ सहित काव्य के रूप में आनंद प्रदान करने वाली हाती है :

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापार शालिनी
बंधे व्यवस्थितौ काव्यं तदिवाह्लादकारिणी।

इस प्रकार वक्रोक्ति वह उक्ति अथवा कथन शैली है जो व्यावहारिक दृष्टि से साधारण भाषा प्रयोग से भिन्न तथा विशिष्ट होती है। यह वामन की रीति से अलग नहीं है वरन् इसके अंतर्गत 'विशिष्टता' के सभी गुण आ जाते हैं। इसलिए कुंतक ने वक्रोक्ति के क्षेत्र को व्यापक बनाते हुए उसमें भाषा-संरचना के सभी स्तरों तथा उपस्तरों को अर्थात् वर्णविन्यास वक्रता से प्रबंधवक्रता तक के सभी भेदों-प्रभेदों को सम्मिलित किया है। इसी प्रकार रसवादी आचार्यों ने रस को काव्यात्मा मानते हुए कहा था कि रस काव्य की शक्ति नहीं अपितु उस शक्ति का फल है। आनंदवर्धन ने ध्वनि को काव्यात्मा मानते हुए उसे भाषा का गुण ही माना जिसे शब्द के आधार पर समझा जा सकता है। इस प्रकार काव्य में रीति, वक्रोक्ति, अलंकार, गुण, रस, ध्वनि आदि का उचित नियोजन होने से काव्यत्व स्थिर रह सकता है जो आधुनिक शैली-विवेचन का भी मूल दृष्टिकोण है।

हिंदी में शैली पर शास्त्रीय विवेचन कम हुआ है किंतु उस पर विभिन्न विद्वानों ने यत्र-तत्र अपने विचार रखे हैं। श्यामसुंदर दास ने कवि या लेखक की शब्द-योजना, वाक्यांशों का प्रयोग, वाक्यों की बनावट और उसकी ध्वनि आदि को शैली कहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने शैली पर प्रत्यक्ष रूप से कोई बात नहीं कि किंतु उन्होंने काव्यभाषा पर चर्चा करते हुए उसके बाह्य रूपों का वर्णन न कर उसके अंतः तत्वों का विश्लेषण किया है। उन्होंने काव्यभाषा के चार तत्व स्वीकार किए हैं। – (1) लक्षणा शक्ति, (2) विशेष रूप-व्यापार सूचक शब्द, (3) वर्णविन्यास और (4) साभिप्राय विशेषण। गुलाबराय शैली को अभिव्यक्ति या गुण कहते हैं जिसे कवि या लेखक अपने मन में प्रभाव को समान रूप से दूसरों तक पहुँचाने के लिए अपनाता है। करुणापति त्रिपाठी ने आकर्षक, रमणीय और प्रभावोत्पादक ढंग से की गई अभिव्यक्ति को शैली कहा है। इस प्रकार हिंदी साहित्य के विद्वानों ने शैली संबंधी गंभीर और सैद्धांतिक चर्चा न करके उसके गुणों आदि को मात्र गिनाया है।

19.2.3 आधुनिक शैली संबंधी अवधारणाएँ

इधर भाषाविज्ञान में साहित्य के इतर अंगो की अपेक्षा भाषाविषयक चिंतन को अधिक महत्व दिया गया है। इससे पहले साहित्य का अध्ययन व्यक्तिगत और आत्मनिष्ठ आधार पर होता था, अतः वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता महसूस की गई। अब शैलीविषयक विवेचन में भाषा के सभी पहलुओं पर विचार किया गया जो वक्ता या लेखक की प्रकृति तथा उसके द्वारा प्रयुक्त आलंकारिक रूपों और वाक्यात्मक अभिरचनाओं की सूचना देते हैं। इस संदर्भ में शैली की विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं जो भारतीय साहित्यशास्त्र और पाश्चात्य काव्यशास्त्र पर आधारित हैं। अंतर है केवल विश्लेषण के स्तर में। चूँकि प्रत्येक युग की अपनी संभावनाएँ और विशेषताएँ होती हैं और उसमें भावबोध तथा दृष्टिकोण को समेट कर एक समग्र दृष्टिकोण देने का प्रयास होता है। फिर भी, शैली की कोई निश्चित परिभाषा अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाई। इस समय शैली संबंधी अवधारणाएँ मुख्य रूप से छह मिलती है :

1. **शैली विचारों के आवरण के रूप में :** केंद्रीय विचार या अभिव्यक्ति के साथ एक अतिरिक्त तत्व जुड़ा हुआ है जिसका प्रयोग विचार को प्रभावी ढंग से प्रकट करने के लिए किया जाता है। यही शैली है। किंतु शैली लिखने की कोई पद्धति मात्र हीं है वरन् वह तो कथ्य और अभिव्यक्ति, रूप और वस्तु का कलात्मक संबंध है। विचार के भीतर ही उसका सार्थक भाषिक प्रतीक निहित रहता है। भाषिक प्रतीक के बिना विचार निर्जीव है और शब्द के बिना अर्थ मृतप्राय है। जब कवि या लोक अपने भाव, विचार या अनुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान करता है तो उसे शैली से

पृथक करने का न तो कोई कारण होगा और न ही कोई साधन। सामान्य विचार के लिए सामान्य अभिव्यक्ति होगी और सूक्ष्म विचार विशिष्ट शैली से अभिव्यक्त होंगे। उदाहरण के लिए, 'पाँच बज गए' वाक्य में अभिधा के साथ-साथ व्यंजना भी है और इसी कारण यह कथ्य विशिष्ट हो सकता है। यदि विचार के साथ शैली को जोड़ते हैं तो विचार ही विशिष्ट होगा न कि शैली विचार का अभिलक्षण या आवरण होगी। शैली तो कवि या साहित्यकार के मानव में रूपायित होती है और उसके भाव एवं विचार उसी में व्यक्त होते हैं। अतः शैली को विचार का आरोपित तत्व मानने का कोई आधार नहीं रह जाता।

2. **शैली अलंकरण के रूप में :** कुछ विद्वानों ने शैली को शोभाकारी धर्म के रूप में माना है। इस दृष्टि से शैली भाषा-व्यंजक और अभिधायक तत्वों के संयोजन से बनती है। भाषा के उन अभिलक्षणों से शैली का जन्म होता है जिनसे लोकोत्तर चमत्कार की सृष्टि होती है अर्थात् काव्यगत अलंकरण विशिष्ट भाषा द्वारा संभव है। वास्तव में विभिन्न पद्धतियों या लहजों में पढ़ने से कविता एक रहती है और उसका यह ढंग उसका बाह्य सौंदर्य है। यह शैली का सीमित अर्थ है। शैली का सौंदर्य उसकी आंतरिक संरचना में निहित है। सौंदर्यानुभूति में अलंकार अचल रूप से स्थित नहीं रहते। वे मात्र अपना ही वैचित्र्य प्रदर्शित करते रहते हैं। सौंदर्यानुभूति उत्पन्न करने का यदि प्रयास किया भी गया तो उसमें आंतरिक सौंदर्य नहीं मिलेगा वरन् वह अलंकरण मात्र ही होगा जैसा कि रीतिकालीन काव्य में मिलता है।

3. **शैली व्यक्ति–वैशिष्ट्य के रूप में :** कवि का व्यक्तितव ही उसकी शैली का उत्पादक होता है। इसी के आधार पर ब्यूफो ने 'शैली ही व्यक्ति है' की धारणा प्रस्तुत की और इसीलिए विद्वानों ने व्यक्ति–केंद्रिकता पर शैली का विवेचन किया है। वास्तव में लेखक एवं वक्ता की भाषा विशेष प्रयोजन, घटना, परिस्थिति, स्वभाव एवं प्रकृति, बौद्धिक स्तर, सामाजिक स्तर आदि पर काफी निर्भर रहती है, क्योकि उसकी अनुभूति और अनुभव उसके वास्तविक जीवन से जुड़े होते हैं और यहीं से उसके व्यक्तित्व की झाँकी मिल जाती है। पंत की भाषा में कोमलकांत पदावली और निराला की भाषा में ओजपूर्ण शब्दावली के जो दर्शन होते हैं, उनसे उनका व्यक्तित्व प्रतिबिंबित होता है। अपने व्यावहारिक जीन, अनुभव, स्वभाव तथा ज्ञान के अनुसार कोई लेखक शुद्ध संस्कृत शब्दों के प्रयोग को अपनी भाषा में अधिक स्थान देता है तो कोई तद्भव शब्दों को। इस प्रकार साहित्य में कवि या लेखक की विभिन्न विशिष्टताएँ अर्थात् उसके पुरुषत्व या नारीत्व, उसकी आयु, उसकी शिक्षा, उसके ज्ञान और अनुभव, सामाजिक या मानसिक स्तर, परंपरा एवं संस्कृति का बोध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में होता है। शैली संबंधी यह धारणा एकांगी है क्योंकि अभिव्यक्ति की वैयक्तिक विधियाँ विशेष वर्ग का निर्माण करती हैं जिससे शैली के सामान्य स्वरूप अथवा व्यापक परिभाषा का निर्धारण नहीं किया जा सकता। वास्तव में यह एक प्रकार का चयन या विचलन है जो कवि या लेखक के मानसिक रुझान से होता है। कवि अपने विचारों और भावों एवं अनुभूति के संप्रेषण के लिए ईमानदारी तथा यथार्थवादी दृष्टि से भाषा का इस प्रकार संयोजन और चयन करता है जिससे उसमें साभिप्राय तथा ग्राह्य शब्दों का समावेश होता है और उसमें गत्यात्मकता एवं सक्रियता पैदा होती है। यदि वह मनमाने ढंग से भाषा का प्रयोग करता है तो वह शैली 'शैली' न रहकर एक 'ढर्रा' या तकियाकलाम बन जाएगी।

4. **शैली प्रतिमान से विचलन के रूप में :** कवि की सर्जनात्मक शक्ति भाषा की सर्जनात्मक शक्ति है और इसीलिए वह मानक का अतिक्रमण करती हुई चलती

है। दूसरे शब्दों में, कवि को 'पोयटिक लाइसेंस' मिला होता है जिससे वह भाषा के सामान्य नियमों का सहेतुक अतिक्रमण कर जाता है। यह न तो उसकी भूल होती है और न ही भाषा निष्पादन की सीमा। यह विचलन या अतिक्रमण व्याकरण की दृष्टि से चाहे सही न हो लेकिन ग्राह्यता अथवा स्वीकार्यता की दृष्टि से अवश्य सही होता है। इसका संबंध व्याकरण से नहीं होता बल्कि भाषा-भाषी समुदाय की भाषा-चेतना से होता है जो इसे समझता है और सहज रूप से स्वीकार करता है। 'कलियाँ खिलखिला रही हैं' और 'चाँद मुस्करा रहा है' वाक्यों में 'कली और चाँद' का मानवीकरण प्रयोग और 'रमेश बहुत चहक रहा है' वाक्य में 'रमेश' का पक्षीकरण-प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से चाहे सही न हो लेकिन संदर्भ में ग्राह्य है और प्रतिमान से विचलन है। इसी में अतिरिक्त अर्थ की प्राप्ति होगी। कलियों के खिलखिलाने से अभिप्राय उपवन का सौंदर्य है और चाँद के मुस्कराने में 'रात्रि का सौंदर्य' सामने आ जाता है। 'रमेश के चहकने' से उसकी वाचालता व्यंजित होती है। इस प्रकार की सर्जनात्मकता उन सभी प्रयुक्तियों के लक्षणा रूप में प्रकट होती है जो अपने में लचीली वृत्ति को धारण किए हुए है और इसका श्रेष्ठ रूप काव्य भाषा में मिलता है। वास्तव में भाषायी विचलन संप्रेषण की सामान्य प्रक्रिया का विच्छेदन है। यह विषय के प्रकार, प्रस्तुतीकरण के उद्देश्य, पाठक के गुणों तथा लेखक के व्यक्तित्व से अभिप्रेरित होती है। यही कारण है कि कुछ विद्वानों ने भाषा के प्रतिमान से विचलन को शैली कहा है क्योंकि सामान्य भाषा और काव्यभाषा में अंतर का मूल कारण विचलन है। अतः शैली का अध्ययन मानक के रूप में न कर मानक से विचलन के रूप में करना समीचीन होगा, क्योंकि भाषिक रूप और संदर्भ के बीच जो संबध होगा, वह विचलन द्वारा ही जाना जा सकेगा। इस विचलन को देश-काल-विशेष, भाषा, बोली, कृति, उद्देश्य, सामाजिक स्थिति आदि के प्रसंग में देखने से रचना के सौंदर्य का सही दिग्दर्शन हो सकेगा। प्रसाद के 'मधुमय अभिशाप' में अभिशाप के प्रिय लगने वाले परिणाम का आभास मिलता है। इसी प्रकार 'अनींदपथ' (केदारनाथ सिंह), 'चौड़ी हवाएँ' (शमशेर), 'तृषित गोद' (निराला) आदि रूपों में आने वाले विशेषण-विपर्यय और मानवीकरण विचलन के अंतर्गत आ जाते हैं। वास्तव में विचलन व्यक्तिपरक या परिस्थितिपरक होता है। कविता या रचना लिखते समय, टेलीफोन पर बात करते समय, घर में माता-पिता, बहन-भाई या पत्नी-बच्चे आदि से बात करते समय, कार्यालय में अधिकारी या अधीनस्थ से, बाहर मित्रों या अन्य परिचित एवं अपरिचित लोगों से बात करते समय भाषा में जो परिवर्तन होते रहते हैं वे भाषायी मानकों से विचलन हैं। ये संरचनागत चयन हैं जो किसी विशेष परिस्थिति या व्यक्ति के साथ संयोजित होते रहते हैं।

5. **शैली चयन के रूप में :** इसमें भाषा को साहित्यकार के उपादान के रूप में माना गया है। साहित्यकार अपनी सृजन-प्रक्रिया में एक विशेष भाषा का चयन इस प्रकार करता है जिस प्रकार मूर्तिकार एक पाषाण से व्यर्थ की चिप्पियाँ हटाकर मूर्ति का निर्माण करता है। जब कवि सृजन-प्रक्रिया से गुजर रहा होता है तो उसके सामने शब्द और संरचना-संबंधी कई विकल्प होते हैं। वह उनमें से श्रेष्ठ का चयन कर लेता है। सामान्य आमतौर पर सामान्य अर्थ रखने वाले अनेक शब्दों से सर्वोपयुक्त शब्द का चुन लेना ही अच्छी शैली है। सर्वोपयुक्त शब्द वही है जो संकेतार्थ से अधिक अर्थ अर्थात् भावार्थ देने की क्षमता रखता हो। यह चयन सहेतुक होता है। वामन ने भी विशिष्ट पदरचना की जो धारणा रखी थी, वह चयन का ही एक प्रकार थी। वास्तव में जब कभी हम शैली की बात करते हैं तो शब्द और वाक्य-विन्यास-संबंधी चयन की धारणा हमारे मन में आ जाती है। चयन का यह भाव शैली का हेतु है किंतु यह चयन गौण है क्योंकि यह साधनों का चयन है। अतः पूर्वनिर्धारित विषय-वस्तु को अथवा उससे संबद्ध विभिन्न भाषादि अर्थों को

सही अभिव्यक्ति देने वाले भाषिक साधनों का चयन ही शैली है। उदाहण के लिए, 'रमेश भेड़िया है' और 'रमा गाय है' – ये दोनों वाक्य अर्थ की दृष्टि से शैलीगत संरचनाएँ हैं। व्यवहारपरक ज्ञान के आधार पर 'रमेश' और 'रमा' में क्रमशः 'भेड़िया' और 'गाय' के गुणों को समेटा गया है। ये दोनों संरचनाएँ सर्जनात्मक और संदर्भपरक अर्थ के साथ जुड़ी हुई हैं जिनमें रमेश क्रूरता का प्रतीक और रमा शालीनता की। रमेश की क्रूरता और राम की सुशीलता की गहन भावना जितनी इन शब्दों से जागृत होगी उतनी 'क्रूर' या 'सुशील' शब्दों से व्यक्त नहीं हो पाएगी। अतः इस प्रकार का चयन हमें भाषायी संरचना और कोशगत अर्थ से आगे ले जाता है। इसी प्रकार किसी मूर्ख के लिए 'महाविद्वान' या 'बृहस्पति' शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो 'मूर्ख' के नितांत विपरीतार्थक शब्द है। इस तरह साहित्यकार संदर्भ के अनुसार शब्दों का चयन करता है और व्याकरणिक तथा साहित्यिक दृष्टि से इस प्रकार की व्यवस्था करता है जिससे भाषा का विशिष्ट रूप सामने उभर आता है। भारतीय काव्यशास्त्र में प्रतिभा के साथ-साथ व्युत्पत्ति और अभ्यास काव्यहेतुओं की संकल्पना रखी गई है। किंतु ये काव्यहेतु अनिवार्य नहीं हैं। कभी-कभी अनायास ही और बिना परिश्रम के शब्दों का सटीक चयन हो जाता है। 'बगीचा भौंरों से गूँज रहा है' वाक्य में 'बगीचा' अधिकरण को कर्त्ता के रूप में चुना गया है, क्योकि वक्ता 'बगीचे' पर बल देना चाहता है और बगीचे के संपूर्ण वातावरण को गुंजायमान बनाना चाहता है जबकि 'बगीचे में भौंरे गूंज रहे हैं' व्याकरणिक दृष्टि से सही अर्थ होते हुए भी उसमें अतिरिक्त अर्थ नहीं मिलता। इस प्रकार चयन अनेक स्तरों पर होता है अर्थात् ध्वन्यात्मक, शब्दपरक, वाक्यपरक और यहाँ तक कि पूरी संरचना में चयन होता है। एक ही बात को एक ही परिस्थिति में विभिन्न रूपों में जो कहा जा सकता है वे उस भाषा की संरचना और अभिरचना के अनुरूप होते हैं। यही शैली है।

6. **शैली वाक्योपरि भाषायी विशेषताओं के समुच्चय के रूप में :** वाक्य को अब तक भाषा की आधारभूत तथा अधिकतम इकाई माना जाता रहा है और इसी के आधार पर भाषा का अध्ययन होता रहा है किंतु शैली का एक ऐसा अभिलक्षण है जो वाक्य की सीमा को पार कर जाता है। यह वाक्योपरि संरचा है जिसमें दो या उससे अधिक वाक्यों का परस्पर संयोजन होता है। अंतःवाक्य स्तर पर जोड़ने से समूचे पाठ की अन्विति होती है। यह अंतःवाक्य व्याकरण ही शैली है।

अंतः वाक्य परिभाषा के आधार पर आज प्रोक्ति (डिस्कोर्स) की संकल्पना सामने आई है। दैनिक व्यवहार की भाषा में वार्तालाप के दौरान वाक्यों का जो अनुक्रम अथवा उनका जो संयोजन होता है वही प्रोक्ति है। वास्तव में प्रोक्ति वाक्योपरि स्तर की एक ऐसी इकाई है जिसके कथ्य में आंतरिक संसक्ति तथा वाक्यों में संदर्भपरक और तर्कपूर्ण अनुक्रम रहता है। इसमें 'संवाद' को ही वाक्व्यवहार का केंद्र बिंदु माना गया है और वाक्य को भाषा की अधिकतम इकाई के रूप में नकारा गया है। इसमें व्यवस्थित और तर्कपूर्ण संसक्ति होती है जो पाठ को लयपरक बनाती है। यह संसक्ति भाषा और अर्थ के परस्पर संयोजन पर आधारित होती है। वास्तव में वाक्यों के परस्पर संबंधों और उनके कार्यव्यापारों की सूचना प्रोक्ति से मिलती है जो शैली के अध्ययन में सहायक हाती है। अर्थात् किसी पाठ (दूसरे अर्थ में प्रोक्ति) की शैली की व्याख्या करते हुए न केवल उसके वाक्य-संबंधों का विश्लेषण करना होगा वरन् पाठ के अन्य पहलुओं यानी उसके वाक्यों, उपवाक्यों, कोशीय रूपों, वाक्यात्मक अभिलक्षणों वाक्त-श्रोता के संबंधों की भी व्याख्या की जाएगी। यह अध्ययन अंतःवाक्यों के संबंधों पर ही आधारित है। अन्य इकाइयों के अंतःसंबंध में ही चयन का सिद्धांत आता है और उसकी व्याख्या भी इसी संदर्भ में संभव है।

शैली की इन छहों धारणाओं पर विचार करने पर आपने देखा होगा कि इनमें कोई तात्विक अंतर नहीं है अंतर है तो इनके दृष्टिकोण में। हाँ, सृजन और संप्रेषण की प्रक्रिया के संदर्भ में देखा जाए तो शैली का निर्धारक तत्व चयन ही दिखाई देता है क्योंकि यह चयन तथा उसकी व्यवस्था केवल कोशीय तथा व्याकरणिक न रहकर भाषा के विभिन्न स्तरों में होती है। अतः चयन-सिद्धांत की परिभाषा व्यापक करनी होगी जिसके अंतर्गत साहित्यिक धारा का दबाव, विधा का दबाव तथा विषय-वस्तु का दबाव निहित रहेगा। साहित्यिक धारा की दृष्टि से भाषा के विभिन्न प्रयोग मिलते हैं, जैसे छायावादी काव्य में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का आधिक्य है तो प्रगतिवादी काव्य में देशज शब्दों का। विधा की दृष्टि से विभिन्न विधाओं में विभिन्न भाषा-प्रयोग आते हैं। कविता और गद्य-विधाओं में भाषा का चयन पृथक्-पृथक् मिलता है। प्रसाद के काव्यों और नाटकों में जहाँ संस्कृतनिष्ठ शब्दों का चयन है, उपन्यास में वहाँ चलती भाषा का प्रयोग अधिक है। विषय-वस्तु की दृष्टि से वैज्ञानिक साहित्य, वाणिज्यिक साहित्य, कार्यालयीन साहित्य और सौंदर्यमूलक साहित्य में भाषा का अलग-अलग चयन होता है। कभी-कभी व्यक्ति को अपनी प्रकृति या आदत भाषा में दिखाई दे जाती है, जैसे पीछे हमने शैली व्यक्ति-वैशिष्ट्य के रूप में कहा है। इसीलिए कभी-कभी लिंग की दृष्टि से पुरुष की शैली में कठोरता, गंभीरता, पौरुष आदि के दर्शन अधिक होते हैं जबकि नारी की शैली में कोमलता, माधुर्य, नारी-सुलभ सौंदर्य की झांकी अधिक दिखाई पड़ती है। आयु की दृष्टि से यौवनकाल की रचनाओं में जितनी अधिक चंचलता, स्वच्छंदता एवं रोमांस अधिक दिखाई देगा, वृद्धावस्था की रचनाओं में उतनी अधिक गंभीरता, प्रौढ़ता, नैतिकता और परंपरा के दर्शन होंगे। लेकिन कभी-कभी ये बातें विपरीत रूप में भी मिल जाती हैं। साहित्यकार के भाषिक चयन, भाषिक व्यवस्था, व्यक्तिपरक तथा परिस्थितिमूलक अतिक्रमण में शैली का संयोजन होता है। कवि अपनी अनुभूति को उसी रूप में अभिव्यक्त करने के लिए भाषा के निर्धारित रूपों का सप्रसंग, साभिप्राय एवं समुचित चयन करता है। भाषा को नए रूप में ढालता है, सँवारता है, नए शब्दों का निर्माण करता है, नई संरचना प्रदान करता है, नए परिवर्तन लाता है तथा उसे व्यापक आयाम में समेटता है। यही उसका अभिव्यंजना-व्यवहार है जो शैली कहलाता है। वस्तुतः शैली भाषा का वह विशिष्ट रूप है जिसमें अभिव्यंजना की ऐसी शक्ति निहित रहती है जो कवि के सर्जनात्मक प्रयोग को रसानुकूल और प्रभावोत्पादक बनाती है तथा हमें कवि की अनुभूति, भाव और विचारों का बोध कराती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शैली वह है जिसमें कवि या वक्ता अपनी अनुभूति और अनुभव का सामान्यीकरण कर उन्हें दूसरों तक संप्रेषित करना चाहता है। इसके लिए वह एक ऐसी विशिष्ट भाषा का प्रयोग करता है जिसमें एक सुष्ठु तथा साभिप्राय चयन होता है और ध्वनि, व्याकरणिक गठन तथा अन्य वाक्य-रचना आदि की दृष्टि से भाषा के सर्वस्वीकृत मानक का अतिक्रमण करता है जिससे पाठक का रसास्वादन होता है।

19.3 शैलीविज्ञान क्या है?

यह तो आप जानते हैं कि भारत में साहित्य का सृजन प्राचीनकाल से चला आ रहा है। इसके साथ यह भी उल्लेखनीय है कि साहित्य के विवेचन और विलेषण की परंपरा भी प्रारंभ से चली आ रही है। साहित्य को समझने के लिए और उसकी व्याख्या के लिए भारतीय काव्यशास्त्र और पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में कई संप्रदायों और सिद्धांतों का प्रादर्भाव हुआ। आधुनिक काल में आलोचना के कई प्रतिमानों और पद्धतियों का विकास हुआ। इनमें रसवादी, मार्क्सवादी, मनोविश्लेषणवादी, समाजशास्त्रीय, मिथकीय, ऐतिहासिक आदि आलोचना की कई प्रणालियाँ उभर कर आईं। वास्तव में इन आलोचना प्रणालियों में साहित्यिक कृतियों के बाह्य संबंधों की खोज की जाती है। इनमें पाठक या कवि की दृष्टि से अथवा समाज या संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में काव्य का मूल्यांकन होता है। ये साहित्यतेर उपादान हैं जो साहित्येतर मूल्यों का प्रतिपादन करते हैं क्योंकि सामाजिक प्रक्रिया के

बदलने से पाठक की संवेदनाओं, मान्यताओं और विचारों में परिवर्तन आ जाता है जिससे मूल्यों पर भी प्रभाव पड़ता है। इसी कारण आलोचना के निश्चित सिद्धांत अभी तक स्थापित नहीं हो पाए।

साहित्य का मुख्य प्रकार्य उसकी साहित्यिकता या काव्यात्मकता है। साहित्य सौंदर्य और भाषा के बीच निहित रहता है। इसमें सौंदर्य आधेय है और भाषा आधार। इसका गुण काव्यात्मकता और सर्जनात्मकता है और उस गुण का प्रतिफलन शैली है। इस दृष्टि से साहित्य अनुभूतिजन्य संरचना है जिसके सर्जनात्मक और कलात्मक प्रयोगों का अध्ययन शैलीविज्ञान करता है। साहित्य की संरचना, संघटना और प्रकार्य का अध्ययन करने से सौंदर्यबोध होता है। इसलिए इसकी सैद्धांतिक मान्यताएँ भाषापरक हैं। भाषापरक होने के कारण यह साहित्यक कृति को स्वायत्त 'शाब्दिक कला' मानता है और उसका विषय होता है 'साहित्य या काव्य क्या कहता है' न कि 'कवि क्या कहता है' और न ही 'साहित्य की रचना करते समय कवि का प्रयोजन क्या था' या 'उस कृति से पाठक के मन पर क्या प्रभाव पड़ता है अथवा पड़ेगा'। शैलीविज्ञान काव्य का विश्लेषण न तो कवि या पाठक की दृष्टि से करता है और न ही समाजशास्त्रीय या दार्शनिक या मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में। वह तो काव्यात्मकता और सर्जनात्मकता का केंद्र बिंदु कृति को ही मानता है। इस प्रकार शैलीविज्ञान आलोचना की वह भाषापरक प्रणाली है जो दर्शन के साथ-साथ विज्ञान भी है और इसमें सैद्धांतिक प्रतिमानों के साथ विश्लेषण की विधि-प्रविधि भी उपलब्ध है। साहित्य के विवेचन में वह जिन भाषावैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग करता है, उन्हें वह अपने विशेष लक्ष्यों के संदर्भ में मांजता और संवारता है ताकि सर्जनात्मकता के बिंदु तक पहुँचा जा सके।

19.3.1 बहिरंग आलोचना और अंतरंग आलोचना

आलोचना के दो पक्ष माने गए हैं (1) बहिरंग आलोचना और (2) अंतरंग आलोचना। बहिरंग आलोचना से तात्पर्य कवि या पाठक, सामाजिक या सांस्कृतिक मूल्यों का विवेचन करना है। यह आलोचना शैलीविज्ञान के क्षेत्र के बाहर है। ऐसा नहीं है कि शैलीविज्ञान मार्क्सवादी, समाजशास्त्रीय, रसवादी आदि आलोचना के महत्व को नकारता है लेकिन उसका यह कहना है कि इससे कृति की आलोचना सही ढंग से नहीं हो पाती क्योंकि इसकी पद्धति न तो वैज्ञानिक है और न ही इसका आधार ठोस है। अतः शैलीविज्ञान की मान्यता है कि साहित्यिक कृति को समझने के बाद ही बहिरंग आलोचना का कार्य प्रारंभ होता है।

अंतरंग आलोचना में साहित्यिक कृति को स्वायत्त इकाई मानकर उसकी आंतरिक संरचना का अध्ययन किया जाता है। इसमें ध्वनि-संयोजन, रूप-प्रक्रिया, शब्द-संस्कार, वाक्य-रचना, प्रोक्ति-संरचना को ध्यान में रखकर काव्यात्मकता की खोज की जाती है। इसके साथ भाषेतर प्रतीक, भाव-भंगिमाएँ और मौन भाषा भी अध्ययन के क्षेत्र में आते हैं। यह आलोचना शैलीविज्ञान के कार्यक्षेत्र के अंतर्गत आती है।

शैलीविज्ञान अपनी अंतरंग आलोचना में सर्जनात्मक धरातल पर कथ्य और अभिव्यक्ति की समन्वित इकाई को भाषिक प्रतीक मानता है। यदि रूपिम, शब्द, पद, वाक्य भाषिक प्रतीक हैं तो यह भी माना जा सकता है कि समूची कृति भी भाषिक प्रतीक है। इसी मान्यता को स्वीकार करते हुए शैलीविज्ञान अभिव्यक्ति पक्ष के आधार पर कथ्य तक पहुँचने का प्रयास करता है। एक रूसी विद्वान श्क्लोवस्की ने काव्य के प्रतिपादन में इसकी तीन स्थितियों पर विचार करते हुए कहा है कि कथ्य और अभिव्यक्ति एक समन्वित इकाई के न तो दो स्तर हैं और न ही दो खंड अपितु वे एक ही वस्तु के दो पक्ष हैं। तीन स्थितियाँ इस प्रकार हैं :

1. पहली स्थिति में अभिव्यक्ति कथ्य से अलग होती है और कथ्य की अपेक्षा अभिव्यक्ति पर अधिक बल दिया जाता है;

2. यहाँ पर कथ्य अभिव्यक्ति से अलग होकर सामने आता है, और

3. काव्यकृति में कथ्य और अभिव्यक्ति अभिन्न रूप में प्रतिफलित होते हैं।

पहली स्थिति 'कला कला के लिए" सिद्धांत का प्रतिपादन करती है जिसे शैलीविज्ञान स्वीकर नहीं करता क्योंकि यह अधूरी और असंगत काव्यदृष्टि है।

दूसरी स्थिति बहिरंग या साहित्येतर आलोचना के क्षेत्र में आती है, जिसमें काव्यकृति में निहित संदेश या प्रतिपाद्य वस्तु की व्याख्या दर्शन, समाज, संस्कृति आदि साहित्येतर संदर्भों में की जाती है।

तीसरी स्थिति काव्यकृति को संतुलित और संगत दृष्टि से देखने का आग्रह करती है जो अंतरंग आलोचना के भीतर जाती है। इस प्रकार शैलीविज्ञान न तो केवल अभिव्यक्ति पक्ष पर बल देता है और न ही कथ्य पर बल्कि इन दोनों के अंतःसंबंधों पर बल देता है।

इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि वास्तव में काव्यकृति का संसार बाह्य यथार्थ संसार से अलग होता है लेकिन सर्जना एवं कल्पना के आधार पर अभिव्यक्ति और कथ्य दोनों में अन्विति होती है। इसमें यथार्थ को हू-बहू प्रतिबिंबित नहीं किया जाता वरन् उसका सर्जन किया जाता है। कवि की सर्जनात्मक शक्ति के कारण वह एक कला प्रतीक के रूप में रूपांतरित होती है। इसमें समाज, संस्कृति, मनोविज्ञान, दर्शन आदि को साहित्य के संदर्भ में जानना ही श्रेयस्कर है। 'काव्यकृति के भीतर का संसार उस जीवित संदर्भ को उपस्थित करता है जिसके भीतर रहकर उसके पात्र क्रिया-कलाप करते हैं, अपनी परिस्थितियों से टकरा कर अपने व्यक्तित्व का उद्घाटन या विकास करते हैं, और उस समय की धारा को व्याख्यायित करते हुए जीवन को एक ऐसे स्थान-काल के साथ बाँधते हैं जो स्थान और समय से एक ओर बंधा होने के कारण ठोस भी होता है और उससे मुक्त होकर समय और स्थान की सीमा का अतिक्रमण भी करता है। यही कारण है कि विभिन्न कालों और विभिन्न स्थानों पर जिस काव्यवस्तु का सर्जन होता है उसे काल और स्थान की सीमाओं को तोड़कर पढ़ा और समझा जा सकता है। यह काव्यकृति के भीतर का ही संदर्भ है तो आज भी अंतर्निहित संसार को रूपायित करता है। काव्यकृति के भीतर के इसी संदर्भ का विश्लेषण एवं अध्ययन शैलीविज्ञान करता है। आलोचना के क्षेत्र में अब तक प्रभाववादी, मार्क्सवादी, मनोविश्लेषणवादी, नैतिकतावादी जो भी आलोचनाएँ होती रही हैं अथवा हो रही हैं, वे या तो सिद्धांत की ही व्याख्या करती रही हैं या व्यावहारिक विधियों के आधार पर होती रही हैं।

19.4.2 शैलीविज्ञान का नामकरण

शैलीविज्ञान के नामकरण पर काफ़ी चर्चा रही है। इसके लिए शैलीशास्त्र और रीतिविज्ञान भी नाम सुझाए गए हैं। 'फिजिक्स' और 'लिंग्विस्टक्स' के लिए जिस प्रकार क्रमशः 'भौतिकी' और 'भाषिकी' शब्द मिलते हैं, उसी प्रकार स्टाइलिस्टिक के लिए भी 'शैलिकी' नाम रखने का भी प्रस्ताव है। यह नाम शैलीविज्ञान का पर्याय ही है लेकिन 'शैलीविज्ञान' नाम 'भाषाविज्ञान' की भाँति अधिक प्रचलित है। शैलीशास्त्र और शैलीविज्ञान के लिए अधिक विवाद नहीं है। विज्ञान की अपेक्षा शास्त्र अधिक व्यापक है और शैली का संबंध सौंदर्यशास्त्र से भी है, इसलिए 'इक्स' शास्त्र का वाचक है। किंतु शास्त्र में सिद्धांत की अपेक्षा अधिक की जाती है जबकि विज्ञान में सिद्धांत के साथ-साथ विधि-प्रविधि पर भी बल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त शैलीविज्ञान का विकास भी भाषाविज्ञान से हुआ है। अतः शैलीशास्त्र की अपेक्षा 'शैलीविज्ञान' नामक शब्द अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।

'शैलीविज्ञान' और 'रीतिविज्ञान' के नामकरण पर काफी चर्चा रही है। पं. विद्यानिवास मिश्र ने तो अपनी पुस्तक का नाम ही 'रीतिविज्ञान' रखा है। उन्होंने 'स्टाइल' शब्द के लिए शैली शब्द न मानकर 'रीति' शब्द को ही उपयुक्त माना है। उनके मतानुसार शैली का प्रयोग प्राचीन भारतीय वाड्.मय में साहित्येतर विधाओं के संदर्भ में हुआ है या किसी व्यक्ति की साहित्यिक अभिव्यक्ति की विशेषताओं को जतलाने के लिए आधुनिक समीक्षा साहित्य में हुआ है, इस दृष्टि से उपयुक्त भाषागत सर्जनात्मक वैशिष्ट्य को बोधित करने के लिए शैली का प्रयोग उतना संगत नहीं जान पड़ता। रीति का समर्थन करते हुए वह आगे कहते हैं कि रीति शब्द का प्रयोग शुद्ध रूप से सामान्य भाषा के विशेष गुणों के आधार के विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण करने के लिए या साहित्य के बाहर सामाजिक व्यवहार की किसी व्यापक सामान्य विशेषता का बोध कराने के लिए हुआ है। इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि शब्द अपने संदर्भ में नई परिभाषा और नई व्याख्या लेकर आता है। सामान्य भाषा में एक शब्द जो अर्थग्रहण करता है तो यह ज़रूरी है कि वह प्रत्येक विषय और संदर्भ में वही अर्थग्रहण करे। उदाहरण के लिए; 'पद' शब्द का प्रयोग सामान्य भाषा, काव्य, व्याकरण, भाषाविज्ञान, समाजशास्त्र, कार्यालयी आदि संदर्भों में नई-नई संकल्पना लेकर होता है जो एक दूसरे से काफी भिन्न है। इसी प्रकार शैली की संकल्पना समय-समय पर बदलती रही है और आज शैलीविज्ञान में शैली की सकल्पना मे जो परिवर्तन आया है वह तो रीति को ही अपने भीतर समेटे हुए है। आज के शैलीविज्ञान में भारतीय साहित्यशास्त्र के प्रायः सभी संप्रदाय, विशेषकर वक्रोक्ति, ध्वनि और रीति संप्रदाय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र के मूल तत्व समाविष्ट हो गए हैं। इसके अतिरिक्त यह भी बताना असमीचीन न होगा कि शैली की संकल्पना में तो विकास होता रहा है किंतु रीति तो रूढ़ ही रह गई। भारतीय काव्यशास्त्र में रीति संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन के बाद रीति पर नाममात्र विचार हुआ और जो हुआ वह भी काव्य के गौण तत्व के रूप में रीति की अपेक्षा वक्रोक्ति लिंग्वास्टाइलिस्टिक्स के अधिक निकट जा पड़ती है क्योंकि इसमें कथ्य और अभिव्यक्ति, जो 'स्टाइलिस्टिक्स' के मुख्य अंग हैं, लगभग समा जाते हैं। अतः 'रीतिविज्ञान' की अपेक्षा 'वक्रोक्तिविज्ञान' अधिक उपयुक्त दिखाई देता है। 'वक्रोक्ति' में भी वही अवधारणा नहीं आ पाती जो आज की शैली की संकल्पना में निहित है।

शैली (स्टाइल) की संकल्पना पर तो भारत और पश्चिम में बराबर चिंतन होता रहा है। पाश्चात्य विद्वानों ने स्टाइल के जो दो मूल तत्व 'मस्तिष्क' और 'आत्मा' बताए हैं वे भारतीय रीति और ध्वनि के पर्याय है। अतः वामन प्रतिपादित 'पद रचना रीति' के अलावा ध्वनि को कहाँ छोड़ा जाए जो स्टाइललिस्टिक्स का कथ्य पक्ष है। यह बात अवश्य है कि शैली और रीति प्रायः समानार्थक माने जाते रहे हैं किंतु इनमें कुछ-न-कुछ अंतर अवश्य है। शैली का अर्थ 'स्वभाव' माना गया है और आचार्य कुंतक ने इसे 'रीति का नियामक' आधार माना है। इस प्रकार विशिष्ट अर्थ में रीति और शैली में बहुत अंतर नहीं है लेकिन रीति में पूर्व निश्चितता, पूर्व निर्धारण एवं पूर्व नियोजना होती है जो कि शैली में बहुत कम देखी जती है। वास्तव में जब शैली पूर्व निर्धारण का रूप ग्रहण कर लेती है तो वह रीति कहलाती है। इन दोनों के लक्ष्य में भी भेद है। रीति का लक्ष्य साधारणतया संबंधित कार्य को पूर्ण वैध तथा शुद्ध रूप प्रदान करना होता है जबकि शैली का लक्ष्य उस कार्य में नवीनता, चमत्कार और विशिष्टता लाना होता है। रीति के लिए अध्ययन, अभ्यास तथा प्रयत्न वाँछनीय है, शैली में सहजता और स्वाभाविकता की भी आवश्यकता है। मिश्र जी ने शैली पर यह भी आपत्ति उठाई है कि शैली के विषय में एक बहुत ही व्यापक धारणा रूढ़ हो चुकी है कि शैली आत्मनिष्ठ होती है। यह सही है कि 'स्टाइलिस्टिक्स' में कवि की दृष्टि को मान्यता नहीं दी जाती लेकिन रीति में भी तो पाठक या सामाजिक दृष्टि को प्रमुखता दी जाती है जो 'स्टाइलिस्टिक्स' के क्षेत्र से बाहर है। आज स्टाइल या शैली के जितने वस्तुनिष्ठ एवं आत्मनिष्ठ रूप हैं या जितनी अर्थच्छायाएँ हैं, उन्हें शैलीविज्ञान अपने भीतर समेट कर चल रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आज शैली की संकल्पना रीति की

अपेक्षा अधिक विस्तृत हो गई है। अतः रीतिविज्ञान की अपेक्षा शैलीविज्ञान नाम स आधक औचित्य दिखाई देता है।

19.4 शैलीविज्ञान का विकास

शैलीविज्ञान का प्रतिष्ठापन वस्तुतः बीसवीं शताब्दी के आरंभ में जेनेवा स्कूल के सुप्रसिद्ध भाषाविज्ञानी चार्ल्स बेली द्वारा हुआ। बेली को इसकी संकल्पना अपने गुरु फर्दी ना सस्यूर के 'भाषा' और 'वाक्' दो शब्दों से प्राप्त हुई। 'भाषा सार्वजनिक एवं परंपरागत व्यापार है तथा समुदाय के लोगों में सामाजिक संपर्क स्थापित करने की एक पद्धति है जो एक दूसरे की बात समझने-समझाने के लिए सहायक हो सकती है'। वास्तव में यह एक सामाजिक वस्तु है जो अपनी प्रकृति में समरूपी होने के साथ-साथ जीवंत एवं परिवतर्नशील भी होती है। 'वाक् एक व्यक्तिगत उच्चार है तथा इच्छा एवं बुद्धि की एक ऐसी क्रिया है जिसमें व्यक्तिगत उद्देश्यों की पूर्ति होती है। यह एक प्रकार का भाषिक व्यवहार है जो विविध रूपों में उद्घाटित एवं प्रतिफलित होता है।' इस प्रकार 'भाषा' एक संहिता है और 'वाक्' एक रीति है जिसमें संहिता का प्रयोग किसी वास्तविक परिस्थिति में किया जाता है अथवा यह एक ऐसा ढंग है जिसमें व्यक्ति विशेष अपनी भाषा का प्रयोग सामान्य रूप में करता है। केवल वाक् में ही भाषा कार्यान्वित होती है जबकि वाक् भाषा की सामाजिक और सार्वजनिक व्यवस्था के बिना संभव नहीं है। सस्यूर ने वाक् को मूलाधार नहीं माना और न ही इसे प्रमुखता दी है। इसका वास्तविक अध्ययन उनके शिष्य चार्ल्स बेली द्वारा किया गया है तथा वाक् को आधार मानकर बेली ने बताया कि वैयक्तिक भाषा में भावात्मकता निहित रहती है जो विशिष्ट परिस्थितियों में सहजभाव से मनुष्य के उच्चारणोपयोगी अवयवों से निस्तृत होती है। वस्तुतः यह भावात्मकता भाषा में ऐसे मूल्य प्रस्तुत करती है जो शैली के मूल होते हैं। इन मूल्यों का अध्ययन शैलीविज्ञान करता है। इस प्रकार 'व्यवस्थित भाषा की अभिव्यक्तियों का अध्ययन उनमें निहित प्रभावकारी तत्वों के आधार पर करना अर्थात् भाषा के माध्यम से होने वाली संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति का तथा संवेदनशीलता पर आधारित भाषा व्यापार का अध्ययन करना शैलीविज्ञान का कार्य है।'

सस्यूर भाषा की साहित्यिक रससिद्धि में अधिक रुचि नहीं रखते थे। उनका प्रमुख उद्देश्य भाषा के प्राकृतिक क्षेत्र अर्थात् बोली जाने वाली भाषा के भाषावैज्ञानिक अध्ययन से संबंधित है। लिखित भाषा या साहित्यिक भाषा एक विशिष्टीकरण है जो जीवित तथ्य से काफी परे है। बेली ने भी सस्यूर के इस मत का समर्थन किया है। उनके मतानुसार भाषा जीवन का प्रकार्य है जो मानवीय भावों एवं अनुभूतियों से संपृक्त है तथा यही वास्तविक एवं जीवंत भाषा है। इसके अन्य रूप अमूर्त हैं और वे भाषा के विशिष्ट प्रयोग हैं। उनका संबंध किसी विशेष कारण से बाधित है अतः उनका अध्ययन करना आवश्यक नहीं है।

बेली ने शैलीविज्ञान को भाषा के अभिव्यंजनात्मक पक्ष तथा उसकी प्रक्रिया का अध्ययन माना है। उनकी यह धारणा भाषा की तर्कपरक एवं प्रभावोत्पादक विशेषताओं पर पूर्णतया आधारित है। भाषा का तर्कपरक पक्ष, विचारों की अभिव्यक्ति, तथ्यों का संप्रेषण आदि सभी अमूर्त हैं। भाषा के मानक का अतिक्रमण 'प्रभावी' क्षेत्र में आ जाता है। इस प्रभावी शब्द का विस्तार करते हुए बेली ने प्रभावोत्पादक और अभिव्यंजनात्मक विशेषताओं को भी इसमें लिया है। भाषा के समूचे अभिव्यंजनापरक संसाधनों का वर्णन भाषाविज्ञान के अंतर्गत होता है। बेली ने साहित्यिक भाषा को इसलिए नहीं लिया क्योंकि वे इसे एक ऐच्छिक एवं सायास वस्तु मानते । उनके मतानुसार साहित्यकार सदैव स्वेच्छा से और सचेत होकर अपने भाषात्मक प्रयोग का चयन करता है और उनका उद्देश्य भाषा के द्वारा सौंदर्यमूलक प्रभाव की सृष्टि करना है जिसके कारण भाषा कृत्रिम हो जाती है और सर्वजन सुलभ नहीं हो पाती। जिस प्रकार कलाकार रंगों के द्वारा और संगीतकार ध्वनियों के द्वारा सौंदर्य की सृष्टि

करता है उसी प्रकार साहित्यकार शब्दों के माध्यम से सौंदर्य लाने का प्रयास करता है, किंतु बेली के साहित्यिक भाषा को शैलीविज्ञान में सम्मिलित न करने के मत में कोई तर्क नहीं बैठता। वास्तव में भाषा एक सोद्देश्य व्यापार है और इसका प्रयोग किसी न किसी प्रयोजन के कारण होता है। अतः इसमें भावात्मकता, चाहे वह ऐच्छिक या सायास ही क्यों न ही, समान रूप से विद्यमान रहती है। शाब्दिक व्यवहार होने के कारण भाषा बिना किसी प्रेरणा के प्रस्फुटित नहीं होती और इस प्रेरणा में भी उद्देश्य निहित रहता है। अतः अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए वक्ता उसी के अनुसार भाषा का प्रयोग करता है। इस दृष्टि से कवि और सामान्य वक्ता में कोई अंतर नहीं रह जाता। सभी क्षेत्रों के लोग चाहे वे वकील हों या पत्रकार, किसी कंपनी के एजेंट हों या कोई वक्ता आदि इस ढंग से बात करेंगे जिससे अन्य लोग उनकी ओर आकर्षित होंगे और उनके उद्देश्यों की पूर्ति भी होगी। तब प्रश्न उठता है कि कवि इससे अलग कैसे रह सकता है? साहित्यिक भाषा बोलचाल की भाषा से बिल्कुल अलग नहीं है वरन् वह तो उसका एक निखरा हुआ रूप है। यह बात भी नहीं है कि बोलचाल की भाषा में सौंदर्यपरक प्रभाव नहीं होता। भाषा के प्रयोग में ही तो सौंदर्य है तथा हृदय में जैसी अनुभूति हो उसे उसी रूप में व्यक्त करना ही कला है और कला सौदर्यमय होती है। जिस वस्तु में अभिप्राय निहित रहता है, उसकी अभिव्यक्ति की पर्याप्तता में साहित्यिक प्रभाव दिखाई देता है और यद्यपि यह पूर्णतया सोद्देश्य होती है, किंतु फिर भी इसका सौंदर्य आकस्मिक होता है। विश्व साहित्य का एक छोटा-सा अंश, जो सामान्यतः उत्कृष्टतम नहीं होता, पाठक में केवल शाब्दिक सौंदर्य की भावना लाने के लिए नहीं लिखा जाता। इस प्रकार सौंदर्यपरक प्रभाव की निष्पत्ति ही कवि का एक मात्र उद्देश्य नहीं होता वरन् उसमें बौद्धिकता, चित्रात्मकता आदि कई तत्व होते हैं जो उसकी भाषा में सौंदर्य का सृजन करते हैं। अतः सामान्य भाषा में यदि प्रभावकारी विशेषताएँ लाई जा सकती हैं तो ऐसी विशेषताएँ साहित्यिक कृति में आ जाना कोई अनुचित बात नहीं है। इस प्रकार बेली द्वारा लगाई गई यह सीमा अनावश्यक-सी लगती है।

बेली के कुछ शिष्यों ने भी उनके इस मत को स्वीकार नहीं किया। एक शिष्य मारसेल क्रेसॉट ने बेली के मत का खंडन करते हुए कहा कि हमारे लिए साहित्य साधारणतया एक संप्रेषण है और अपनी कृति में लेखक सौंदर्य की जो सृष्टि करता है उससे उसका अभिप्राय पाठक के ध्यान को पूरी तरह से आकर्षित करना है। यह बात सामान्य संप्रेषण से तो अधिक योजनाबद्ध एवं व्यवस्थित होती है किंतु यह अलग किस्म की नहीं होती। अतः शैलीविज्ञान के क्षेत्र में साहित्य भी उसी प्रकार उत्कृष्ट रूप में उभर सकता है। इस प्रकार क्रेसॉट ने साहित्यिक भाषा के भाषावैज्ञानिक अध्ययन को पूरी मान्यता दी है और साहित्यकार की भाषा का विश्लेषण भी किया है। किंतु उनका यह अध्ययन कलाकृति के विशेषण के रूप मे नहीं हुआ अपितु यह अध्ययन साहित्यिक विश्लेषण के अधिक निकट जा पड़ा है।

19.5 शैलीविज्ञान और भाषाविज्ञान

अब आप प्रश्न करेंगे कि शैलीविज्ञान और भाषाविज्ञान में परस्पर संबंध क्या है? वस्तुतः भाषाविज्ञान भाषा तथा उसके प्रत्येक प्रकार्य एवं प्रयोग का अध्ययन और विश्लेषण करता है तो शैलीविज्ञान उसकी अनुप्रायोगिक विधा है। हम जानते हैं कि भाषाविज्ञान उसकी भाषा संहिता के संसाधनों का पता लगाता है जो वास्तविक संदेश का सृजन करने हेतु प्रयुक्त होती है। यह वाक्यों के भीतर परस्पर संबंधों की व्यवस्था के रूप में भाषा से जुड़ा हुआ है। ये संबंध विभिन्न ढंग से अभिव्यक्त होते हैं या उनका सृजन किया जाता है। व्याकरणिक दृष्टि से चाहे वे सही हों लेकिन वक्ता उस ढंग से बोलना चाहेगा जिससे श्रोता उसके मंतव्य को समझ सके। भाषा के शाब्दिक व्यवहार होने के कारण वक्ता सदैव उसे किसी न किसी अभिप्राय से बोलेगा और वह एक ऐसी भाषा बोलेगा जो प्रभावशीलता

और भावात्मकता से ओत-प्रोत हो। वास्तव में भाषा सर्जनात्मक होती है और शैलीविज्ञान भाषा की सर्जनात्मक शक्ति पर बल देता है।

भाषाविज्ञान मुख्य रूप से उस भाषा तक सीमित है जो नियमों की सुगठित एवं समाजपरक व्यवस्था है और समुदाय के लोगों में सामाजिक संपर्क स्थापित करने की पद्धति है जो एक दूसरे की बात समझने के लिए सहायक हो सकती है। शैलीविज्ञान वाक्यों के संदर्भपरक यथार्थ वाक् के अतिरिक्त संसाधनों की ओर ले जाता है। सस्यूर की इस संकल्पना के आधार पर अमरीकी विद्वान नोअम चॉम्स्की ने भाषायी क्षमता और भाषायी व्यवहार की धारणा रखी जिसमें क्षमता भाषा विषयक ज्ञान से संबद्ध है और व्यवहार भाषा के वास्तविक प्रयोग से। उनके मतानुसार मानव एक ऐसा सृजनशील प्राणी है जो स्थिति एवं संदर्भ के अनुसार नई उक्तियों का सृजन करता है जो पहले न कभी बोली गई हों और न ही सुनी गई हों लेकिन वे सदैव समझी गई हों। इसका कारण यह है कि वे संहिता (कोड) की अभिव्यक्ति के रूप में नई और संदेश के रूप में जानी-पहचानी है। वास्तव में ये संदेश सामाजिक परंपराओं की व्यवस्था के अनुरूप व्यक्त होते हैं और शैलीविज्ञान भाषा के सामाजिक एवं सर्जनात्मक प्रकार्य का अध्ययन होने के कारण यह पता लगता है कि संप्रेषण मे कौन-सी भाषिक इकाइयाँ आएँगी और जिस रीति से संदेश सुव्यवस्थित होते हैं उसमें विभिन्न परंपराओं के प्रभाव किस प्रकार स्वयं को स्पष्ट करते हैं।

शैलीविज्ञान भाषा के बोधात्मक, अभिधात्मक और सौंदर्यपरक संसाधनों के प्रयोजनमूलक पक्षों का अध्ययन है। हैलिडे ने सामाजिक दृष्टि से इन्हें क्रमशः उद्भावनापरक, अंतःव्यक्तिक और साहित्यिक कहा है। भाषा के ये प्रकार्य एक दूसरे से अलग नहीं हैं वरन् परस्पर संबद्ध है। भाषा का बोधात्मक पक्ष संदर्भ की अभिव्यक्ति करता है। इसमें वक्ता अपनी चेतना, अपनी प्रतिक्रिया, संज्ञान और अपने अंतर में हुए अनुभवों को सामने लाता है और यहाँ तक कि बोलने और समझने के भाषायी व्यापारों को प्रकट करता है। दूसरा प्रकार्य संदर्भ की अभिव्यक्ति से भिन्न है इसमें वक्ता की वृत्ति और व्यक्तित्व का पता चलता है और उसमें तथा श्रोता के बीच जो संबंध हैं, वह ज्ञात हो जाता है। तीसरा प्रकार्य व्यक्ति की भाषापरक सर्जनात्मकता से संबंधित है। यह भाषा के आंतरिक पक्ष से जुड़ा हुआ है। यह प्रकार्य स्थिति एवं संदर्भ के अनुसार कार्य करता है। यह वाक्य के बीच के संबंधों की स्थापना तक सीमित नहीं है जिसमें इसका अर्थ संदेश के रूप में अपने आप में और संदर्भ के अनुरूप मिलेगा। वास्तव में यहाँ वाक्यों की सीमा का अतिक्रमण भी हो जाता है। भाषा का यह प्रकार्य वक्ता का सौंदर्यपरक या सर्जनात्मक प्रयोग है और शैलीविज्ञान भाषा के अभिव्यंजनापरक, प्रभावपरक और सौंदर्यपरक पक्षों का अन्वेषण करने हेतु भाषाविज्ञान की सहायता करता है।

भाषाविज्ञान का संबंध वक्ता की आम प्रेरणा से नहीं है कि वह अपनी भाषा के द्वारा और क्या प्राप्त करना चाहता है। यह स्थितिपरक संदर्भ से न तो संबंधित है और न ही वक्ता और श्रोता के बीच और उनके सामाजिक स्तर से या उनकी भूमिका से उसका संबंध है। लेकिन मानव तो सामाजिक प्राणी है, इसलिए उसकी भाषा में सामाजिक संरचना, सामाजिक व्यवहार और मानव संस्कृति का भी योगदान रहता है जिसके लिए शैलीविज्ञान उपयोगी सिद्ध होता है। सामाजिक स्थितियों में अपनी बात को संप्रेषित करने के लिए वक्ता की भाषा में परिवर्तन होता रहता है। टेलीफोन पर बात करते हुए कार्यालय में अपने अधिकारी या अधीनस्थ कर्मचारी के साथ बात करते हुए, कॉलेज में प्रिंसिपल या अन्य सहयोगी अध्यापकों तथा छात्रों के साथ बात करते हुए, भाषा बदलती रहती है। यहाँ पर शैलीविज्ञान वक्ता और श्रोता के स्तर को, उनके संबंधो को, भाषायी कोड या संहिता को और संदेश के विषय को ध्यान में रखता है जो उसके वाक् व्यवहार के केंद्र बिंदु हैं।

इसी प्रकार भाषा के सौंदर्यपरक पक्ष अर्थात् साहित्य का अध्ययन करते हुए केवल भाषावैज्ञानिक दृष्टि अपनाई गई तो शैलीवैज्ञानिक केवल भाषा के व्याकरणिक रूपों और तत्वों का विश्लेषण कर पाएगा, किंतु साहित्य के मूल्य और गुणों की जानकारी नहीं दे पाएगा। इस बात से कोई इनकार नही करेगा कि प्रत्येक अभिव्यक्ति का अपना वाह्य और आंतरिक पहलू होता है। अतः अभिव्यक्ति के तथ्यों से अवगत होने के लिए भाषावैज्ञानिक को भावों की जानकारी होना आवश्यक है। अभिव्यक्ति में भाव, विचार, संवेदनाएँ, सामाजिक स्तर आदि तत्व भी समाए होते हैं। अतः भाषा के भाषापरक पक्ष का अध्ययन करने के लिए शैलीविज्ञान ही समर्थ है। यदि भाषाविज्ञान की सहायता ली जाती है तो कृति के साथ अन्याय होगा। वस्तुतः शैलीविज्ञान में भाषा आधार के रूप में कार्य करती है तो उसका आधेय सौदर्य या सर्जनात्कता है जबकि भाषाविज्ञान में भाषा अध्ययन का आधार होती ही है, साथ में आधेय भी होता है।

भाषाविज्ञान भाषा की महत्तम इकाई वाक्य को मानता है जबकि शैलीविज्ञान वाक्य से ऊपर भी जाता है। भाषाविज्ञान भाषा के वाक्य के विश्लेषण तक ही सीमित है जबकि शैलीविज्ञान पूरी कृति को भी अपनी परिधि में समेट लेता है। इसीलिए आज प्रोक्ति विश्लेषण अर्थात् वाक्योपरि संरचना द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि शैलीविज्ञान भाष की सहज महत्तम इकाई वाक्य नहीं मानता बल्कि रचना, पैराग्राफ और चिंतन इकाई आदि की संरचात्मक व्याख्या करने में अधिक सक्षम है क्योंकि वह अंतर्वाक्य संयोजन की न तो उपेक्षा करता है और न ही चिंतन इकाई की। किसी साहित्यिक पाठ का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन करते हुए न केवल उसके वाक्य संबंधों का विश्लेषण करना होगा वरन् पाठ के अन्य पहलुओं यानी उसके वाक्यों, उपवाक्यों, कोशीय रूपों, व्याख्यात्मक अभिलक्षणों, तथा वक्ता और श्रोता के संबंधों की भी व्याख्या की जाएगी।

काव्य और भाषा के संबंधों को तीन संदर्भों में देखा जा सकता है :

(1) काव्य भाषा है अर्थात् पूर्णतया भाषा के क्षेत्र में आता है और इसलिए यह उसका एक अंग है। अतः काव्य की आलोचना भाषा के क्षेत्र में की जा सकती है।

(2) काव्य भाषा नहीं अपितु कला है। अतः वह भाषाविज्ञान के क्षेत्र के बाहर है।

(3) काव्य भाषा और कला के बीच आता है अर्थात् इसके कुछ पहलू भाषाविज्ञान के अंतर्गत आते हैं और कुछ कला के भीतर। इस प्रकार वह एक साथ दोनों विभिन्न क्षेत्रों का एक अंग है।

इन तीनों संबंधों पर चर्चा करते हुए एक विद्वान स्पोर्टा काव्य को पहले संबंध में ही रखते हैं। उनके मतानुसार दोनों संबंधों में आलोचना करने के लिए भाषाविज्ञानियों को अपने दायित्व एवं कार्यक्षेत्र से बाहर जाना होगा। वस्तुतः इसका कारण यह है कि भाषावैज्ञानिक विश्लेषण से जो तथ्य निकलते हैं वे साहित्यिक अनुभूति के परिणामस्वरूप प्राप्त सहजोपलब्ध अर्थ से भिन्न दिखाई देते हैं। इस कारण भाषाविज्ञान को काव्य की भाषा का रूप मान लिया गया होगा। यहाँ यह ध्यान में रखना है कि भाषा के सभी रूप काव्य नहीं हैं। वास्तव में स्पोर्टा के इस मत से यह झलकता है कि स्पोर्टा विश्लेषण की सीमा को ही काव्य की सीमा मान बैठे हैं। हमें यह भी देखना है कि काव्य भाषा का एक विशिष्ट रूप होते हुए भी अपनी स्वायत्त सत्ता रखता है। यदि हम भाषावैज्ञानिक विश्लेषण तक ही सीमित रहते हैं, तो हम काव्य की विभिन्न विशेषताओं का पता नहीं लगा सकेंगे और हमारा अध्ययन काव्यभाषा का अध्ययन नहीं होगा बल्कि वह शुद्ध भाषापरक अध्ययन रह जाएगा। अतः साहित्यिक अध्ययन में भाषावैज्ञानिक विश्लेषण के साथ-साथ साहित्यशास्त्रीय पहलुओं को भी लिया जाए तो साहित्य के सौंदर्यपरक तत्वों की खोज भी की जा सकेगी।

रोमन याकोब्सन जैसे विद्वान ने भी भाषाविज्ञान के क्षेत्र की सीमाओं का विस्तार करते हुए कहा कि भाषाविज्ञान प्रत्येक प्रकार की भाषा संरचना का सार्वजनिक विज्ञान है और काव्यशास्त्र को भाषाविज्ञान का अभिन्न अंग माना जा सकता है। याकोब्सन की यह दृष्टि अतिवादी है। भाषाविज्ञान किसी साहित्यिक कृति के ध्वनि-विधान, लय, छंद, वाक्य-रचना आदि को समझने में यदि सहायक हो भी जाता है लेकिन साहित्य के पारगामी क्रिया होने के कारण इसमें जो व्यंजना सौंदर्यानुभूति निहित रहती है, वह भाषाविज्ञान के द्वारा व्यक्त नहीं हो सकती और यहाँ काव्यशास्त्र उसकी सहायता के लिए आ पहुँचता है।

भाषाविज्ञान भाषा का वर्णनात्मक ज्ञान कराता है जबकि शैलीविज्ञान भाषा के सर्जनात्मक प्रयोग की ओर जागरूकता पैदा करता है। इस सर्जनात्मक प्रयोग से संदर्भानुसार अर्थ परिवर्तन हो जाता है और व्याकरणिक नियमों का अतिक्रमण होता है। शैलीविज्ञान ध्वनि, रूप, वाक्य एवं शब्द के स्तरों पर विशिष्टीकरण, विचलन और सर्जनात्मकता के संबंध में भाषाविज्ञान की सहायता करता है। इसमें शाब्दिक अर्थ की व्याख्या न करके अर्थगत विचलन की ओर ध्यान देना पड़ता है। 'चाँद मुस्करा रहा है', 'कलियाँ खिलखिला रही हैं', आदि वाक्यों को हम अर्थहीन या अनर्गल वाक्य इसलिए नहीं कह सकते क्योंकि 'मुस्कराना' या 'खिलखिलाना' क्रियाएँ न केवल चयनपरक प्रतिबंधों का अतिक्रमण करती हैं वरन् वक्ता और श्रोता को इन क्रियाओं के अर्थ के एक अंश को रद्द करके नए अर्थ की ओर संश्लेषित होना पड़ता है। इसमें चाँद और कली का जो मानवीकरण हुआ है और उसमें जो अर्थ निहित है उससे उसके प्रयोग के अभिप्राय या 'इंटेशन' का पता चलता है।

भाषा के साहित्यिक प्रयोग से कलात्मक अभिव्यक्ति भाषा प्रक्रिया के क्षेत्र में से बाहर नहीं रहेगी। यहाँ भाषाविज्ञान का कार्य केवल उस व्याकरण का निर्माण करना नहीं है जो भाषा में सुगठित एवं सुव्यवस्थित वाक्यों का सृजन करता है और उनकी व्याख्या करता है वरन् यह भी है कि भाषा के अंतःसंबंधों की भी खोज करना है जिनमें कोशीय अर्थों के साथ-साथ उनके बाहर भी जाना पड़ता है। अर्थात् सामाजिक, लाक्षणिक और व्यंजनापरक अर्थ भी ढूँढ़ने पड़ते हैं। उदाहरण के लिए; 'राम का बाप पत्थर है' वाक्य को शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता क्योंकि 'बाप' तो (+प्राणीवाचक) और (+मानव) है और पत्थर तो (+अप्राणीवाचक) और (+ठोस) है। यहाँ इस वाक्यीय अर्थ से वह बाहर होकर संदर्भपरक अभिलक्षणों के आधार पर देखना होगा, अतः इस वाक्य में नया अर्थ निकालते हुए 'निष्ठुरता' या 'कठोरता' के अभिलक्षणों से जोड़ना होगा, क्योकि ये शब्दों के कवेल सहजात अभिलक्षण नहीं हैं वरन् तथ्यात्मक सूचना के लक्षण भी हैं। यहाँ शैलीविज्ञान इसकी सहायता के लिए आ जाए तो भाषायी क्षमता को साथ-साथ भाषायी व्यवहार के कार्य में भी सहायता करेगा।

इस प्रकार भाषाविज्ञान से कलात्मक शैली की समस्याओं को नहीं सुलझाया जा सकता जो भाषा के विभिन्न प्रयोजनमूलक रूपों का एक अंतरंग अंग है। भाषावैज्ञानिक विश्लेषण विभिन्न संरचनात्मक तत्वों और प्रक्रियाओं का निर्धारण करता है। शैलीविज्ञान वाक् के सामान्य शैलीगत अभिलक्षणों की स्थापना करने में सहायता करता है। शैलीविज्ञानिक विश्लेषण का कार्यक्षेत्र वाक् के ठोस व्यवहार की संरचना है और उसके विशिष्ट तत्वों के चयन एवं उनके प्रयोगीकरण की विशिष्ट रीति है। शैलीविज्ञान भाषायी साधनों के प्रयोज़नमूलक इकाइयों का सही और वृहद ज्ञान दिलाने में सहायता करता है। अतः साहित्यिक कृति के शैलीवैज्ञानिक अध्ययन में केवल भाषा का अध्ययन नहीं आता वरन् उस कृति का अध्ययन भाषावैज्ञानिक विधि-प्रविधि को अपनाकर किया जाता है जो उसे वस्तुनिष्ठ बनाता है।

19.6 शैलीविज्ञान और साहित्यिक आलोचना

साहित्यिक कृति के सौंदर्य पक्ष का विवेचन एवं विश्लेषण मूल्यों के संदर्भ में (चाहे वे सामाजिक हों या मनोवैज्ञानिक या नैतिक) करना साहित्यिक आलोचना का विषय है। इस आलोचना से साहित्य की व्याख्या नैतिक या सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टि से की जाती है और साहित्य के भाषिक रूप की ओर ध्यान देना उचित नहीं समझा जाता और वह अध्ययन केवल व्यापक साहित्यिक अनुभवों पर आधारित होता है। लेकिन शैलीविज्ञान साहित्यिक कृति के सौंदर्यपक्ष को व्यक्त करने के लिए कृति की संरचना या संघटना का विश्लेषण करता है और इसीलिए इसे साहित्यिक विश्लेषण भी कहा जा सकता है। शैलीविज्ञान में साहित्यिक प्रयोजन के लिए भाषा संसाधनों के प्रयोग को गहराई से समझा जाता है। शैलीविज्ञान भाषा का अध्ययन करता है और इसलिए यह भाषाविज्ञान से अनिवार्यतः संबंधित है और यदि हम यह परिकल्पना करें कि इसमें कलात्मक भाषिक रचना की शैली का अध्ययन भी सम्मिलित है तो इसका संबंध काव्यशास्त्र या साहित्य सिद्धांत के साथ अवश्य ही है। साहित्यिक आलोचना का कार्य मूल्य-निर्णय और सौंदर्यानुभूति के बारे में बताना है जबकि शैलीविज्ञान उस भाषा का विश्लेषण करता है जिसमें साहित्य के मूल्य और साहित्य से हुई रसानुभूति समाहित होती है। इस प्रकार साहित्यिक आलोचना मूल्य-सापेक्ष है और शैलीविज्ञान मूल्य-निरपेक्ष। साहित्यिक आलोचना में कलात्मक मूल्यों को प्राथमिकता दी जाती है और भाषा को सौंदर्यपरक मूल्यांकन के लिए साक्ष्य के रूप में लाया जाता है जबकि शैलीविज्ञान में भाषा का आधार मानकर सौंदर्य को पकड़ा जाता है और कलात्मक मूल्यों को आनुषंगिक माना जाता है। शैलीविज्ञान की प्रकृति वर्णनात्मक है। किसी भी शैली का अध्ययन और विश्लेषण करता हुआ उसकी विशिष्टताओं का निर्णय करता है किंतु उसका मूल्यांकन नहीं करता। यही वैज्ञानिक विधि है। अतः इसकी दृष्टि से साहित्य की भाषा के समुचित विश्लेषण और स्पष्टीकरण से ही मूल्यांकन तथा समीक्षा के वास्तविक तत्वों की सही जानकारी हो सकती है। यदि साहित्यिक आलोचना में केवल आत्मपरक एवं यादृच्छिक धारणाओं से साहित्यिक कृतियों की समालोचना न की जाए तो हमारे विचार में शैलीविज्ञान को साहित्यिक आलोचना कहने में किसी को आपत्ति नहीं होगी। वास्तव में रामचंद्र शुक्ल की आलोचना पद्धति शैलीविज्ञान के अधिक निकट जा पड़ती है यदि वे लोकमंगल की भावना से साहित्यिक कृतियों की आलोचना न करते।

प्रश्न उठता है कि शैलीविज्ञान में किन पक्षों को लिया जाए जिससे वह साहित्य की सही जाँच पड़ताल और परीक्षण कार्य में समर्थ हो सके। वस्तुतः साहित्य का सही परीक्षण भाषा के विश्लेषण के बिना नहीं हो सकता। साहित्यिक संरचना के लिए भाषा का होना अनिवार्य है, इसलिए साहित्यिक अन्वेषक को प्रत्येक भाषिक रूप के सौंदर्यपरक पहुलओं पर दृष्टि रखनी होगी। अतः यह आलोचना तभी प्रभावकारी सिद्ध होगी यदि उसमें कृति का स्पष्टीकरण, अलंकार, छंद, बिंब, काव्यकला आदि तत्वों की जानकारी के साथ-साथ साहित्यिक विश्लेषण के परिभाषित तथा समुचित उपकरणों का सही प्रयोग किया जाए और इस कार्य में भाषाविज्ञान ही सहायता कर सकता है। जहाँ भाषाविज्ञान किसी कृति के साहित्यिक मूल्यों को सुलझाने में असमर्थ हो जाता है वहाँ साहित्यशास्त्र उसकी सहायता को जा पहुँचता है और जहाँ साहित्यशास्त्र भाषिक वैशिष्ट्य को नहीं पकड़ पाता वहाँ भाषाविज्ञान उसके साथ चल कर उसे उस वैशिष्ट्य की पूरी-पूरी जानकारी देता हैं। अतः जहाँ भाषा वैज्ञानिक अध्ययन समाप्त होगा वहीं पर साहित्यिक आलोचना प्रारंभ होती है।

भाषाविज्ञान का संबंध भाषा की संघटना या संरचना का पता लगाना है और साहित्यशास्त्र का सबंध कृति के सौंदर्यपक्ष का उद्घाटन करना है। इसलिए भाषाविज्ञान का दृष्टिकोण वस्तुपरक एवं यथार्थवादी है और वह साहित्यिक आलोचक को सैद्धांतिक अंतर्दृष्टि के साथ-साथ ठोस एवं व्यावहारिक पद्धति भी प्रदान करता है। साहित्यिक आलोचना भाषिक संरचना

का मूल्यांकन इस प्रकार करती है जिससे यह पता चले कि यह कला की वस्तु किस प्रकार बनी है और यह शाब्दिक कला अन्य कलाओं से विशिष्ट रूप से अलग क्यों है और इसे प्रमुख साहित्यिक अध्ययन मे प्रमुख स्थान क्यों मिला है? किंतु कठिनाई यह है कि साहित्य के आंतरिक मूल्य का अध्ययन यह आत्मपरक रूप में करती है जिससे साहित्य का वस्तुवादी विश्लेषण नहीं हो पाता। इसीलिए, भाषाविज्ञान और साहित्यशास्त्र के समन्वित अध्ययन पर बल देते हुए रोमन याकोब्सन जैसे विद्वान ने एक स्थान पर कहा है कि हम सबको महसूस करना चाहिए कि भाषा की काव्य प्रक्रिया के प्रति उपेक्षा भाव रखने वाले भाषाविज्ञानी ओर भाषावैज्ञानिक समस्याओं से उदासीन एवं भाषावैज्ञानिक प्रणालियों से अपरिचित साहित्यशास्त्री दोनों ही अपने समय से बहुत पीछे हैं। यूरोपीय विद्वान स्टेंकविक्ज ने भी इन दोनों दृष्टियों के परस्पर सहयोग का जोरदार समर्थन करते हुए कहा कि यदि भाषाविज्ञानी ओर काव्य समीक्षक के सहयोग को फलप्रद बनाना है तो यह आवश्यक है कि भाषाविज्ञानी को काव्यरूपों तथा उसकी परंपरा से संबंधित सभी समस्याओं से भली भाँति परिचित होना चाहिए तथा साहित्यिक आलोचक को भी आधुनिक भाषाविज्ञान द्वारा अपनायी जा रही नवीनतम पद्धति और इस क्षेत्र की उपलब्धियों का सही ज्ञान होना चाहिए। अतः इन दोनों दृष्टियों को आधार के रूप में लेकर शैलीविज्ञान साहित्य की उस संरचना, कोड या प्रकार्य का विश्लेषण करता है जिसके भीतर साहित्य के मूल्य समाहित होते हैं।

19.7 कविता का शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण

जयशंकर प्रसाद द्वारा चरित 'बीती विभावरी जाग री' कविता का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन इस प्रकार है :

कविता

बीती विभावरी, जाग री।
अंबर पनघट में डुबो रही
ताराघट उषा नागरी,
बीती विभावरी जाग री।
खगकुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो, यह लतिका भी भर लाई,
मधु-मुकुल-नवल-रस गागरी।
अधरो में राग अमंद पिए,
अलकों में मलयज बंद किए,
तू अब तक सोई आली,
आँखों से भरे विहाग री।

विश्लेषण

इस कविता की संरचना को समझने क लिए पहली पंक्ति में दो वाक्यों का संयोजन है। इसमें दो कथन मिलते हैं। पहले कथन में तारों भरी रात्रि अर्थात् विभावरी के बीत जाने का संकेत है और दूसरा कथन संबोधनपरक है जिसमें 'अरी, तू जाग जा' का अर्थ मिलता है।

इस कविता में प्रकृति विषयक एक अर्थक्षेत्र के अंतर्गत 'विभावरी' के साथ-साथ अंबर, तारा, उषा, खग, किसलय, लता, मुकुल, मलयज जैसे संज्ञापदों का चयन किया गया है। इनसे उनके अर्थगत अभिलक्षण इस प्रकार मिलते हैं, जिनसे उनके अंश – अंशी को परस्पर संबंध का परिचय होता है। जैसे :

1. अंबर – विभावरी – तारा
2. अंबर – उषा और लातिका – मुकुल

दूसरा शब्द-चयन मानव-जगत से संबद्ध है जिससे एक अलग प्रकार के अर्थक्षेत्र का निर्माण होता है। जैसे–नागरी, अधर, अलक, आँख, आली। इसी प्रकार पनघट, घट, गागरी संज्ञापदों का तीसरा अर्थक्षेत्र है। एक अन्य शब्द 'विहाग' संगीत क्षेत्र से संबद्ध है। यह प्रयोग साभिप्राय है।

कविता की पहली पंक्ति में वाक्य स्तर पर विचलन है। इसस पहले वाक्यांश में कर्त्ता और क्रिया का संयोजन है किंतु कर्म–नियोजन में अतिक्रमण हुआ है अर्थात् क्रिया पहले आती है और कर्त्ता बाद में–बीती विभावरी। दूसरे वाक्यांश में कर्त्ता (तू) का अध्याहार है। बाद की पंक्तियों में 'अंबर-पनघट', 'ताराघट' और 'उषा नागरी' शब्द-युग्मों में अर्थ स्तर पर विचलन है। यह विचलन साभिप्राय हुआ है और इससे 'रूपक अलंकार' की सृष्टि हुई है। इस वाक्य के क्रिया–व्यापार में मानवीय व्यापार का संकेत मिलता है।

दूसरे पद्यांश में 'खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा' में 'कुल' की आवृति से समांतरता की सृष्टि हुई है। 'खग कुल' और 'कुल-कुल' के 'कुल' में अर्थ स्तर पर विरोधमूलक समांतरता मिलती है जिससे यमक अलंकार' का जन्म हुआ है। इसके बाद 'किसलय' शब्द ने इस प्रयोग में औचित्य दिखाया है। 'किसलय' के चयन से 'कोपल' का अर्थ मिलता है। इसके अतिरिक्त, 'किसलय का अंचल' प्रयोग में साभिप्रायता दिखाई देती है क्योंकि 'अंचल' का संबंध नारी से है जो अर्थस्तरीय विचलन की दृष्टि से लतिका के द्वारा मानवीय व्यापार को द्योतित करती है। 'मधु-मुकुल-नवल-रस-गागरी' वाक्यांश के प्रयोग में लता में मानवीय व्यापारपरक शक्ति का परिचय नहीं मिलता क्योंकि 'मुकुल' की 'गागरी' नहीं हो सकती किंतु इससे एक सुंदर बिब अवश्य बन पड़ा है।

तीसरे पद्यांश में 'आँखों में भरे विहाग री' वाक्य में 'विहाग' राग का संकेत किया गया है जिससे यह अर्थ निकलता है कि अर्धरात्रि को प्रिय की प्रतीक्षा विफल होने पर कारुणिक स्वर में यह राग गाया जाता है। इसका सह-प्रयोग 'अधर' या 'स्वर' से बैठता है, आँख से नहीं। यह विचलन साभिप्राय हुआ है क्योंकि इससे विहाग की करुणा आँखों में मूर्तिमान हो उठती है।

कविता में 'अंबर-पनघट' से लेकर 'नवल-रस-गागरी' तक का कथन 'प्रकृति के जागने' का संकेत देता है, किंतु 'अधरो में राग' से लेकर अंतिम पंक्ति की 'विभावरी' तक का कथन 'नायिका के सोने' की सूचना देता है। अतः यहाँ 'जगाने' और 'सोने' में तथा 'प्रकृति' और 'नारी' में कथ्य के धरातल पर विरोध दिखाई देता है। इस विरोधमूलकता के कारण कविता की पहली पंक्ति सार्थक हो जाती है – 'तारों से जगमगाती रात्रि बीत गई है, अरी ओ! तू जाग जाग।'

इस कविता में 'अंबर पनघट', 'ताराघट' और 'उषा नागरी' अभिव्यक्तियाँ अपने कोशीय अर्थ की सीमा को तोड़कर व्यापक अर्थ की ओर अग्रसर हुई हैं। 'अंबर' से विस्तार, 'तारा' से 'जगमगाहट और विलासिता' तथा उषा से 'दीप्त चेतना' के प्रतीयमान अर्थ मिलते हैं। 'खग' सामान्य पक्षी का अर्थ न देकर आकाश में जाने वाले का अर्थ द्योतित करता है। 'किसलय का अंचल' से 'नवयुवक वर्ग' का और लतिका से 'नवयुवती' का अर्थ मिलता है। कवि स्वयं अभिप्रेरक बनकर जनसमाज को जागृत करने के लिए संबोधन करता है। इस प्रकार कवि ने प्रकृति के बिंब विधान से रात्रि और उषा का जो संयोजन किया है उससे कवि ने सामंतशाही की विलासिता ओर श्रृंगारिकता की चकाचौंध में लिप्त जनसमाज को जागृत करने के लिए आह्वान किया है। इस कविता में युवाओं में नवचेतना अर्थात् सांस्कृतिक चेतना जागृत करने का प्रयास किया है। रात्रि के कई पर्याय हैं किंतु यहाँ विभावरी का सार्थक प्रयोग हुआ है क्योंकि विलासिता की विभावरी के बीतने की बेला ने

जन-समाज की दृष्टि में विहाग-ही-विहाग की करुण छाया है। अतः इस कविता से यथास्थिति से मुक्त होने का संदेश प्राप्त होता है।

इसमें एक अन्य अर्थ भी निकलता है। इसमें प्रकृति में मानवीकरण का आरोपण किया गया है। प्रकृति का प्रतीक रूप में चित्रण हुआ है। उषा नागरी से अभिप्राय उषा रूपी रसिक नारी से है। इससे यह व्यंजना निकलती है कि रात्रि बीत गई है, अब प्रिय नहीं आएगी और तुम्हारे विहाग राग को अर्थात् तुम्हारी वेदना को हम समझ सकते हैं।

19.8 सारांश

शैलीविज्ञान वह आलोचना प्रणाली है जिससे साहित्यिक कृति की समझदारी को विकसित और व्यवस्थित किया जाता है। यह एक वस्तुनिष्ठ और भाषापरक आलोचना है जो साहित्य के मर्म तक पहुँचाने में सहायक है। शैलीविज्ञान साहित्य को भाषिक कला की श्रेणी में रखता है जिसके एक ओर कला है और दूसरी ओर भाषा। भाषा के बिना साहित्य की रचना नहीं हो पाती। वास्तव में भाषा के गर्भ से ही साहित्य का सृजन होता है। भाषा का सर्जनात्मक प्रयोग शैली है जिसके अंतर्गत कलात्मक सौंदर्य और भाषिक संरचना अंतर्निहित रहते हैं। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में शैली का सैद्धांतिक विवेचन तो कम हुआ है किंतु उसकी विशेषताओं और गुण-दोषों पर चर्चा अवश्य हुई है। शैली को एक विलक्षण और विशिष्ट पद्धति माना गया है जिसमें जातिगत और व्यक्तिगत विशिष्टताओं का, प्राचीनता और नवीनता का, स्थायित्व और परिवर्तन का विचित्र संयोजन है और इससे सरलता, स्पष्टता, प्रभावोत्पादकता, लयात्मकता आदि का प्रादुर्भाव होता है। भारतीय कलाशास्त्र में 'शैली' शब्दों का प्रयोग विभिन्न कलाओं के संदर्भ में मिलता है किंतु काव्यशास्त्र में शैली शब्द रीति सिद्धांत के अधिक निकट जा पड़ता है। इसके अतिरिक्त शैली के विकास में अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति, रस और औचित्य सिद्धांतों का भी कम योगदान नहीं रहा। आधुनिक संदर्भ में शैली को विचारों के आवरण के रूप में, अलंकरण के रूप में, व्यक्ति-वैशिष्ट्य के रूप में, प्रतिमान से विचलन के रूप में, चयन के रूप में तथा वाक्योपरि भाषायी विशेषताओं के समुच्चय के रूप में परिभाषित किया गया है। इस प्रकार शैली में अभिव्यंजना की एक ऐसी शक्ति अंतर्निहित होती है जो कवि के सर्जनात्मक प्रयोग को सौंदर्यमूलक और प्रभावोत्पादक बनाती है।

साहित्य के इसी शैलीपरक प्रयोग का अध्ययन शैलीविज्ञान करता है। शैलीविज्ञान का प्रतिपाद्य है साहित्यिक कृति और उसके विश्लेषण का केंद्रबिंदु है कृति की काव्यात्मकता और सर्जनात्मकता। वह आलोचना की वह भाषापरक प्रणाली है जो दर्शन के साथ विज्ञान भी है और इसमें विश्लेषण की विधि-प्रविधि मिलती है। आलोचना के दो आयाम हैं – (1) बहिरंग आलोचना और (2) अंतरंग आलोचना। बहिरंग आलोचना में पाठक, दर्शन, सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों आदि की दृष्टि से साहित्यिक कृति का अध्ययन किया जाता है। अंतरंग आलोचना में साहित्यिक कृति को स्वायत्त इकाई मानकर आंतरिक संरचना का अध्ययन होता है और उससे कृति की साहित्यिकता और सर्जनात्मकता की खोज की जाती है। वास्तव में अंतरंग आलोचना ही शैलीविज्ञान है।

शैलीविज्ञान का प्रादुर्भाव बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में स्वीट्ज़रलैंड के जेनेवा स्कूल के सुविख्यात चार्ल्स बेली द्वारा हुआ। बेली ने भाषा के अभिव्यंजक पक्ष और उसकी प्रक्रिया के अध्ययन को शैलीविज्ञान कहा है। यद्यपि बेली ने साहित्यिक कृति को शैलीविज्ञान के अंतर्गत नहीं रखा किंतु उनके सिद्धांत जहाँ भाषा-प्रयोक्ता के सौंदर्यपरक और प्रभावोत्पादक तत्वों पर लागू होते हैं वहाँ साहित्यकार की भाषा पर भी लागू होते हैं। हिंदी में शैलीविज्ञान को कुछ विद्वान शैलिकी कहते हैं और कुछ विद्वान रीतिविज्ञान कहते हैं। किंतु शैलीविज्ञान नाम को अपेक्षाकृत अधिक स्वीकार किया गया है।

शैलीविज्ञान भाषाविज्ञान की अनुप्रायोगिक विधा है। साहित्यिक कृति के मर्म तक पहुँचने के लिए भाषावैज्ञानिक नियमों और सिद्धांतों का अनुप्रयोग किया जाता है किंतु भाषा के सौंदर्यपरक तत्वों के विवेचन में भाषाविज्ञान असफल हो जाता है। अतः शैलीविज्ञान भाषा को आधार के रूप में तो लेता है किंतु साहित्यिक कृति के सौंदर्यपरक और सर्जनात्मक प्रयोगों तक पहुँचने के लिए कलापरक उपकरणों की उसे सहायता लेनी पड़ती है। यहाँ साहित्यशास्त्र और साहित्यिक आलोचना साहित्यिक कृति के कलात्मक रूपों तथा साहित्यिक मूल्यों का सही मूल्यांकन करने में समर्थ हैं।

19.9 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

(1) शैलीविज्ञान और भाषाविज्ञान में अंतर स्पष्ट करते हुए यह भी बताइए कि शैलीविज्ञान भाषाविज्ञान है अथवा एक स्वतंत्र विधा।

(2) शैलीविज्ञान और साहित्यिक आलोचना के पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट करते हुए बताइए कि शैलीविज्ञान में साहित्यिक आलोचना की क्या भूमिका है?

(3) काव्य और भाषा के संबंधों के आधार पर क्या आप सहमत हैं कि भाषाविज्ञान और साहित्यिक आलोचना का समन्वित रूप शैलीविज्ञान है। इस संबंध में अपना मत/तर्क सहित दीजिए।

2. टिप्पणियाँ

1. भारतीय वाङ्मय में शैली की व्युत्पत्ति
2. पाश्चात्य काव्यशास्त्र में शैली की संकल्पना
3. शैली – प्रतिमान के विचलन के रूप में
4. शैली के व्यक्ति वैशिष्ट का स्वरूप
5. बहिरंग आलोचना और अंतरंग आलोचना

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से जो कथन सही हो उस पर (√) का निशान लगाइए और जो गलत है उस पर (×) का निशान लगाइए।

1. साहित्य एक भाषिक कला है। (सही/गलत)
2. भाषा के बिना साहित्य की रचना हो सकती है। (सही/गलत)
3. साहित्य के भाषापरक अध्ययन को शैलीविज्ञान कहते हैं। (सही/गलत)
4. शैली भाषा का सर्जनात्मक प्रयोग है जिसमें कलात्मक सौंदर्य और भाषिक संरचना का समन्वय होता है। (सही/गलत)
5. भारतीय काव्यशास्त्र में शैली शब्द रीति सिद्धांत के निकट नहीं माना गया है। (सही/गलत)
6. वक्रोक्ति वह उक्ति अथवा कथन-शैली है जो साधारण भाषा प्रयोग से भिन्न तथा विशिष्ट होती है। (सही/गलत)
7. शैली व्यक्ति-वैशिष्ट्य नहीं है। (सही/गलत)
8. शैली वाक्योपरि भाषायी विशेषताओं का समुच्चय है। (सही/गलत)

उत्तर

1. सही, 2. गलत, 3. सही, 4. सही, 5. गलत, 6. सही, 7. गलत, 8.

इकाई 20 कोश विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 कोश के विविध नाम
20.3 कोश विज्ञान और शब्दार्थ विज्ञान
20.4 कोशों के प्रकार
20.5 कोश निर्माण की प्रक्रिया
  20.5.1 नियोजन
  20.5.2 प्रविष्टियों का चयन
20.6 कोशीय प्रविष्टि की संरचना
  20.6.1 नामांकन
  20.6.2 प्रतिसंदर्भ
20.7 सारांश
20.8 अभ्यास प्रश्न

20.0 उद्देश्य

आधुनिक युग में बहुभाषिता की स्थिति के कारण हम सब लोगों को कोश देखना पड़ता है। इस कारण कोश विज्ञान की प्रक्रिया की जानकारी हमें विविध कोशों के उपयोग में सहायता दे सकते हैं। इसके बाद अगर व्यक्ति कोश विज्ञान में रुचि रखता है तो इस इकाई से उसे कोश निर्माण का परिचय मिलेगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- कोशों के प्रकार बता सकेंगे;
- अनुप्रयोग भाषाविज्ञान के रूप में कोश विज्ञान का स्वरूप समझा सकेंगे;
- कोश कैसे बनाए जाते हैं इस प्रक्रिया का स्वरूप समझा सकेंगे; और
- कोश की प्रविष्टि को सोदाहरण समझा सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

कोशकार भाषा का इतिहासकार होता है। उसका कर्त्तव्य होता है कि वह किसी भी शब्द के स्वरूप और अर्थ का यथातथ्य निरूपण, विश्लेषण और विवेचन करे। उसका संबंध 'क्या है? कैसा होता है 'क्या होना चाहिए?' से नहीं। जैसे एक भूगोल का विद्वान सिर्फ इतना ही बयान कर सकता है कि गंगा हिमालय से निकलाकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है अथवा विन्ध्यांचल भारत के बीच में स्थित है। भूगोलवेत्ता के लिए यह कहना अनुचित होगा कि गंगा को ऐसे नहीं वैसे बहना चाहिए। कोशकार का काम बहुत कुछ ऐसा ही होता है लेकिन इसमें एक अंतर होता है। कोशकार अपनी ओर से चाहे कितना ही वस्तुनिष्ठ क्यों न हो, कोश का प्रयोजन और सामग्री का प्रस्तुतीकरण ऐसा होता है कि उसके द्वारा 'क्या होना चाहिए' के लिए इंगित मिलता ही है। आगे चलकर समय के साथ कोश किसी भी रूप या अर्थ को स्थिरता और मानकता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यहाँ यह उल्लेख करना उचित होगा कि बहुत सारे कोशों का निर्माण भाषा के मानकीकरण के लिए ही किया जाता है। सत्रहवीं-अठाहरवीं शताब्दी से आरंभ कर आज तक यूरोप की बहुत सी भाषाओं के अकादमिक कोशों के पीछे यही उद्देश्य रहा है। 'फ्रांसीसी, इतालवी, स्पेनी और रूसी अकादमियों के कोशों तथा जानसन के प्रसिद्ध अंग्रेजी कोश ने अपनी-अपनी भाषाओं के मानकीरण में जो महत्वपूर्ण योगदान दिया है वह सर्वविदित है।

इसमें संदेह नहीं कि कोश भाषा के मानकीरकण में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं लेकिन इससे यह निष्कर्ष निकालना अत्यंत भ्रांतिपूर्ण होगा कि कोशकार मानकीकरण जानबूझ कर करता है। होता यह है कि लोग कोश की अनेक बार सत्य उचित आदि के लिए देखते हैं और धीरे-धीरे ये ही रूप/अर्थ मान्यता प्राप्त कर लेते हैं।

मानव ज्ञान की प्रगति के साथ-साथ अन्य विषयों की तरह कोशों की उपयोगिता में वृद्धि हुई है। कोश अब मात्र संदर्भ ग्रंथ ही नहीं रह गए हैं। उनके प्रयोग के नए आयाम सामने आए हैं। 'भाषा शिक्षण' भाषा नियोजन तकनीकी शब्दावली का गठन और सामग्री निर्माण आदि विभिन्न क्षेत्रों में कोशों का उपयोग दिन-ब-दिन बढ़ रहा है।

यातायात और संचार के साधनों में वृद्धि के साथ-साथ दुनिया दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच नाना प्रकार के आदान-प्रदान चाहे वे विचार के स्तर के हों या वस्तु या तकनीक के – बढ़ रहे हैं। इसके लिए एक से अधिक भाषाओं के ज्ञान की अवश्यकता होती है। अनुवाद करने पड़ते हैं। इन सबके लिए द्विभाषी या बहुभाषी कोशों की बहुत आवश्यकता पड़ती है।

आजकल अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की अन्य शाखाओं के साथ कोश विज्ञान का पठन-पाठन भी होने लगा है। इसके लिए भी कोश कला या कोश रचना और कोश विज्ञान का ज्ञान आवश्यक है।

20.2 शब्दकोश के विविध नाम

कोश या शब्द कोश को भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से ही बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता रहा है। निरुक्त का स्थान बेदागों में अन्यतम है। कोश को अर्थ निर्धारण के लिए आप्त प्रयोग की तरह प्रामाणिक एवं आधारभूत तत्व माना जाता रहा है। व्याकरण के साथ ही कोश की रचना पाण्डित्यपूर्ण समझी जाती रही है।

कोश के लिए भारतीय भाषाओं में अनेक नाम मिलते हैं। प्रत्येक नाम का अपना अर्थ और महत्व है। इसके द्वारा कोश की सामग्री के संकलन और उसके प्रस्तुतीकरण की ओर इंगित मिलते हैं।

कोश के लिए सबसे प्राचीन नाम 'निघण्टु' है। यास्क का निरुक्त निघण्टु पर ही आधारित है। परवर्ती काल में इस शब्द का प्रयोग पर्यायवाची अनेकार्थ, नानार्थ आदि कोशो के लिए किया गया। कन्नड़, मलयालम और तेलुगु में अब भी कोश को निघण्टु की ही संज्ञा दी जाती है। मलयालम में अंग्रेज़ी के Lexicon शब्द के लिए 'महानिघण्टु' शब्द का प्रयोग किया गया है। तमिल के प्राचीन कोश ग्रंथों को निघण्टु की संज्ञा दी गई है।

कोश का दूसरा महत्वपूर्ण नाम 'अभिधान' है। अभिधान का अर्थ 'नाम' होता है। अभिधान नाम वाले ग्रंथों में हेमचन्द्राचार्य का 'अभिधान चिंतामणि' सर्वश्रेष्ठ है। हलायुध कृत "अभिधान रत्नमाला" भी उल्लेखनीय है। बंगला और असमिया में कोश के लिए अभिधान शब्द का प्रयोग किया जाता है।

कोश के लिए अन्य प्रयुक्त शब्द हैं – शब्द कल्पद्रुम, शब्दार्थ कोस्तुभ, शब्द पारिजातम, शब्द चिंतामणि शब्द सागर, शब्द महार्णव, शब्द रत्नाकर, शब्द मुक्तावली, शब्द मंजरी आदि। इनमें से प्रत्येक नाम कोश के किसी न किसी पहलू के संदर्भ में अर्थवान हैं और कोश के पक्ष विशेष पर प्रकाश डालते हैं।

जिस तरह कल्पद्रुम, चिंतामणि या कौस्तुभ मणि के संबंध में यह धारणा है कि वे वाचक को निमिप मात्र में उसकी इच्छानुसार सब कुछ देने में समर्थ होते हैं उसी प्रकार कोश के विषय में भी यह धारणा और विश्वास है कि उसमें पाठक द्वारा अपेक्षित सभी सूचनाएँ अवश्यमेव तत्काल ही मिल जाती हैं। इसीलिए कोश के लिए ये नाम दिए गए हैं।

किसी भी भाषा में शब्दों की संख्या अनगिनत होती है। इसके अलावा भाषा में नए शब्दों और नए प्रयोगों के निर्माण की भी क्षमता होती है। भाषा से नित्य नए शब्दों और प्रयोगों का निर्माण हुआ करता है। इसीलिए शब्द का भंडार समुद्र की तरह व्यापक और अनंत होता है। शब्द महार्णव, शब्द सागर, शब्द रत्नाकर आदि नाम कोशों में शब्दों की संख्या के द्योतक होते हैं। शब्द तारावली का भी यही अर्थ है।

शब्द कौमुदी, शब्द चंद्रिका और शब्द दीपिका जैसे नामों के द्वारा कोश की वर्णनात्मक क्षमता की ओर संकेत मिलता है। जिस प्रकार चंद्रिका या दीपक अंधकार को दूर कर प्रकाश करते हैं, उसी प्रकार कोश शब्दों के गूढ़ और छिपे हुए अर्थों या अन्य विशेषताओं पर प्रकाश डालकर उन्हें उपायोग के लिए प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त कोश उस व्यक्ति को जो शब्द के किसी भी पक्ष को नहीं जानता है उस संबंध में आवश्यक सूचना देकर उससे उस शब्द संबंधी अंधकार को मिटा देता है।

शब्द मुक्तावली, शब्द मंजरी या रत्नावली आदि के द्वारा कोश में शब्दों के संग्रह की विधि औरा नियोजन की पद्धति की ओर संकेत मिलता है। कोश में शब्द ऐसे सजाए जाते हैं जैसे माला या मंजरी में फूल और या मणि मुक्ता।

इस प्रकार कोश के नाम भी हैं जिनका उद्देश्य भी कोश की प्रकृति या प्रकार या उपयोगिता का बोध करना होता है।

20.3 कोश विज्ञान और शब्दार्थ विज्ञान

कोश विज्ञान (Lexicography)

भाषा का शब्दकोश एक संदर्भ ग्रंथ है, जिससे भाषा का प्रयोक्ता शब्दों के संदर्भ में उनका अर्थ तथा प्रयोग, शब्द का उच्चारण, उसकी व्युत्पत्ति और विकास (याने शब्द किस स्रोत से आया और कालक्रम में उसमें क्या परिवर्तन हुए आदि), शब्द से व्युत्पन्न अन्य रूप, शब्द से बने मुहावरे आदि, शब्द की व्याकरणिक विशेषताएँ (जैसे संज्ञा, क्रिया आदि शब्द वर्ग, उन वर्गों के संदर्भ में लिंग, वचन आदि रूप परिवर्तन), अर्थ की दृष्टि से शब्द के पर्याय, विलोम--ये सारी जानकारियाँ प्राप्त करता है। इस प्रकार शब्दों के संदर्भ में इन सभी सूचनाओं को क्रमबद्ध रूप में, व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने की कला को ही कोश विज्ञान कहा जाता है। कोश विज्ञान विविध कोशों के संदर्भ में अच्छे कोश के निर्माण का ज्ञान देता है।

शब्दार्थ विज्ञान (Lexicology)

शब्दार्थ विज्ञान में शब्द के रूप और अर्थ का अध्ययन किया जाता है। किसी भी भाषा की संपूर्ण शब्द राशि या शब्दों के समूह को उस भाषा का 'शब्दभंडार' कहा जाता है। भाषा में शब्दों की संख्या अगणित होती है। शब्द नाना प्रकार के होते हैं और उनके प्रयोग, व्यवहार आदि में बड़ी विविधता होती है, इसलिए प्रायः यह समझा जा सकता है कि भाषा के शब्द भंडार में शब्दों की कोई नियमित व्यवस्था नहीं होती। वे विशृंखल और अव्यवस्थित होते हैं तथा एक दूसरे से संबंधित नहीं होते। लेकिन वास्तव में ऐसी बात नहीं है। थोड़ा सा भी ध्यान देने से पता चल जाएगा कि भाषा के शब्द विशृंखल नहीं होते। वे आपस में एक

व्यवस्थापक रूप में संबंधित होते हैं। प्रत्येक शब्द की अपनी सत्ता होती है, अपना अस्तित्व होता है और इस दृष्टि से वह शब्द एक स्वतंत्र इकाई होता है। यह इकाई अन्य इकाइयों से अलग नहीं होती बल्कि उनके साथ संयुक्त होती है। वह भाषिक व्यवस्था का एक अंग होती है। उसका प्रयोग या व्यवहार अन्य इकाइयों से संदर्भित होता है। शब्दों का यह पारस्परिक संबंध दो प्रकार का होता है।

शब्दार्थ विज्ञान में शब्दों के इन दोनों प्रकार के संबंधों का अध्ययन किया जाता है।

(क) रूपावली संबंध :

इसके अंतर्गत शब्दों की एक इकाई अन्य इकाइयों के साथ परस्पर परिवर्तनीयता या प्रतिस्थापन के रूप में संबद्ध होती है। दूसरे शब्दो में, प्रत्येक शाब्दिक इकाई एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त हो सकती है चाहे अर्थों में भले ही कोई अंतर क्यों न आ जाए।

शाब्दिक इकाइयों के रूपावली-संबंध को परस्पर व्यतिरेक, समानता या विरोध के आधार पर माना जाता है। उनका अध्ययन भी इसी आधार पर किया जाता है। इससे शब्दों का अभिधात्मक अर्थ ज्ञात होता है। इसके अंतर्गत पर्याय, विपरीतार्थक शब्द आदि आते हैं।

(ख) रेखीय या विन्यासात्मक संबंध

यह संबंध दीर्घतर संरचना में शब्दों के प्रयोग या व्यवहार और उनके परस्पर संबंध पर आधारित होता है। इसके अंतर्गत शब्दों के व्याकरणिक अर्थ का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए, 'राम आम खाता है' में राम' का 'आम' और 'खाता है' के साथ संबंध रेखीय और विन्यासात्मक संबंध है। उसके द्वारा यह ज्ञात होता है कि 'राम' इस वाक्य का कर्ता है 'आम' कर्म और 'खाता है' क्रिया।

शब्दभंडार भाषिक व्यवस्था का वैसा ही एक अंग है जैसा ध्वनिशास्त्र या स्वनिमविज्ञान या रूपिम विज्ञान या वाक्य विन्यास। इसलिए इसका अध्ययन इन अंगों से अलग हटकर निरपेक्ष रूप से नहीं किया जा सकता। इनमें आपस में बड़ा गहरा संबंध है।

शब्दार्थ विज्ञान और ध्वनि विज्ञान

शब्दों का एक रूप होता है। वे स्वनिमों से बनते हैं। स्वनिमों के निर्धारण में अर्थ का अप्रत्यक्ष योगदान होता है। उदाहरण के लिए, 'कम' और 'काम' के अर्थ को अंतर स्वरों की भिन्नता और आश्रित है। शब्दों की प्रकृति और प्रत्ययों तथा उनके विभिन्न रूप परिवतर्नों का अध्ययन शब्दार्थ विज्ञान और ध्वनि विज्ञान दोनों में समान रूप से किया जाता है।

शब्दार्थ विज्ञान में शब्दों के गठन और अर्थ का सैद्धांतिक रूप से अध्ययन किया जाता है। यह मूलतः सिद्धांत-प्रधान होता है। कोश विज्ञान में भी इसके सिद्धांतों का अपना महत्व है, अपनी अहमियत है लेकिन कोश विज्ञान में व्यवहार पक्ष का अधिक महत्व होता है। उसका यही पक्ष मूल और आधारभूत होता है। कोश विज्ञान में शब्दार्थ विज्ञान या भाषा विज्ञान के किसी भी सिद्धांत की तब तक कोई सार्थकता या उपादेयता नहीं होती जब तन उसका कोई व्यावहारिक प्रयोग न हो। व्यावहारिक उपयोगिता कोश विज्ञान का प्राण होती है।

कोश विज्ञान और भाषाविज्ञान

कोश विज्ञान एक अनुप्रयुक्त विज्ञान है। एक और मानव जीवन की बहुत-सी आवश्यकताओं की पूर्ति में कोश का उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए, शब्दों का उच्चारण, अर्थ, प्रयोग आदि कोश के द्वारा मालूम किए जाते हैं। दूसरी ओर कोश विज्ञान की बहुत सी समस्याओं का समाधान भाषाविज्ञान और अन्य मानव विज्ञानों में उपलब्ध सामग्री की सहायता से किया जाता है। इसलिए कोश विज्ञान का अन्य मानव विज्ञानों (विशेषकर

भाषाविज्ञान) से बहुत गहरा संबंध है। भाषाविज्ञान का इसके साथ संबंध इतना आंतरिक और सघन है कि इसकी अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की संज्ञा दी जाती है।

कोश विज्ञान के क्षेत्र में भाषाविज्ञान के योगदान का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है। कोश विज्ञान को भाषाविज्ञान की विभिन्न शाखाओं की सहायता लेनी पड़ती है। जैसे स्वनिम और वर्तनी के निर्धारण के लिए स्वनिम विज्ञान की, व्याकरणिक कोटि के निर्धारण के लिए व्याकरण की और प्रयोग के लिए वाक्य विन्यास की।

कोश की प्रविष्टि के मूल शब्द (शीर्ष शब्द या प्रविष्टि शब्द) के निर्धारण के लिए कोशकार को भाषा के व्याकरण के ज्ञान की आवश्यकता होती है।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के द्वारा शब्दों के रूप और अर्थ की उत्पत्ति, विकास और परिवर्तन के क्रम को जानने में सहायता मिलती है। इससे बहुअर्थक शब्दों के मुख्यार्थ या केंद्रीय या आधारभूत अर्थ को जानने में सुविधा होती है और उसके आधार पर कोशकार प्रविष्टि में अर्थों का क्रम निर्धारित करता है।

बोलियों के कोशों के लिए बोली विज्ञान की आवश्यकता होती है। इसके लिए सर्वेक्षण पद्धति और क्षेत्र पद्धति का ज्ञान आवश्यक होता है।

द्विभाषी कोशो के लिए दोनों भाषाओं का व्यतिरेकी विश्लेषण आवश्यक होता है। इसके द्वारा दोनों भाषाओं में उपलब्ध समान अर्थ, व्याकरणिक कोटि और प्रयोग वाले शब्दों को स्थिर करके एक साथ रखने में सहायता मिलती है।

कोश विज्ञान और समाज भाषाविज्ञान

कोश विज्ञान का समाज भाषाविज्ञान से सीधा संबंध है। कोशों में सम्य, अश्लील जैसे नामांकन दिए जाते हैं। इन नामांकनें को स्थिर करने में समाज भाषाविज्ञान और सर्वेक्षण पद्धति का प्रयोग करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कुछ शैलीगत नामांकन भी कोशों में मिलते हैं। इनके निर्धारण के लिए शैली विज्ञानपरक अध्ययन का आश्रय लेना पड़ता है।

कोश की सारी प्रक्रिया में कोशकार को विभिन्न स्तरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। इस प्रक्रिया में कोशकार बहुत सारे ऐसे निर्णय लेता है जिससे कोश प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से भाषा में मानकीकरण पर प्रभाव डालता है। अनेक क्षेत्रों में इस प्रभाव को स्पष्ट देखा जा सकता है। कोश को लोग संदर्भ ग्रंथ की तरह देखते हैं। उसके लिए वह आप्त वाक्य जैसे होता है। इसलिए कोश के रूप कालांतर में भाषा के मानक रूप बन जाते हैं।

संसार की बहुत सारी भाषाओं में अनेक कोशों का निर्माण भाषा के मानकीकरण के लिए किया गया है और उनको मानक कोश की संज्ञा भी दी गई है। इनका मुख्य उद्देश्य भाषा का स्थिरीकरण और मानकीकरण होता है। इसके लिए इन कोशों में उन भाषाओं के स्तरीय सृजनात्मक साहित्य और वैज्ञानिक ग्रंथों से सामग्री का संकलन किया जाता है। उनमें से उद्धरण लिए जाते हैं। उन उद्धरणों में प्रयुक्त शब्दों की कोश में प्रविष्टि दी जाती है। इस सामग्री के आधार पर कोश का निर्माण किया जाता है। उनमें सस्ते साहित्य आदि के लिए स्थान नहीं होता और इसके साथ ही बोलियों की सामग्री तथा सामाजिक विकल्पनों को भी इसमें प्रविष्ट नहीं किया जाता। रूसी भाषा का अकादमी कोश, फ्रांसीसी, इतालवी आदि के अकादमी कोश इसी उद्देश्य से बनाए गए थे।

कोश का एक मुख्य कार्य कोडिफिकेशन है। इस कार्य के अनुसार कोश भाषा के रूपों को स्थिर करते हैं। उन रूपों का लोक में प्रयोग होता है और धीरे-धीरे ये प्रयोग मनक बन जाते हैं। ऐसा करते समय कोशकार भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्द के विविध रूपों में से सबसे अधिक आवृत्ति वाले और अधिकांश लोगों के द्वारा मान्य रूपों को अपने कोश में प्रविष्ट करके उन शब्दों को वरीयता प्रदान करता है इस प्रकार उस शब्द के साथ ही साथ भाषा के मानकीकरण में योगदान करता है। उदाहरण के लिए हिंदी, में 'दीवार' और 'दीवाल' दो शब्द प्रचलित है। 'दीवार' शब्द अधिक प्रयुक्त है। हिंदी के कोशों (मानक, बृहत् आदि) से यह शब्द मुख्य प्रविष्टि के रूप में दिया गया है और इस प्रकार यह धीरे-धीरे सर्वमान्य होता जा रहा है।

मानकीकरण के क्षेत्र में कोश का सबसे बड़ा योगदान होता है, मुख्य रूप से तकनीकी शब्दावली के क्षेत्र में। यहाँ कोश विभिन्न प्रतिस्पर्धी शब्दों में से एक को वरीयता देकर उसको सर्वमान्य बनाने और उसे सर्वजन प्रयुक्त बनाने में मदद करते हैं।। इसके अतिरिक्त भाषा की संरचनात्मक शक्ति के आधार पर नए रूपों का गठन करके भाषा की सृजनात्मकता को उभारते और विस्तृत करते हैं। जैसे फिल्म से फिल्मीकरण, फिल्माना है।

20.4 कोशों के प्रकार

कोश के लिए प्रयुक्त विभिन्न नामों पर पहले ही विचार किया गया है। कोश मुख्य रूप से संदर्भ ग्रंथ होते हैं। कोश में किसी भी भाषा के शब्दों के उच्चारण, व्याकरणिक कोटि, व्युत्पत्ति, अर्थ, प्रयोग, पर्याय आदि से संबंधित विवरण दिया जाता है। कुछ कोशों में ये सभी सूचनाएँ दी जाती हैं, कुछ में कुछ कम। सुविधा के लिए कोश की प्रविष्टियाँ (शब्द और उससे संबंधित सूचना) को एक निश्चित क्रम से व्यवस्थित किया जाता है। आजकल संसार की सभी भाषाओं में वर्णानुक्रम के अनुसार ही कोशों में प्रविष्टियों को रखा जाता है। अर्थगत आधार पर भी प्रविष्टियों की व्यवस्था अन्य कोशों में मिलती है। वर्णानुक्रमिक व्यवस्था से एक बहुत बड़ा लाभ होता है कि शब्दों को बिना परिश्रम के खोजा जा सकता है। शायद इसीलिए बहुत से ऐसे ग्रंथ, जिन्हें सामान्यतः कोश नहीं कहा जा सकता, तो भी शब्दों को वर्णानुक्रम से व्यवस्थित करने पर और उन्हें भी कोश की संज्ञा दी जाती है। उदाहरण के लिए चरित्र कोश, जीवनी कोश आदि।

कालक्रम, आकार, भाषा, प्रविष्टियों की प्रकृति, संख्या और विवरण के आधार पर कोश कई प्रकार के हो सकते हैं। कोशों का वर्गीकरण बहुत महत्वपूर्ण होता है; क्योंकि कोश-निर्माण की सारी प्रक्रिया कोश के प्रकार पर आधारित होती है।

कोशों के वर्गीकरण के मुख्य सिद्धांत निम्न होते हैं :
(1) प्रविष्टि की प्रकृति (2) कोश का भाषा का काल (3) कोश से वर्णित भाषा की संख्या (4) कोश का उद्देश्य (5) कोश की प्रविष्टि की सतनता (6) कोश में प्रविष्टियों की व्यवस्था।

भाषायी कोशों की एक विशेष कोटि को विश्व कोश (eneyclopaedia) कह सकते हैं। इसमें प्रविष्टि में दी जाने वाली सूचना और उसकी प्रकृति में दोनों प्रकार के कोशों के लक्षणों का समावेश होता है। वस्तुतः अगर ध्यान से देखा जाए तो प्रायः प्रत्येक कोश में, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो विश्व कोशीय सूचना मिलती ही है। यह विश्वकोशीय सूचना संस्कृतिपरक शब्दों की परिभाषा के लिए आवश्यक हो जाती है। उन शब्दो के वर्णन के लिए भाषावैज्ञानिक या भाषायी परिभाषा अपर्याप्त होती है और उनका स्पष्ट वर्णन करने के लिए कोशकार ऐतिहासिक, सामाजिक, लोकतात्विक आदि सूचनाओं को देता है।

उदाहरण के लिए, 'द्वार पूजा' की परिभाषा या अर्थ 'द्वार की पूजा' से स्पष्ट नहीं होता। उसके लिए 'विवाह के समय कन्या के घर के दरवाजे के सामने पिता के द्वारा वर या स्वागत और पैर पूजने आदि की रस्म' जैसी परिभाषा का दिया जाना आवश्यक है। किसी भी भाषा में ऐसे शब्दों की संख्या कम नहीं होती इसलि कोशों का एक सीमा तक विश्वकोशीय हो जाना सामान्य बात है।

कालक्रम की दृष्टि से कोश समकालिक (वर्णनात्मक) और कालक्रमिक (ऐतिहासिक) दो प्रकार के होते हैं। सांकालिक कोश में भाषा के किसी समय विशेष के शब्दों का वर्णन होता है जबकि कालक्रमिक कोश में शब्दों की एक काल से दूसरे काल तक की विकासावस्था का निरूपण किया जाता है। यद्यपि यह वर्गीकरण कोश के मुख्य पक्ष के आधार पर किया गया है फिर भी समकालिक कोशों में बहुधा ऐतिहासिक सूचना का समावेश होता है। प्रायः सभी कोशों में व्युत्पत्ति का निर्देश मिलता है और व्युत्पत्ति संबंधित सूचना ऐतिहासिक होती है।

समकालिक या वर्णनात्मक कोशों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :
(1) साधारण या सामान्य कोश और (2) विशिष्ट कोश।

साधारण या सामान्य कोश में भाषा के सामान्य रूप का सामान्य पाठक के लिए साधारण प्रयोग के लिए वर्णन किया जाता है। इस कोश में भाषा के सभी प्रकार के शब्द लिए जाते हैं और उन शब्दों के साधारण और सामान्य प्रचलित अर्थ दिए जाते हैं।

शब्दों के रूप, अर्थ, उनके प्रयोग की सीमा या क्षेत्र, उनके पारस्परिक विन्यासात्मक संबंध आदि के आधार पर विशिष्ट कोश कई प्रकार के होते हैं। जैसे बोली कोश, पर्याय कोश।

इनमें सबसे पहले उन कोशों पर विचार करेंगे जिनमें शब्दों का क्षेत्रीय और पेशेवर विवरण मिलता है।

बोलीकोश

इन कोशों में किसी भी भाषा की बोलियों में प्राप्त होने वाले शब्दों का समावेश होता है। ये दो प्रकार के होते हैं (1) वे कोश जो बोली विशेष के होते हैं। इनमें एक बोली में प्राप्त शब्दों का वर्णन किया जाता है, (2) वे कोश जिनमें भाषा की तमाम बोलियों के शब्दों का वर्णन किया जाता है। इसमें एक शब्द के सभी बोलीगत विचरणों को दिया जाता है और उसके साथ-साथ उस बोली का नाम दिया जाता है जिसमें यह पाया जाता है। बोली कोश का निर्माण बोली विज्ञान (Dialectology) की सहायता से किया जाता है। भारत को अनेक भाषाओं में इस प्रकार के कोश मिलते हैं।

पेशा कोश

इन कोशों में किसी में किसी विशेष पेशे में लगे लोगों के शब्दों का विवरण दिया जाता है। ये शब्द दो प्रकार के होते हैं। (1) वे शब्द जो मात्र उसी पेशे में प्रयुक्त होते हैं। और (2) वे शब्द जिनका एक उस विशेष ऐसे में पाया जाता है। उदाहरण के लिए, कृषि कोशों में कृषि संबंधी का शब्दावली वर्णन होता है।

तकनीकी शब्दावली या कोश

पेशा-कोश से मिलते-जुलते तकनीकी शब्दों के कोश होते हैं। इनमें विशेष विषयों के लिए प्रयुक्त शब्दों को दिया जाता है। भौतिकी, जैविकी, विधि, प्रशासन आदि विषयों के लिए अलग-अलग कोश होते हैं। इनमें उन शब्दों को दिया जाता है जो विषय विशेष के लिए

प्रयुक्त होते हैं या वे सामान् शब्द दिए जाते हैं जो अर्थविशेष में इन विषयों में प्रयुकत होते हैं। ज्ञान-विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ प्रत्येक भाषा में ऐसे कोशों की आवश्यकता बढ़ती जा रही है।

कूटभाषा कोश

ये कोश पेशा-कोशों से मिलते-जुलते हैं। प्रत्येक भाषा में कुछ शब्दों या शब्दों के कुछ अर्थों का प्रयोग गुप्त अर्थ से किया जाता है जिसको केवल कुछ लोग ही समझ सकते हैं। अपराध जगत में ऐसे शब्दों का प्रयोग पाया जाता है। इनको एक वर्ग या पेशे के लोग ही जानते हैं और यह पूरी कोशिश की जाती है कि इनकी गोपनीयता को यथासाध्य बनाए रखा जाए क्योंकि ज्यों ही यह गोपनीयता समाप्त हो जाएगी। इन पेशों में लगे लोगों का पर्दाफाश होने का खतरा आ जागए। पिछली शताब्दी में कर्नल स्लौमैन ने ठगों और पिण्डारियों के शब्दों का अच्छा कोश तैयार किया था। भारत के तीर्थस्थलों में पंडों की बोली भी कुछ इस प्रकार की होती है।

भाषिक तत्वों को विशेष ध्यान में रखकर बनाए जाने वाले कोशों में निम्न मुख्य है :

वर्तनी कोश

इन कोशों में शब्दों की मानक, और सर्वमान्य वर्तनी दी जाती है जिससे भाषा का मानकीकरण/हो सके। कुछ भाषाओं में शब्दों की वर्तनी अनिश्चित रहती है। एक ही शब्द कई प्रकार से लिखा जाता है और कुछ शब्दों या ध्वनियों को लिखने के लिए एक नियम लागू किया जाता है तो दूसरे के लिए दूसरा। ऐसी भाषाओं के लिए वर्तनी कोश वर्तनी को सामान्य मानक रूप प्रदान करने में सहायता करते हैं। वैसे तो सामान्य कोश भी वर्तनी के मानकीकरण में सहायक होते हैं लेकिन ये कोश विशेषकर वर्तनी के लिए ही बनाए जाते हैं।

उच्चारण कोश

इन कोशों में शब्दों का मानक उच्चारण दिया जाता है। जिन भाषाओं में लेखिमों और स्वनिमों में सामंजस्य नहीं होता और उनका अंतर बहुत ही उल्लेखनीय होता है। उनमे इन कोशों की बड़ी आवश्यकता होती है। अन्य भाषा बोलने वालों के लिए भी इन कोशों का बड़ा उपयोग होता है। डेनियल जोन्स का अंग्रेज़ी उच्चारण कोश बहुत प्रचलित है।

समनाम कोश

इन कोशों में समनाम शब्द (वे शब्द जिनकी वर्तनी और उच्चारण समान होते हैं लेकिन जिनके अर्थ भिन्न-भिन्न होते हैं, एक दूसरे से संबंधित नहीं होते) दिए जाते हैं। इनके साथ इनका अर्थ दिया जाता है। कभी-कभी प्रयोग भी दिया जाता है।

विपरीतात्मक या अंतवर्णानुक्रम कोश

इन कोशों में शब्दों की क्रम व्यवस्था शब्दों के प्रथम वर्ण से न करके शब्दों के अंतिम वर्णों के आधार पर की जाती है। उदाहरण के लिए, क से अंत होने वाले सारे शब्द एक स्थान पर दिए जाते हैं ख वाले एक स्थान पर। इन कोशों की उपयोगिता कविता के लिए अधिक होती है जब तुक मिलाने के लिए कवि को शब्द खोजन पड़ते हैं। संसकृत मे ऐसे कोश मिलते हैं। आधुनिक दृष्टि से ये कोश पाठ्य-पुस्तक तैयार करने वालों के लिए अधिक उपयोगी होते हैं क्योंकि एक व्याकरणिक कोटि के ढेर सारे शब्द एक साथ मिल जाते हैं। एक प्रत्यय के शब्द भी एक जगह मिलते हैं इससे भाषा का व्याकरण जानने में सहायता मिलती है।

व्याकरणिक कोश

इस प्रकार के कोश की रचना रूशी भाषा के लिए की गई है। इसमें भाषा के पूरे व्याकरण को कोटियों के आधार पर कुछ वर्गों में विभजित किया गया है और प्रत्येक वर्ग के साथ

एक अंक दिया गया है। कोश के मूल भाग में प्रत्येक शब्द के साथ अंक देकर उसकी व्याकरणिक विशेषता को दिखाया गया है। लिंग, वचन, कारक या अन्य कोटियों के लिए भिन-भिन्न अंक होते हैं इसलिए एक शब्द के साथ एक से अधिक अंक दिए जाते हैं। जिन भाषाओं का व्याकरण बहुत जटिल होता है उनक लिए इस प्रकार के कोश अधिक उपयोगी होते हैं।

आवृत्ति कोश

इन कोशों से मिलते-जुलते लेकिन प्रकृति में भिन्न एक प्रकार के कोश होते हैं जिन्हें आवृत्ति कोश कहते हैं। इन कोशों में शब्दों की आवृत्ति की संख्या दी जाती है। इनके बनाने क लिए पहले एक सामग्री तय की जाती है जिसमें विभिन्न प्रकार के ग्रंथ, पत्रिकाएँ, समाचार पत्र आदि आ सकते हैं। इस पूरी सामग्री में कोई शब्द कितनी बार आया है इसकी गणना इन कोशों में की जाती है। इनक शब्दों का क्रम निर्धारण आवृत्ति की संख्या के अनुसार किया जाता है। अधिक आवृत्ति के शब्दों को पहले दिया जाता है उससे कम को क्रमशः बाद में। एक ही आवृत्ति के शब्दों को वर्णानुक्रम से व्यवस्थित किया जाता है। ये कोश अध्येता या विद्यार्थी कोश तैयार करने के लि बड़े सहायक होते हैं। इनकी सहायता से स्तरीय कोश (graded dictionaries) बनाए जाते हैं।

शब्दों के अर्थ के आधार पर कोश निम्न प्रकार के होते हैं :

पर्याय या पर्यायवाची कोश

इन कोशों में शब्दों के पर्यायों या समानार्थी शब्दों को दिया जाता है। किसी शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्दों में एक शब्द प्रायः सामान्य होता है और सबसे अधिक प्रयुक्त होता है। कोशों में इस शब्द को मुख्य प्रविष्टि के रूप में देते हैं और अन्य पर्यायों को इसके साथ देते हैं। जब ये दूसरे पर्याय वर्णानुक्रम से अपने स्थान पर आते हैं तो प्रति संदर्भ के द्वारा मुख्य प्रविष्टि से जोड़ा जाता है।

चूँकि भाषा में पूर्ण पर्याय नहीं मिलते और उनके अर्थ और प्रयोग से थोड़ा अंतर (चाहे वह कितना भी सूक्ष्म क्यों न हो) होता ही है इसलिए कुछ कोशों के सभी पर्यायों की परिभाषा दी जाती है और इसके साथ ही साथ उदाहरण भी दिए जाते हैं। वेब्स्टर का पयार्य कोश (Webster's Dictionary of synonyms) एक अच्छा पर्याय कोश है।

भारत वर्ष में कोश निर्माण का प्रारंभ ही पर्याय कोशों से हुआ है। निघण्टु, अमरकोश आदि पर्याय कोश है। आधुनिक भारतीय भाषाओं के प्राचीन और पहले बने कोश पर्याय कोश ही थे।

विलोम कोश

इन कोशों में विपरीतार्थक शब्दों को दिया जाता है। एक शब्द के विपरीतार्थक शब्द उसके साथ दिए जाते हैं। इनमें प्रयोग अवसर नहीं दिए जाते।

कृति कोश

विशिष्ट कोशों में कृति कोश बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। इनमें किसी लेखक की एक कृति या संपूर्ण कृतियों में प्रयुक्त सभी शब्दों का मसावेश और वर्णन होता है। इसके निर्माण की भी वही विधि है जो ऐतिहासिक कोश के निर्माण की है। प्रत्येक शब्द को उसके अर्थ विशेष के साथ दिया जाता है और साथ ही साथ कृति से उस शब्द का संदर्भ उद्धृत किया जाता है। इस उद्धरण के साथ कृति में उसका स्थान पृष्ठ, पंक्ति आदि दिए जाते हैं। कृति कोश ऐतिहासिक कोश के निर्माण में सहायक होते हैं। उदाहरण; मानस कोश, प्रसाद शब्द कोश, कबीर शब्दकोश आदि।

शिक्षार्थी या अध्येता कोश

यह एक विशेष प्रकार के कोश हैं जिनका महत्व और उपयोग अब बढ़ता जा रहा है। ऐसे कोश भाषा के सीखने में सहायक होते हैं चाहे वह उसी भाषा के बोलने वाले हो या अन्य भाषा-भाषी। मातृभाष भाषी ऐसे कोश से भाषा की संरचना और प्रयोगें को अच्छी तरह सीख सकते हैं। जबकि अन्य भाषा भाषी इनके अतिरिक्त शब्दों और उनक विभिन्न अर्थों को भी सीखते हैं।

ये कोश दो प्रकार के हो सकते हैं। (1) सामान्य शिक्षार्थी कोश और (2) विशिष्ट शिक्षाथीर् कोश। सामान्य कोश में सभी प्रकार के शब्दों को दिया जाता है विशिष्ट कोश में किसी एक प्रकार के, जैसे क्रिया पदों का कोश।

अध्येता कोशों की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं :

1) इनकी शब्द संख्या सीमित होती है।

2) इनमें क्षेत्रीय, शैलीगत आदि विचरण वाले शब्दों को शामिल नहीं किया जाता और न ही पुरातन और प्रचार-लुप्त शब्दों को।

3) इनमें शब्दों के प्रयोग पर विशेष बल दिया जाता है। प्रत्येक शब्द के प्रत्येक अर्थ के साथ उसका प्रयोग दिया जाता है जिससे अध्येता को वास्तविक संदर्भ ज्ञात हो जाए और वह उसे ठीक तरह से प्रयोग करना सीख सके।

4) इन कोशों में बहुअर्थक शब्दों के सभी उपलब्ध अर्थों को नहीं दिया जाता। इसमें कवेल वे ही अर्थ दिए जाते हैं जिनकी भाषा सीखने के लिए आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, हिंदी 'प्रसाद' के दस अर्थ कोशों में मिलते हैं। अध्येता कोश में इनमें केवल दो को शामिल किया जा सकता है क्योंकि अन्य अर्थ विरल हैं और उनका प्रयोग मात्र साहित्य में ही सीमित रहता है।

अध्येता कोश में बहुअर्थक शब्दों के अर्थों को प्रयोग की दृष्टि से व्यवस्थित किया जाता है, व्युत्पत्यात्मक या ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं। जो अर्थ सरल हैं, और सबसे अधिक प्रयुक्त होता है, उसको सबसे पहले दिया जाता है अन्य अर्थों को उसके बाद।

भाषी कोश

इनमें किसी भाषा के शब्दों का वर्णन (अर्थ आदि) उसी भाषा में दिया जाता है। जैसे हिंदी शब्द सागर या मानक हिंदी कोश में हिंदी के शब्दों का अर्थ हिंदी में ही दिया गया है।

द्विभाषी कोश

इन कोशों में एक भाषा के शब्दों का अर्थ अन्य भाषा में किया जाता है। जिस भाषा के शब्द का अर्थ दिया जाता है उसे स्रोतभाषा कहते हैं और जिसमे अर्थ दिया जाता है उसे लक्ष्यभाषा। इनका पूरा वर्णन अन्यत्र किया गया है।

बहुभाषी कोश

जब किसी कोश में दो से अधिक भाषाओं का वर्णन किया जाता है तो उसे बहुभाषी कोश कहते हैं। इस प्रकार के कोश तुलनात्मक होते हैं। वे बहुधा वैज्ञानिक या तकनीकी शब्दावली के कोश होते हैं। भारत जैसे बहुभाषा-भाषी देशें में जहाँ स्थानीय, क्षेत्रीय और राष्ट्र स्तरीय भाषाएँ अलग-अलग हैं, बहुभाषी कोशों की बड़ी आवश्यकता पड़ती है और ऐसे कोश बनाए भी जाते हैं। उदाहरण के लिए, गारो हिदीं अंग्रेज़ी कोश या कुवी उड़िया हिंदी अंग्रेज़ी कोश। उड़िया में गोविन्द प्रहराज का कोश पूर्णचंद्र अभिधान बहुभाषी कोश है।

भारत मे सामान्य बोलचाल या संचार के लिए ऐसे कोशों की रचना की गई है जिनमें सामान्य जीवन मे प्रयुक्त होने वाले शब्दों को कई भाषाओं में दिया गया है। विश्वनाथ नरवणे का 'भारतीय व्यवहार कोश' इस प्रकार का है और हाल में ही केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने 'भाषा कोश' तैयार किया है।

20.5 कोश निर्माण की प्रक्रिया

कोश का कार्य वर्षों तक चलता रहता है। उसमें बहुत सी सामग्री का संकलन और समावेश करना पड़ता है। इसीलिए यह आवश्यक है कि कोश के कार्य की योजनाबद्ध ढंग से कुछ भागों या चरणों में विभक्त किया जाए। मुख्य रूप से कोश कार्य निम्नलिखित चरणों में बँटा रहता है।

1) नियोजन, सामग्री संकलन और प्रविष्टियों का चयन।

2) कोश की प्रविष्टि की संरचना।

3) प्रविष्टियों की क्रम व्यवस्था, मुद्रण प्रति तैयार करना।

प्रथम चरण में कोश की रूपरेखा ठीक की जाती है। उसके अनुसार सामग्री संकलन किया जाता है और फिर उस सामग्री से प्रविष्टियों का चयन किया जाता है।

द्वितीय चरण में प्रविष्टि की संरचना की जाती है। इसमें शीर्षशब्द का निर्धारण, उच्चारण अर्थ या परिभाषा, प्रयोग, व्युत्पत्ति आदि से संबंधित कार्य आते हैं। कोश का मुख्य कार्य यही है और कोशकार का अधिकंश समय इसी में लगता है।

तृतीय चरण में कोश की प्रविष्टियों को एक क्रम से व्यवस्थित किया जाता है। कोश में प्रयुक्त संकेतों, चिह्नों आदि को ठीक से देखा जाता है।

लेकिन ऊपर लिखे गए चरण एक दूसरे से एकदम असंपृक्त नहीं होते। ऐसा नहीं होता कि जब एक चरण का कार्य पूरा हो जाता है तभी दूसरा प्रारंभ किया जाता है। हर चरण में दूसरे चरण का कार्य भी होता रहता है। प्रविष्टियों को क्रम व्यवस्था करते समय भी जब नये शब्द मिलते हैं तो उनका चयन किया जाता है।

20.5.1 नियोजन

कोश निर्माण के नियोजन के लिए हमेशा ध्यान में रखने वाले कुछ मूलभूत तत्व होते हैं। उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

पहली बात जो ध्यान में रखनी चाहिए वह है कोश के प्रकार की। कोशों के प्रकार के अनुसार कोश निर्माण की प्रविधि में भी अंतर होता है।

दूसरा महत्वपूर्ण निर्णय भाषा के स्वरूप से संबंधित है। कोशकार को पहले यह निश्चित करना चाहिए कि वह भाषा के किस स्वरूप को करना चाहता है। कोश के लिए सामग्री संकलन भाषा की प्रकृति और स्वरूप के अनुसार बदलते रहते हैं। उदाहरण स्वरूप, हिंदी का कोश बनाने के पहले यह निश्चय करना आवश्यक होगा कि इसके अंतर्गत ब्रज, अवधी आदि बोलियों के शब्दों को लिया जाए या नहीं।

एक अन्य बात जो ध्यान में रखने को है वह है भाषा के काल की। क्या कोश में केवल समकालीन शब्दों का संकलन किया जाएगा या उसमें प्राचीन या मध्यकालीन साहित्य से भी शब्द लिए जाएँगे।

भाषा के सामाजिक और शैलीगत विकल्पन पर भी कोशकार की दृष्टि होनी आवश्यक है। उसे यह निर्णय करना पड़ता है कि क्या वह कोश में सभी पेशों की प्रोक्तियों अपभाषा, अश्लील और ग्राम्य प्रयोगों का समावेश करना चाहेगा?

कोश कार्य के आरांभ होने के पहले ही इन विषयों पर निर्णय ले लेना चाहिए और इन पर अमल करना चाहिए।

बहुत अच्छा तो यह होगा कि कोश की संपूर्ण योजना, प्रक्रिया और अवधि के संबंध में एक लघुपुस्तिका तैयार कर ली जाए। जिनमें निम्न तथ्यों और सूचनाओं का विवरण और निर्देश दिया जाए।

सामग्री संकलन (स्रोतों का विवरण), कार्ड का बनाना और उनको भरना (साथ में नमूने के कार्ड दे देना चाहिए), शब्द सूची का चयन, कोश-प्रविष्टि की संरचना, शब्दों के अर्थ और वर्णन (उनका क्रम), नामांकन, पदबंध, उदाहरण (उद्धरण) लिपि, उच्चारण, व्याकरणिक कोटियाँ आदि। इन सबके लिए उदाहरण देना आवश्यक होता है। इस पुस्तिका में नमूने के तौर पर कुछ प्रविष्टियाँ भी दे देनी चाहिए। बाद में इसमें संशोधन (संक्षिप्तीकरण या विस्तार) हो सकता है लेकिन इनके द्वारा प्रविष्टि संरचना के विषय में मार्गदर्शन मिलता रहता है। ये प्रविष्टियाँ यथा संभव प्रत्येक व्याकरणिक कोटि की प्रतिनिधि प्रविष्टियाँ होनी चाहिए। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि वे शब्दों की प्रत्येक प्रकार की विशेषता का प्रतिनिधित्व करने वाली हों।

सामग्री संकलन

कोश की सामग्री का संकलन कोश के प्रकार पर आधारित होता है। संकलन पद्धति लिखित और अलिखित भाषाओं के लिए भिन्न प्रकार की होती है। जिन भाषाओं में लिखित साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है उनके कोश के लिए अधिकांश सामग्री पुस्तकों से संकलित की जाती है। अलिखित भाषाओं के लिए सामग्री वाचिक भाषा से सर्वेक्षण पद्धति या क्षेत्र पद्धति के द्वारा संकलित की जाती है।

बड़े कोशो के लिए कार्ड पर सामग्री संकलन में अनेक वर्ष लगते हैं। कार्ड पर एकत्रित की गई सूचना अनेक दृष्टिकोणों से बहुत ही महत्वपूर्ण और उपयोगी होती है। कोश के मुद्रण की प्रति तैयार होते ही उसकी उपयोगिता समाप्त नहीं हो जाती। इन कार्डों की सहायता से विभिन्न प्रकार के कोशों का निर्माण किया जा सकता है। जैसे पर्याय कोश, पदबंध कोश, मुहावरा कोश, विपरीतार्थक कोश। इनका प्रयोग अन्य प्रकार के भाषावैज्ञानिक अध्ययन के लिए भी किया जा सकता है। इनसे बहुत ही सांस्कृतिक सूचनाएँ भी उपलब्ध हो सकती हैं। शब्दो के संदर्भ को कोशीय संदर्भ कहते हैं। कोशीय संदर्भ शब्द विशेष की प्रकृति और प्रकार के अनुसार विभिन्न प्रकार का होता है।

इस प्रकार प्रत्येक शब्द को उसके अपने पूर्ण संदर्भ के साथ उद्धृत किया जाता है।

उद्धरण दो प्रकार के होते हैं :

1) साधारण
2) विशिष्ट

साधारणा उद्धरण

इसक अंतर्गत साधारण प्रकार के शब्दों का चयन किया जाता है। इसमें बहुत से ऐसे शब्द भी आ जाते हैं जिनका विशेष अर्थ होता है। लेकिन पहले उनको सामान्य कृतियों से सामान्य अर्थ में ही उद्धृत किया जाता है।

विशिष्ट उद्धरण

इसके द्वारा शब्दों के विभिन्न तकनीकों विषयों के लिए प्रयुक्त विशेष अर्थों का चयन किया जाता है। लय, ताल, धुन, राग आदि संगीत की पुस्तकों से ले सकते हैं।

20.5.2 प्रविष्टियों का चयन

किसी भी भाषा में शब्दों की संख्या असीमित होती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक भाषा में नए शब्दों के निर्माण और शब्दों के नए प्रयोगों की अपार क्षमता होती है। भाषा सतत प्रवाहमान और उत्तरोत्तर विकासमान होती है। प्रायः रोज़ ही किसी नए शब्द का निर्माण या प्रयोग होता रहता है। इसलिए कोई शब्दकोश चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो यह दावा नहीं कर सकता कि उसमें भाषा के समस्त शब्दों का संकलन किया गया है या यह भी नहीं कहा जा सकता कि प्रत्येक शब्द के समस्त उपलब्ध या संभावित अर्थों, अर्थच्छटाओं और सह प्रयोगों को कोश में समाहित कर लिया गया है। कोशकार सब कुछ अपने कोश में नहीं दे सकता कोश कोश के लिए उसको प्रविष्टियों का चयन करना होता है।

समग्र कोश (Comprehensive dictionary) में यथासंभव सारे शब्दों को शामिल करने का यत्न किया जाता है। अन्य कोशों में प्रविष्टियों की सीमा बाँधी जाती है।

प्रविष्टियों का चयन कई तत्वों के द्वारा नियमित होता है। उनमें से प्रमुख हैं : कोश का आकार, उसका प्रकार, उसका उद्देश्य, भाषा के स्थानीय, सामाजिक और शैलीपरक अंतर इत्यादि।

अभिनव प्रयोग

भाषा कभी स्थिर नहीं रहती। वह परिवर्तनशील है। भाषा का शब्दभंडार भी स्थिर नहीं होता। भाषा में नए भाव, नयी वस्तुएँ आती ही रहती हैं। इनकी अभिव्यक्ति के लिए भाषा में नित्य नए शब्दों का निर्माण या गठन होता है। इनका प्रयोग पहले विरल, फिर नित्यप्रति किया जाने लगता है और ये भाषा के अंग बन जाते हैं। कोशकार की समस्या है कि इन शब्दों का चयन करे या नहीं?

वास्तव में जब तक ये शब्द भाषा के अंग नहीं बन जाते इनका चयन नहीं किया जा सकता। इनके लिए कुछ दिनों तक प्रतीक्षा करनी चाहिए। कुछ दिनों में ये शब्द स्थिर हो जाएँगे या लुप्त हो जाएँगे। घेराव, दलबदल आदि शब्द हिंदी में किन्हीं सामाजिक-राजनीतिक कारणों से आए थे। लेकिन धीरे-धीरे वे भाषा के अंग बन गए। अगर ऐसे शब्दों का प्रयोग कोश में करना ही है तो उनके इस वैशिष्ट्य को किसी-न-किसी प्रकार से निर्दिष्ट करना चाहिए। यह विरल, प्रचलित, अति विरल आदि नामांकनें के द्वारा किया जा सकता है।

पुरातन और जीर्ण शब्द

जिस प्रकार भाषा में नए शब्दों और प्रयोगों का निर्माण होता है उसी प्रकार पुराने शब्दों और प्रयोगों का लोप भी होता है। लेकिन ये संख्या में अपेक्षाकृत बहुत कम होते हैं। बहुत से भाव और वस्तुएँ समय के साथ प्रयोग विरल हो जाते हैं और इनका समाज में लोप हो जाता है। साथ ही साथ इन भावो और वस्तुओं को अभिव्यक्त करने वाले शब्दों का भी लोप हो जाता है। इन शब्दों को पुरातन शब्द कहते हैं जैसे – पुरोडास। इन शब्दों की तरह की कुछ ऐसे भी शब्द होते हैं जिन्हें प्रचार लुप्त कहते हैं।। ये शब्द साहित्य की निधि होते हैं। इन शब्दों के संबंध में प्रश्न उठता है कि समकालीन और समकालिक कोशों में इनको स्थान दिया जाए या नहीं। सिद्धांततः इनको केवल ऐतिहासिक कोशों में स्थान मिलना चाहिए। समकालिक कोश में इनके लिए कोई स्थान नहीं होता। लेकिन उपयोगिता की

दृष्टि से इनमे से कुछ शब्दों को कोश में स्थान मिलना चाहिए। इस उपयोगिता के कई कारण हैं :

अ) बहुत से पुरातन और प्रचारमूलक शब्दों का प्रयोग बोलचाल की भाषा में, विशेषकर कहावतों और मुहावरों में मिलता है। सामान्य लोग इनका प्रयोग करते हैं। वे साहित्य में नहीं मिलते।

ब) इन शब्दों का प्रयोग प्राचीन साहित्य में होता है। यह साहित्य पाठ्य-पुस्तकों में निर्धारित रहता है। इसलिए इस साहित्य में पठन-पाठन के लिए कोशों में इन शब्दों का स्थान और वर्णन आवश्यक है।

वैज्ञानिक और तकनीकी शब्द

ज्ञान विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ भाषा में नए-नए भावों और नयी वस्तुओं का प्रवेश होता है। जब किसी भाषा में किसी भी नए भाव या वस्तु की अभिव्यक्ति के लिए शब्द नहीं होते तो उनको भाषा में निम्न प्रकार से अभिव्यक्त किया जाता है :

क) इन शब्दों को किसी भाषा से उधार ले लिया जाता है। इनमें ध्वन्यात्मक और रूपगत परिवर्तन या पारिमार्जन करके इनको भाषा में प्रयुक्त किया जाता है। उदाहरण : गिलास, इंजीनियर, गैलरी, तकनीकी, अकादमी।

ख) भाषा के संरचनात्मक आधार पर इन शब्दों के समतुल्य शब्दों का सृजन (विशेषकर अनुवाद) किया जाता है। सभी भाषाओं की तकनीकी शब्दावली में इस प्रकार के शब्दों की संख्या सर्वाधिक होती है। उदाहरण : आहार-विज्ञान, जननिक (genetics), जलभीति, जलमापक, भू-भौतिकी।

ग) भाषा के वर्तमान उपलब्ध शब्दों में आए अभिलक्षणों के आधार पर नए अर्थों का आरोपण करते हैं। अर्थात् शब्दों के वर्तमान अर्थों में ही वृद्धि की जाती है। जैसे : ताप-गर्मी। इसको भौतिकी के heat अर्थ में प्रयुक्त किया जाने लगा है। विद्युत (बिजली) का प्रयोग electricity के लिए।

घ) कभी-कभी कुछ संकर शब्दों का सृजन और प्रयोग किया जाता है। ये शब्द बहुधा समास पद होते हैं। इनमें एक पद विदेशी भाषा से आगत होता है तो दूसरी भाषा का अपना शब्द होता है। उदाहरण : हेडपंडित, फ़िल्मीकरण।

रिक्त शब्द

प्रत्येक भाषा में बहुत से शब्द ऐसे होते हैं जिन्हें शून्य या रिक्त शब्द कहते हैं। इनका स्वतंत्र रूप से प्रयोग नहीं होता। अर्थात् ये अपने आप में अर्थवान नहीं होते। इनका प्रयोग किन्हीं अन्य शब्दो के लिए किया जाता है। इनमें कुछ प्रतिध्वनिमूलक शब्द होते हैं। उदाहरण के लिए : (आसपास) आमने (आमने-सामने), अजायब अज़ब) का बहुवचन (अज़ायब घर, अज़ायब खाना), अड़ोस (अड़ोस-पड़ोस)। तिब्बती चीनी और आस्ट्रो एशियाई भाषाओं में इनका प्राचुर्य है। उदाहरण – गोरो, बोरो।

ये शब्द भी भाषा की शब्दसंपत्ति हैं। इसलिए कोश में इनको किसी न किसी प्रकार प्रवेश देना ही चाहिए। इसके लिए सुगम उपाय यह है कि इनको उन शब्दों के साथ दिया जाए जिनके साथ में युग्म बनाते हैं जैसे – आस पास में आस को पास के साथ।

व्याकरणिक शब्द

यह पहले ही कहा जा चुका है कि भाषा में कुछ शब्द व्याकरणिक होते हैं। उनका कार्य शब्दों के अंतर्संबंध का द्योतन करना होता है। ये बद्ध पद होते हैं। इनका प्रयोग भी स्वतंत्र रूप से नहीं होता। जैसे तो, ही आदि निपात, परसर्ग आदि।

1) ये भाषा की संप्रेषणात्मकता के अभिन्न अंग हैं। इनके द्वारा ही संप्रेषणीयता संभव है।

2) भाषा में इनका प्रयोग बहुत अधिक होता है। पूर्णार्थ शब्दों की तुलना में इनका प्रयोग कई गुना अधिक होता है। इसलिए इनके प्रयोगों के अनुसा रही इनकी विभिन्न अर्थच्छटाएँ होती हैं, जिनका ज्ञान भाषा को समझने क लिए परम आवश्यक होता है।

3) प्रत्येक भाषा में बहुत से शब्द ऐसे होते हैं जो व्याकरणिक भी होते हैं और पूर्णार्थ या शाब्दिक भी। जैसे :

रहना : मैं इस घर में रहता हूँ।
वह यह काम करता रहता है। करता जा रहा है।

डालना: वह बर्तन में दूध डालता है।
उसने अपना पूरा काम जल्दी ही कर डाला।

किसी भी कोश में इस प्रकार के शब्दों की प्रविष्टि आवश्यक और तर्क संगत है। इनका कोई शाब्दिक अर्थ नहीं होता, इसलिए कोश में इनका प्रायोगिक और व्याकरणिक अर्थ दिया जाता है। इन अर्थों के स्पष्टीकरण के लिए इनके विविध प्रयोगों और सहप्रयोगों के उदाहरण दिए जाते हैं।

उपसर्ग और प्रत्यय

कोश में इनको दो प्रकार से दिया जा सकता है। कुछ कोशों में इन्हें स्वतंत्र प्रविष्टियों के रूप में दिया जाता है और कुछ कोशों में एक प्रविष्टि के अंतर्गत अंतर्वेशन किया जाता है। यह कोशकार की सुविधा पर निर्भर करता है।

अर्थगत अभिलक्षण

1) वे समास जिनका अर्थ उसके पदों के अर्थों का योग होता है। इसमें किसी भी पद के अर्थ का लोप नहीं होता। उदाहरण के लिए :
पाकिटमार, गिरहकट

2) वे समास जिनका अर्थ उसके विभिन्न पृथक पदों के अर्थों का योग या यौगिक अर्थ का समकक्ष नहीं होता। इसमें एक पद या दोनों पदों के अर्थों में आमूल परिवर्तन हो जाता है। बहुधा दोनों पद समग्र रूप से किसी तीसरे पद को इंगित करते हैं। उदाहरण के लिए :
हि,सं : अरण्यरोदन, दिवाकर, दंतकथा, भूदान, धूमकेतु, पुच्छतारा

संस्कृत के बहुब्रीहि समास इसके अंतर्गत आते हैं।

कोशकार के लिए प्रथम कोटि के समास समस्या उत्पन्न नहीं करते। वह इनको उपप्रविष्टियों के रूप में कोश में देता है। इनका अर्थ पूर्वानुमेय होता है। लेकिन वे समास जिनका अर्थ पूर्णानुमेय नहीं होता, स्वतंत्र प्रविष्टि के रूप में दिए जाते हैं।

बहु-शब्दीय (कोशीय) इकाई

ये समासों से मिलती-जुलती इकाइयाँ होती हैं। इनमें दो या दो से अधिक शब्द इस प्रकार जुड़े होते हैं कि वे एक इकाई की तरह प्रयुक्त होते हैं। इनका प्रयोग सामान्य शब्दों और समासों की तरह होता है। कभी-कभी इनका अर्थ एक विशिष्ट प्रकार का भी होता है। उदाहरण के लिए :

चार सौ बीस, नौ दो ग्यारह, नरम गरम, बच्चों का खेल।

किसी भी भाषा में शब्दों का सही प्रयोग दो प्रकार का होता है। (1) मुक्त या स्वतंत्र (2) आबद्ध या स्थिर। पर असल मुक्त प्रयोग भाषा की मुख्य धारक या वाहक होते हैं। मुक्त प्रयोग में शब्दों को भिन्न प्रकार से संयुक्त करके विभिन्न प्रकार के अर्थों की अभिव्यक्ति कराई जाती है। उदाहरण के लिए,

ठंडा पानी, ठंडा मौसम, गरम दूध, गरम जलवायु, गरम हवा, तेज़ दिमाग।

इन प्रयोगों का सृजन वक्ता की इच्छा पर निर्भर करता है। किसी भी स्थिति में अपने विचारों के संप्रेषण के लिए वक्ता इनका प्रयोग करता है। ये क्षणजीवी होते हैं और इनका प्रयोग स्थिर नहीं होता। भाषा की संप्रेषणीयता का बहुत बड़ा अंश इन सहप्रयोगों के द्वारा ही होता है। इनका अर्थ पूर्वानुमेय होता है। इसलिए इन्हें कोशों में स्थान नहीं दिया जाता। जैसे :

हिंदी के दो शब्दों तेज़ और छुरी को मिलाकर पदबंध तेज़ छुरी का निर्माण होता है। इनमें तेज़ के स्थान पर नयी, पुरानी, अच्छी, कीमती छुरी आदि पदबंधों का सृजन किया जा सकता है। इनसे छुरी शब्द के अभिधेय अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता। इसी प्रकार छुरी के स्थान पर तलवार, कैंची, शब्दों का रख सकते हैं और तेज़ तलवार, तेज़ कुल्हाड़ी ओर तेज़ कैंची आदि पदबंधों की रचना कर सकते हैं। इन तमाम पदबंधों में 'तेज़' शब्द के अर्थ में कोई अंतर नहीं आता। यही नहीं, यहाँ पर 'तेज़' के स्थान पर उसके समानार्थी शब्द पैनी का प्रयोग कर सकते हैं। और छुरी के स्थान पर चाकू का। पिर भी पदबंधों के अभिधेय अर्थ में कोई अंतर नहीं आता। लेकिन यही बात मीठी छुरी पदबंध पर लागू नहीं होती।

इसमें मीठी छुरी के स्थान पर किसी भी समानार्थी शब्द को नहीं रखा जा सकता। अगर रखा जाएगा तो अभिप्रेत अर्थ में अंतर आ जाएगा। इसीलिए मीठी छुरी एक बद्ध पदबंध है। मुक्त पदबंधों और बद्ध पदबंधों में इनके अतर्गत संबंधों का अंतर भी परिलक्षित होता है। मुक्त पदबंधों में पदों का अर्थ मुख्यतः योगात्मक होता है अर्थात् संपूर्ण होता है। इनमें प्रत्येक पद की अर्थगत स्वतंत्रता होती है। बद्ध पदबंधों में यह बात नहीं होती। इनका अर्थ संपृक्त होता है। इसके पदो में अर्थगत स्वतंत्रता नहीं होती।

वाक्यों या वाक्यांशों में ये पदबंध उसी प्रकार प्रयुक्त होते हैं जैसे कोई अन्य कोशीय या शाब्दिक इकाई। इसलिए इनको कोश में स्थान देना चाहिए।

कहावतें

कहावतों के बहुत से अभिलक्षण बद्ध पदबंधों की तरह होते हैं। ये परंपरागत सूत्रबद्ध सूक्तियाँ होती हैं जिनके द्वारा लोक जीवन या जन जीवन की बुद्धिमत्ता या कुछ नैतिक उपदेश या कोई सार्वकालिक तथा सार्वजनिक सत्य प्रकट होता है। ये किसी समुदाय विशेष की समग्र बौद्धिकता और चिंतन की परिचायक होती है। इनके पदों में भी आपस में परिवर्तन नहीं किया जा सकता और न ही इनके बीच में किसी पद को रखा जा सकता है। ये मूलतः बद्ध पदबंधों पर आधारित होती हैं। लेकिन कहावतों में बहुत से ऐसे शब्द मिलते हैं जो साधारण भाषा में नहीं पाए जाते। इसके अतिरिक्त ये संस्कृति की वाहक होती है। बड़े कोशों में कहावतें दी जा सकती हैं।। वैसे कहावतों के लिए अलग स्वतंत्र कोश ही होते हैं।

20.6 कोशीय प्रविष्टि की संरचना

कोशीय शब्द की सबसे बड़ी विशेषता होती है रूप और अर्थ दोनों ही दृष्टियों से उसकी स्वतंत्रता या निजता। भाषा की वे ही इकाइयाँ कोशीय शब्द हो सकती हैं, जिनका अपना अलग अर्थ हो या अपनी पृथक संरचनात्मक विशेषता हो। जिन इकाइयों के रूप या अर्थ व्याकरण के द्वारा पूर्वानुमेय होते हैं, वे कोशीय शब्द नहीं हो सकते। इसीलिए कोश में

विकारी रूपों को नहीं दिया जाता केवल व्युत्पन्न रूपों को दिया जाता है। जैसे कोश में 'गाड़ी' तो देते हैं लेकिन 'गाड़ियाँ' और 'गाड़ियों' नहीं। लेकिन 'गाड़ीवाला' की प्रविष्टि होती है। इसके अतिरिक्त जब दो शब्दों या रूपों का योग ऐसा होता है कि उसका अर्थ स्वतंत्र और विशिष्ट हो जाता है तो उसे कोशीय शब्द या इकाई का दर्ज़ा मिल जाता है। जैसे चार, सौ और बीस अलग-अलग शब्द हैं लेकिन एक साथ पदबंध के रूप में (चार सौ बीस) प्रयुक्त होने पर इसका अलग स्वतंत्र अर्थ 'धाखेबाज' हो जाता है। इसलिए समासों, बहुशब्दीय इकाइयों को कोशीय इकाई या शब्द का दर्ज़ा मिलता है।

जैसे ऊपर कहा गया है कि कोई आवश्यकता नहीं कि कोशीय इकाई मुक्त रूप ही हों। बद्धरूप, कारकचिह्न, उपसर्ग और प्रत्यय भी कोशीय शब्द हो सकते हैं।

शीर्ष शब्द

इसे प्रविष्टि शब्द या प्रविष्टि इकाई भी कह सकते हैं। शीर्ष शब्द के कुछ अभिलक्षणों का ऊपर वर्णन किया जा चुका है। शीर्ष शब्द के चयन और निर्धारण के दो सबसे महत्वपूर्ण आधार हैं शब्दों का रूप और उनका अर्थ। इनके आधार पर ही शीर्ष शब्द का चयन किया जाता है। इसके निर्धारण के लिए कोशकार पैराडाइम पद्धति का आश्रय लेता है। किसी भी शब्द के सभी विकारी रूपों के योग को पैराडाइम कहते हैं।। इन रूपों में शब्द के व्याकरणिक अभिलक्षण की समानता और एकता होती है। इन रूपों में मूल अर्थ की भी प्रायः समानता रहती है। (उदाहरण : घोड़ा, घोड़े, घोड़ों, जाना, गया, जाऊँ इत्यादि)।
विहितरूप का निर्धारण के कुछ आधार नीचे दिए जा रहे हैं :

1) बहुधा (हमेशा नहीं) यह रूप अकेले घटित होने की रखता है।

2) इसकी आवृत्ति पैराडाइम के सभी रूपों में सबसे अधिक होती।

3) इसमें पूरे पैराडाइम का प्रतिनिधि बनने की क्षमता होती है।

संस्कृत : अस्मद्, अहम्, वयम्, अवाम्, मम्, अस्माकम्।

प्रत्येक कोश में उनकी स्वतंत्र प्रविष्टि नहीं दी जाती है। लेकिन उसके साथ प्रति संदर्भ दिया रहता है। उदाहरण के लिए :

हिंदी : उस सर्वनाम विभक्तियों के साथ प्रयुक्त 'वह' शब्द का रूप
अंग्रेज़ी : We pronoun=pl. poss our, ours, obj. us nom pl. of।

यह तो रही शब्दों के रूप की बात। उसके साथ ही साथ उनके अर्थ को भी कोशकार को बड़ी सूक्ष्मता और सावधानी के साथ देखना चाहिए। यदि पैराडाइम के तमाम रूपों में किसी एक का भी अर्थ विहित रूप के अर्थ से भिन्न हो तो उस रूप को कोश में स्थान देना आवश्यक हो जाता है। उनको या तो विहित रूप के साथ शीर्ष शब्द की प्रविष्टि में ही दिया जाता है या फ़िर उनकी स्वतंत्र प्रविष्टि की जाती है। उदाहरण के लिए :

अंग्रेज़ी : Waters (often pl.) जलाशय
arms. n. (usually pl.) a weapon.

वर्तनी और उच्चारण

शीर्ष शब्द के बाद बहुधा उसका उच्चारण दिया रहता है। लेकिन उच्चारण का देना, न देना, कोश के प्रकार, भाषा की प्रकृति और उसके अभिलक्षणों पर आधारित होता है। अगर किसी भा में स्वनिम और लेखिम में विशेष अंतर है तो उच्चारण का दिया जाना बड़ा ही आवश्यक है।

व्युत्पत्ति

बहुत से शब्दकोश प्रत्येक प्रविष्टि में पूरी व्युत्पत्ति देते हैं। कुछ कोशों में व्युत्पत्ति प्रविष्टि के अंत में दी जाती है। लेकिन बहुत से कोशों में उत्पत्ति संबंधी सूचना या संकेत दिया रहता है। इस संकेत के अंतर्गत कुछ कोशो में केवल शब्द की स्रोत भाषा का नाम दिया रहता है तो कुछ कोशों में स्रोत भाषा का नाम और उसमें स्रोत शब्द का स्वरूप दोनों ही दिए रहते हैं। उदाहरण :

घड़ी	स्त्री	(सं. घटी)
निबटना	अ.क्रि.	(सं. निवंत)
दीवाना	वि.	(फा. दीवान)
दौजख	पु.	(फा. दौजख)

व्याकरणिक सूचना

लिंग हिंदी में संरचना की दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है। शब्द के रूप और अर्थ के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि कोई शब्द किस लिंग का है। उपरितः हिंदी में लिंग व्याकरणिक होता है। कर्ता और क्रिया में लिंग का अन्विति होती है। इसलिए हिंदी कोश के लिए यह आवश्यक है कि उसमें शब्द के लिंग का निर्देश किया जाए। ऐसा नहीं करने से पाठक भयानक भूलें कर सकता है। कोशों में बहुधा क्रियाओं की सकर्मक और अकर्मक सूचनाएँ दी जाती हैं। सकर्मक क्रियाओं के लिए कर्म की आवश्यकता होती है, अकर्मक के लिए नहीं। इसलिए जब कोश में क्रियाओं के इस लक्षण का निर्देश दिया जाता है तो एक प्रकार से वाक्य संरचना की सूचना दी जाती है। इसी प्रकार कोशों में जब संज्ञा के साथ गणनीय और अगणनीय होने की सूचना दी जाती है तो इसका अर्थ होता है कि गणनीय संज्ञाओं के बहुवचन रूप होते हैं अगणनीय के नहीं।

कोशीय प्रविष्टि का दूसरा भाग कोशीय इकाई का अर्थपरक विवरण प्रस्तुत करता है। अर्थ के विभिन्न घटकों का, जो किसी भी शब्द के अर्थगन अभिलक्षणों को निर्धारित करते हैं, वर्णन ऊपर दिया जा चुका है। कोश का प्रमुख और केंद्रीय उद्देश्य होता है शब्द के अर्थ को यथासंभव अधिक से अधिक स्पष्ट और सटीक रूप से प्रस्तुत करना। इस स्पष्टता को दिखाने के लिए कई उपकरणों का प्रयोग किया जाता है जिनमें प्रमुख निम्न हैं :

1) शाब्दिक इकाई की परिभाषा या वर्णन (विवरण)
2) समीकरण-शाब्दिक इकाई के समान अर्थवाली इकाई के साथ संयोजन
3) व्युत्पत्ति
4) उदाहरण
5) चित्र
6) नामांकन
7) प्रतिसंदर्भ

लेकिन कोश की प्रत्येक प्रकार की प्रविष्टि के लिए ऊपर लिखे समस्त उपकरणों का प्रयोग नहीं किया जाता है। किसी एक शब्द के अर्थ के लिए ऊपर का एक ही घटक पयार्प्त होगा जब कि किसी अन्य शब्द के लिए एकाधिक उपकरणों का प्रयोग करना पड़ेगा। उदाहरण के लिए, तकनीकी शब्दों के लिए उदाहरण देने की विशेष आवश्यकता नहीं होती। लेकिन बहुअर्थक शब्द के लिए प्रत्येक मुख्यार्थ और गौण अर्थ के लिए उदाहरण का देना परम आवश्यक होता है। आगत शब्दों के लिए उनके स्रोत या व्युत्पत्ति का देना आवश्यक है। जिन शब्दों का प्रयोग सीमित होता है उनके लिए कुछ ऐसे निर्देश (नामांकन) देना आवश्यक है जो उस सीमा की प्रकृति को दिखा सकें। कुछ शब्दों का अर्थ मूल शब्द के अर्थ के द्वारा दिया जाता है या फिर शब्द परिवार के साथ प्रति संदर्भ के द्वारा दिया जा सकता है।

हिंदी : भेड़िया (पुं.) कुत्ते से कुछ बड़ा एक जंगली हिंसक पशु, जो झुंड बनाकर रहता है और बस्तियों से मुर्गियाँ, बतखें, छोटी छोटी भेंड़ बकरियाँ, नन्हें बच्चे आदि को उठाकर ले जाता है।

मुल्ला : (पुं.) (अ) मुसलमानी धर्मशास्त्र का आचार्य या विद्वान् मकतब में छोटे बच्चों को पढ़ाने वाला मुसलमान शिक्षक।

अंग्रेज़ी: Horse n. 1.a large, solid-hoofed quadruped, domesticated since prehistoric times and employed as a beast of draft and burden and for carrying a rider.

परिभाषा : शब्द के समस्त विभिन्न अर्थीय अभिलक्षणों का उसी भाषा में वाक्यों या वाक्यांशों में विवरण या अन्वय या व्याख्या की परिभाषा है। उदाहरण के लिए :

देखना : सं. किसी पदार्थ के रूप रंग, आकार-प्रकार आदि का ज्ञान या परिचय कराने के लिए उसकी ओर आँख करना।

शस्त्र : पुं. कोई ऐसी चीज़ जिससे लड़ाई-झगड़े या युद्ध के समय शत्रु पर प्रहार किया जाता है।

अंग्रेजी : merit-n. (1) Claim to commendation (2) some-thing that entitles to reward or commendation.

लेकिन भाषा के सभी शब्दों की परिभाषा के लिए मात्र भाषाई अर्थ ही पर्याप्त नहीं हुआ करते। बहुत से शब्दों के अर्थ के विकास में भाषा के बोलनेवालों की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, मिथकीय और लोक साहित्यिक परंपराओं का योगदान रहता है। ऐसे शब्दों की परिभाषा देते समय कोशकार को इन तमाम तथ्यों को अपनी दृष्टि में रखना होता है।

20.6.1 नामांकन

भाषा परिवर्तनशील होती है। समय के साथ उसमें रूपगत और अर्थगत परिवर्तन होते रहते हैं। भाषा की इस परिवर्तनशीलता का आभास सबसे पहले भाषा के शब्द भंडार के द्वारा होता है। शब्दों के रूप और अर्थ में निरंतर परिवर्तन होता रहता है। कुछ शब्द प्रचार में लुप्त हो जाते हैं। कुछ शब्दों के अर्थों में विस्तार आ जाता है। कुछ शब्दों का प्रयोग सिमटकर बहुत ही सीमित और विरल हो जाता है। इन शब्दों का प्रयोग या तो एक वर्ग विशेष में होने लगता है या विषय विशेष के लिए। यही बात बहुत से शब्दों के विभिन्न अर्थों पर भी लागू होती है। बहुअर्थक शब्द के कुछ अर्थों का प्रयोग एक विषय या वर्ग विशेष तक ही सीमित रह जाता है। चाहे वह वर्ग या विषय साहित्य, विज्ञान या परमाणु से संबद्ध हो या फिर चोरों और डकैतों के नितांत गोपनीय व्यावसायिक व्यवहार से अथवा स्कूल के विद्यार्थियों के वार्तालाप की संकेत भाषा (slang) से।

कालगत या शैलीगत भेदों के अतिरिक्त भाषा में अन्य प्रकार के भेद भी पाए जाते हैं। 'चार कोस पर पानी बदले आठ कोस पर बानी' के अनुसार भाषा में स्थानीय विकल्पण भी बहुत मिलते हैं। किसी क्षेत्र विशेष में एक शब्द का अर्थ एक होता है तो दूसरे में दूसरा। कुछ शब्द किसी क्षेत्र विशेष में ही प्रचलित और प्रयुक्त होते हैं दूसरे क्षेत्रों में नहीं। शब्दों के रूप में यह विकल्पण और भी अधिक परिलक्षित होता है। एक ही शब्द के कई रूप क्षेत्र विशेष में पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए :

भोजपुरी : मँगुर, मँगुरी, मडगुर = एक तरह की मछली
फजिर, फजिरे, फजीर = सुबह

कोशकार को भाषा के इन भेदों और प्रभेदों को अपने कोश में किसी न किसी प्रकार दिखलाना होता है। नहीं तो पाठक को शब्दों के प्रयोग में काफी असुविधा होती है और गलत प्रयोग के खतरे होते हैं। आवश्यक निर्देश नहीं होने से पाठक किसी सीमित प्रयोग वाले या अश्लील शब्द का सभ्य समाज में प्रयोग करके उपहास का भाजन बन जाता है।

अब प्रश्न है कि भाषा के इन विकल्पणपरक अभिलक्षणों का कोश में कैसे निरूपण किया जाए। सामान्य कोश वैज्ञानिक परंपरा में इनकी नामांकन (labels) के द्वारा निरूपित किया जाता है। यह निरूपण निम्न प्रकार से किया जाता है :

1) **शब्दगत** : जब एक शब्द के भेद होते हैं तो सबसे प्रचलित शब्द को शीर्ष शब्द मान लेते हैं और बाकी को उसके साथ उसी पेटे या प्रविष्टि में देते हैं और उसकी क्षेत्रीय या शैलीगत विशेषता का निर्देश नामांकन के द्वारा कर देते हैं।। उदाहरण के लिए :

सेवार : सेवाल
लिलाट = लिलार (प्रांतीय प्रयोग)

2) **अर्थगत** : जब किसी भी शब्द का कोई एक अर्थ किसी विषय विशेष के लिए प्रयुक्त होता है तो उस अर्थ को नामांकन से निरूपित किया जाता है। उदाहरण, रस मन में उत्पन्न होने वाला वह भाव या आनंद जो काव्य पढ़ने अथवा अभिनय देखने से उत्पन्न होता है (साहित्य)।

नामांकन संक्षिप्तियाँ (abbreviation) होते हैं। वे मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं :

1) **व्याकरणगत नामांकन (grammatical labels)** : ये नामांकन शब्द के व्याकरणगत अभिलक्षणों का निरूपण करते हैं।। कोश में व्याकरणगत सूचना की प्रकृति और प्रकार के विषय में ऊपर चर्चा की जा चुकी है। उदाहरण के लिए :

सैर (पुं.)
लीला (स्त्री)

2) **विषय-सूचक नामांकन (subject labels)** : इनके द्वारा किसी भी शब्द विशेष या शब्द के अर्थ विषय विशेष में होने वाले प्रयोग को दिखाया जाता है। उदाहरण के लिए :

(ध्वन्यात्मक काव्य) जिसमें व्यंग्य प्रधान हो।

3) **स्तरीय नामांकन (status labels)** : इनके द्वारा शब्दों के कालक्रमिक, स्थानीय, शैलीपरक और अन्य भेदों को दिखाया जाता है। कोश में हम जब नामांकन की चर्चा करते हैं तो उसका तात्पर्य बहुधा इसी नामांकन से है। कोश कार्य के लिए इन नामांकनों का बहुत ही महत्व रहता है। उदाहरण का लिए :

ताता (ग्राम्य प्रयोग) = तप्त
करमठ (पुरातन, प्रांतीय) = कर्मठ

नामांकन किस प्रकार वैज्ञानिक और सटीक हों इसके विषय में कोशकार को सावधान रहना चाहिए और पूरी कोशिश करनी चाहिए कि शब्दों के अधिक से अधिक स्तरीय भेदों का निरूपण हो सके। इसके लिए कोशकार को सभ्य भाषा के शैलीविज्ञान, समाज विज्ञान आदि के अध्ययनों से सहायता मिलती है। कालक्रमिक भेदों का निरूपण करने के लिए ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त व्युत्पत्ति शास्त्र से भी पर्याप्त दिशा निर्देश मिलता है।

20.7.2 प्रति संदर्भ

कोश को संक्षिप्त करने और उसकी प्रतिविष्टियों की और भी अधिक व्यवस्थित, गहन और वैज्ञानिक रूप देने के लिए कोशकार दो तरीके अपनाता है।

1) **प्रविष्टियों का संक्षिप्तीकरण** : यह संक्षिप्तीकरण अंतर्वेश (resting) के द्वारा होता है जिसमें रूप या अर्थ की दृष्टि से संबंधित शब्दों को एक प्रविष्टि के अंतर्गत एक ही पेटे में दिखाया जाता है। इसके संबंध में पहले चर्चा की जा चुकी है।

2) **प्रति संदर्भ** : इसके द्वारा रूप और अर्थ की समान विशिष्टता वाली प्रविष्टियों को एक दूसरे के द्वारा संदर्भित किया जाता है। दूसरे शब्दों में जब किन्हीं भी दो शब्दों (शीर्ष शब्दों) के रूप या अर्थ में कुछ ऐसे अभिलक्षण होते हैं जो समान होते हैं और उनके संबंधों को और स्पष्ट करते हैं तो एक शब्द को प्रविष्टि में दूसरे शब्द की प्रविष्टि को देखने का निर्देश दिया जाता है। उससे पाठक दूसरी प्रविष्टि में कुछ अतिरिक्त सूचना पाता है।

प्रतिसंदर्भ दो प्रकार के होते हैं :

1) **सीधा या प्रत्यक्ष प्रति संदर्भ** : इसके द्वारा एक प्रविष्टि में दूसरी प्रविष्टि को देखने का इंगित रहता है – इसको इंगित करने के लिए कई प्रकार के शब्द प्रयुक्त होते हैं यथा, देखिए कुछ कोशों में शब्द के साथ = चिह्न लगाकर प्रति संदर्भ दिखाया जाता है।

उदाहरण : तिधर-क्रि. वि. दे. उधर
पीतम-वि. दे. प्रियतम

इसके अतिरिक्त कछ अन्य शब्दों का भी प्रयोग होता है। जैसे तुलनीय। इसके द्वारा उन प्रविष्टियों को संदर्भित करते हैं जिनके रूप और अर्थ के जानने से किसी शब्द के आर्थी संबंधों व अभिलक्षणों अथवा प्रयोगपरक लक्षणों को समझने में विशेष और अतिरिक्त सहायता मिलती है। इसके द्वारा कुछ अतिरिक्त सूचना मिलती हैं। उदाहरण के लिए :

राजि (स्त्री) राई. दे. सरसों

2) **अप्रत्यक्ष या तिर्यक प्रति संबंध** : इस संदर्भ को हम स्पष्ट रूप से देख नहीं पाते। इसमें एक प्रविष्टि में दूसरी प्रविष्टि को देखने का स्पष्ट संकेत या निर्देश नहीं होता। इसमें एक प्रविष्टि के शीर्ष शब्द का प्रयोग दूसरे शब्द को परिभाषित करने के लिए किया जाता है। नीचे लिखे उदाहरणों के द्वारा इसको और भी स्पष्ट किया जा सकता है :

पीटना - क्रि. सं.	चोट पहुँचाना।
बेसन - पु.	चने की दाल का आटा
यंत्रशाला - स्त्री.	वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार के यंत्र हो
चौताल - पुं.	मृदंग का एक ताल।
अरबी - स्त्री.	एक प्रकार का कंद जो तरकारी के रूप में खाया जाता है।

इन उदाहरणों में रेखांकित शब्दकोश की प्रविष्टियाँ होती हैं और उनके द्वारा शब्द की परिभाषा दी जाती है। अगर इस परिभाषा में उस शब्द को समझने में कोई कठिनाई होती है तो पाठक उस शब्द विशेष की संबंधित प्रविष्टि को देखकर इस कठिनाई को दूर कर सकता है। इस प्रकार के संदर्भ समभावी – एक भाषी कोशों में सर्वत्र मिलते हैं।

कोश से प्रति संदर्भ का प्रयोग अनेक सूचनाओं को देने के लिए किया जाता है और उसके, प्रयोग जिनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है :

1) **विकल्पन :** जब किसी शब्द के कई भेद, रूप या विकल्पन होते हैं तो उनमें से सबसे अधिक प्रचलित रूप या मानक रूप को शीर्षशब्द के रूप में दिया जाता है और विकल्पन के रूप को बहुधा उसके साथ उसी प्रविष्टि में दे दिया जाता है। कभी-कभी उसको अलग देने की परंपरा भी है। फिर ये विकल्पन जब अकारादि क्रम में आते हैं तो वहाँ विवेचित प्रविष्टि का प्रति संदर्भ दे दिया जाता है – उदाहरण के लिए :

बाती	-	स्त्री. दे. बत्ती
वधू	-	स्त्री. दे. वधू
नाऊ	-	प्र. - दे. नाई
सेमई	-	सेंवई - स्त्री. दे. सेवई
जुल्लाब	-	पु. जुलाब
दिवाली	-	स्त्री. दीवाली

2) जब किसी शब्द की रूपावली में कोई रूप केनोनिकल रूप से भिन्न होता है तो उसको केनोनिकल रूप के साथ उसी प्रविष्टि में दे दिया जाता है और उस भिन्न रूप के अकारादि क्रम में अपने स्थान पर आने पर पहली प्रविष्टि का प्रति संदर्भ कर दिया जाता है। इसके अंतर्गत बहुधा व्याकरणगत अपवाद रूपों को दिखाया जाता है। इसके अतिरिक्त जिन शब्दों के अर्थों में भी कोई भिन्नता होती है उनको भी प्रतिसंदर्भ के द्वारा दिखाया जाता है। उदाहरण के लिए :

जाना अ.	
गया अ.	जाना का भूतकालिक रूप
हम - सर्व.	उत्तर पुरुष, बहुवचन, सर्वनाम 'मैं' का बहुवचन का रूप

3) आर्थी रूप से परस्पर संबधित शब्दों की परिभाषा के लिए प्रति संदर्भ का प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है। इसके द्वारा उस शब्द के अर्थ को और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। इसके अलावा उसके अन्य आर्थी अभिलक्षण भी प्रकाश में आ जाते हैं और शब्द के आर्थी संबंधों का अधिक स्पष्टता से द्योतन होता है।

4) जब परिभाषा के लिए पर्यायवाची और विपरीतार्थक शब्द का प्रयोग किया जाता है तो वह भी एक प्रकार का प्रति संदर्भ ही होता है। उदाहरण के लिए :

हिंदी : आड़ा वि. देखने वाले के दाहिने से बाँये या बाँये से दाहिने गया हुआ। खड़ा या सीधा का विपर्याय।

छापा पु. धातु अथवा लकड़ी का वह टुकड़ा जिस पर फूल पत्ती आदि खुदी रहती है और जिस पर रंग या स्याही लगाकर इसकी छाप किसी तल पर लगाई जाती है। ठप्पा

5) बोली के रूपों के अर्थ की स्पष्टता के लिए मानक रूपों से प्रति :

कहरना	-	क्रि. अ. कराहना
चौपत	-	स्त्री. कपड़े की तह
मूँजना	-	क्रि. सं. मूनना
ओदारना	-	क्रि. सं. विदीर्ण होना
पजामा	-	पुं. पाजामा
नोना	-	वि. नमकीन
नोहर	-	वि. दुर्लभ

6) आर्ष और प्रचार लुप्त शब्दों की परिभाषा के लिए सामाजिक प्रचलित शब्दों को प्रति संदर्भ के रूप में दिया जाता है :

चेर, चेरा - पु. 1. नौकर, सेवक, 2. चेला
जतन - पु. यत्न

20.7 सारांश

हम सबको नियमित रूप से कोशों का उपयोग करना होता है, यह आधुनिक बहुभाषी समाज की माँग है। लेकिन हममें बहुत से लोग यह नहीं जानते कि कितने प्रकार के कोश हैं और उनमें किस प्रकार की सूचनाएँ मिल सकती हैं। अगर किसी शब्द को देखकर हम यह जानना चाहते हैं कि वह शब्द मूलतः किस भाषा का है या उस शब्द का हमारे जनजीवन में कोई सांस्कृतिक महत्व है या नहीं तो हमे यह निश्चित करना होगा कि यह सूचना कहाँ से प्राप्त होगी। व्युत्पत्ति कोश शब्दों के स्रोत की सूचना देते हैं जबकि आवश्यकता के हिसाब से अलग-अलग कोशों में यह जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

शब्द कोश में प्रविष्टियाँ होती हैं और ये प्रविष्टियाँ आमतौर पर अकारादि क्रम में होती हैं। हम शब्द को अकारादि क्रम से ढूँढ़ सकते हैं। लेकिन प्रविष्टियाँ कैसी होती हैं इसकी जानकारी भी शब्द कोश देखने के लिए आवश्यक है। कुछ कोश केवल मूल शब्द देते हैं जबकि बड़े आकार के कोश सभी प्रकार के प्रत्यय उपसर्ग को भी प्रविष्टि के रूप में देते हैं।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको कोश निर्माण से संबंधित सामान्य जानकारी मिलेगी जिससे आप कोशों का सही उपयोग कर सकेंगे। लेकिन अगर आपने कोश बनाने संबंधी अभिरुचि है तो आप इस आधार पर यह भी देख सकते हैं कि किन क्षेत्रों में और कैसे आप यह काम कर सकते हैं।

20.8 अभ्यास प्रश्न

1. **निबंधात्मक प्रश्न**
   (1) कोश विज्ञान को अनुप्रयोग भाषाविज्ञान की शाखा किस आधार पर कहा जा सकता है।
   (2) कोश कितने प्रकार के होते हैं।
   (3) कोश निर्माण की प्रक्रिया समझाइए।

2. **टिप्पणियाँ**
   (1) कोश की प्रविष्टि
   (2) विश्व कोश
   (3) कोश में नामांकन और प्रति संदर्भ
   (4) कोश बनाने से पूर्व की तैयारी

इस खंड के लिए उपयोगी संदर्भ ग्रंथ

1. मनोरमा गुप्त (सं.) (1987) : *मनोभाषाविज्ञान*, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।
2. अमर बहादुर सिंह (सं.) (1983) : *अन्य भाषा शिक्षण के कुछ पक्ष*, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।
3. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव एवं कृष्णकुमार गोस्वामी (1985) : *अनुवाद सिद्धांत और समस्याएँ*, आलेख प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. *स्नातकोत्तर अनुवाद डिप्लोमा* की सामग्री, इग्नू, नई दिल्ली।
5. कृष्ण कुमार गोस्वामी (1996) : *शैलीविज्ञान की रूपरेखा*, संघी प्रकाशन, जयपुर।
6. मनोरमा गुप्त (सं.) (1984) : *कोशविज्ञान*, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।
7. Lado, Robert (1957) : *Language Teaching : A Scientific approach*, McGraw Hill, New York.
8. S. Pit Corder (1973) : *Inroducing Applied Linguistics*, Penguin.
9. Green, Judith (1972) : *Psycholinguistics (Chomsky and Psychology)*, Penguin.